रोम रोम रस पीजिए

प्रवचन-क्रम

1. रोम रोम रस पीजिए..2
2. अज्ञान का बोध...16
3. बच्चों को विश्वास नहीं, जिज्ञासा सिखाएं.....................................29
4. झूठे धर्मों की विदाई--सच्चे धर्म का जन्म....................................44
5. धर्म है आत्म-स्मरण..58
6. आध्यात्मिक विकास में चरित्र का स्थान..70
7. दूसरे पर श्रद्धा आत्म-अश्रद्धा की घोषणा है................................83
8. आदमी की एकमात्र कमजोरी--अहंकार...95
9. मन के मंदिर में ध्यान का दीया..110

रोम रोम रस पीजिए
पहला प्रवचन

रोम रोम रस पीजिए

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी घटना से आज की बात मैं आपसे कहना चाहूंगा।
एक बहुत बड़े सम्राट की मृत्यु हो गई थी। उसकी अरथी निकाली जा रही थी। लाखों लोग उस अरथी को देखने रास्तों पर इकट्ठे हुए थे। एक बड़ी अजीब बात थी, अरथी के बाहर दोनों हाथ बाहर निकले हुए थे। जो भी देखा उसी के मन में प्रश्न उठा, ऐसी अरथी तो कभी देखी नहीं गई जिसमें लाश के हाथ दोनों बाहर हों। और कोई साधारण आदमी भी नहीं मरा था, एक सम्राट की मृत्यु हो गई थी। हर कोई पूछने लगाः क्या बात है? अरथी के बाहर हाथ क्यों निकले हुए हैं?
और तब धीरे-धीरे पता चला, मरते वक्त उस सम्राट ने... उसका नाम सभी ने सुना होगाः अलेक्जेंडर महान, सिकंदर! मरते वक्त सिकंदर ने कहा था, मेरे हाथ अरथी के बाहर रखे जाएं, ताकि हर कोई यह देख ले कि मेरी मुट्ठियां भी खाली हैं।
बहुत वर्ष हो गए सिकंदर को मरे हुए। न तो उसके पहले और न उसके बाद, किसी के हाथ अरथियों के बाहर नहीं रहे हैं। लेकिन हाथ--चाहे बाहर रहें, चाहे भीतर--सारी जिंदगी के बाद खाली के खाली रह जाते हैं। और चाहे वे हाथ सम्राट के हों और चाहे भिखारी के, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जिंदगी में होगा कोई भिखारी और होगा कोई सम्राट। लेकिन मौत, मौत सबको बराबर कर देती है। और वह बराबरी खाली हाथों की बराबरी होती है। सबके हाथ समान रूप से खाली होते हैं।
यह बात इसलिए मैंने कहनी चाही है, इस बात का स्मरण दिलाने के लिए कि मौत जिसके हाथ खाली पाती है, जिंदगी में भी वह खाली रहा होगा। यह असंभव है कि जिंदगी में भरा रहा हो और मौत उसके हाथ खाली पाए। क्योंकि मृत्यु तो जीवन की ही पूर्णता है। जिस भांति हम जीते हैं उस भांति ही हम मरते हैं। मृत्यु तो सूचना है पूरे जीवन की--कि जीवन कैसा था? तो यदि मौत खाली हाथ पाती हो तो कोई भूल में रहा होगा कि जिंदगी में भरा था। जिंदगी में भी खाली रहा होगा।
कुछ थोड़े से लोगों को जीवन में ही यह दिखाई पड़ने लगता है कि हाथ खाली हैं। जिनको यह दिखाई पड़ता है कि हाथ खाली हैं, वे संसार की दौड़ छोड़ देते हैं--धन की और यश की, पद की और प्रतिष्ठा की। लेकिन वे लोग भी एक नई दौड़ में पड़ जाते हैं--परमात्मा को पाने की, मोक्ष को पाने की। और मैं यह निवेदन करना चाहूंगा इन तीन दिनों में कि जो भी आदमी दौड़ता है वह हमेशा खाली रह जाता है, चाहे वह परमात्मा के लिए दौड़े और चाहे धन के लिए दौड़े। इसलिए केवल सम्राट ही खाली हाथ नहीं मरते, और भिखारी ही नहीं, बहुत से संन्यासी भी खाली हाथ ही मरते हैं।
जीवन में जो भी पाने जैसा है वह दौड़ कर नहीं पाया जा सकता है। जीवन का सौंदर्य और जीवन का सत्य और जीवन का संगीत कहीं बाहर नहीं है कि कोई दौड़े और उसे पा ले। जो कुछ भी बाहर होता है उसे पाने के लिए यात्रा करनी होती है, चलना होता है। और जो भी भीतर है उसे पाने के लिए जो यात्रा करेगा वह भटक जाएगा। क्योंकि यदि मुझे आपके पास आना हो तो मैं चलूंगा और तब आपके पास पहुंच सकूंगा। और अगर मुझे अपने ही पास पहुंचना हो तो चलने से कैसे पहुंचा जा सकता है? मैं तो जितना चलूंगा उतना ही दूर निकल जाऊंगा। अगर मुझे अपने पास पहुंचना है तो मुझे सारा चलना छोड़ देना पड़ेगा, दौड़ना छोड़ देना पड़ेगा, तो शायद मैं पहुंच जाऊं।
तो एक तो रास्ता वह है जो बाहर की तरफ जाता है, जिस पर हमें चलना पड़ता है, श्रम करना पड़ता है, पहुंचना पड़ता है। एक रास्ता ऐसा भी है जिस पर चलना नहीं पड़ता, और जो चलता है वह कभी नहीं पहुंचता, जिस पर रुकना पड़ता है। और जो रुक जाता है वह पहुंच जाता है। यह बात बड़ी उलटी मालूम पड़ेगी। क्योंकि हमने तो अब तक यही जाना है कि जो खोजेगा वह पाएगा, जो चलेगा वह पहुंचेगा, और जो जितने जोर से चलेगा उतने जल्दी पहुंचेगा। और जो जितने श्रम से दौड़ेगा

उतने शीघ्र पहुंच जाएगा। लेकिन इन तीन दिनों में मैं यह निवेदन करूंगाः जो चलेगा वह कभी नहीं पहुंचेगा। और जो जितने जोर से चलेगा उतने ही ज्यादा जोर से अपने से दूर निकल जाएगा।
एक और छोटी कहानी कहूं।
एक नदी पर, सांझ सूरज ढलता था, दो भिक्षु नाव से उतरे। एक युवा भिक्षु
था और एक बूढ़ा। उन दोनों ने मांझी से पूछा कि क्या सूरज डूबने तक हम, यह जो सूरज की डूबती रोशनी में चमकती हुई दीवाल है गांव की, वहां तक पहुंच जाएंगे? पास ही गांव था और उसके चारों तरफ किले की दीवाल थी, और नियम था कि सूरज डूबने के साथ ही उस गांव का दरवाजा बंद हो जाएगा। तो उन दोनों भिक्षुओं ने पूछा कि क्या हम पहुंच जाएंगे सूरज के डूबते-डूबते?
उस बूढ़े मांझी ने कहा कि अगर धीरे गए तो पहुंच जाओगे और अगर जल्दी गए
तो पहुंचना बहुत मुश्किल है।
उन दोनों भिक्षुओं ने समझा कि यह आदमी पागल है। क्योंकि जो यह कहता हो
कि धीरे चलोगे तो पहुंच जाओगे और जल्दी चले तो नहीं पहुंच पाओगे, उसको कौन समझदार समझेगा? उसे तो कोई भी पागल समझेगा। पूरी दुनिया पागल समझेगी, आप भी पागल समझेंगे। क्योंकि दुनिया में तो हम यही जानते हैं--दौड़ना जानते हैं, शीघ्रता जानते हैं। यह क्या बात? उसकी बात सुनने को फिर वे और नहीं ठहरे, उसकी बात सुनने जैसी नहीं थी। उसकी पहली बात ही बड़ी गड़बड़ थी। वे दोनों भागे। उचित था यही। तर्क यही कहता है, बुद्धि यही कहती हैः अगर पहुंचना है तो दौड़ो। और सूरज ढला जाता है, सांझ हुई जाती है। रात घिर आएगी, द्वार बंद हो जाएंगे, पहुंचना मुश्किल है, फिर रात बाहर ही ठहर जाना होगा। इसलिए वे भागे, जितनी उनमें शक्ति थी उतनी शक्ति लेकर भागे।
थोड़ी ही देर बाद बूढ़ा भिक्षु गिर पड़ा। उतनी शक्ति न थी दौड़ने की, सिर
पर बोझ था ग्रंथों का, ग्रंथ लिए हुए था। गठरी गिर गई और ग्रंथ बिखर गए और उनके पन्ने उड़ गए। पीछे से उस मांझी ने अपनी नौका बांधी और वह भी अपनी पतवार लेकर धीरे-धीरे आता था। युवा भिक्षु बूढ़े भिक्षु के पैरों से खून को साफ कर रहा था और पट्टी बांध रहा था। उस मांझी ने आकर कहा कि मेरे मित्रो, मैंने कहा थाः अगर धीरे जाओगे, पहुंच जाओगे; अगर जोर से गए, नहीं पहुंच पाओगे। तब उन्हें ख्याल में आया कि धीरे चलने की भी कोई कला होती है। लेकिन उसने तो कहा थाः धीरे चलोगे तो पहुंच जाओगे। इन तीन दिनों में मैं तो और भी बड़े पागलपन की बात आपसे कहने को हूं। मैं तो यह कहने को हूं कि चले तो कभी न पहुंच पाओगे। तो जब धीमे चलने को ही कोई पागलपन समझे और तेजी से चलना समझदारी मालूम हो, तो फिर मेरी बात कैसी लगेगी?
लेकिन कुछ कारण हैं जिनसे ऐसा कहता हूं। वे कारण तो धीरे-धीरे तीन दिनों में आपको स्पष्ट करूंगा। आज तो शुरू में, सूत्र रूप में कुछ बातें कह देनी जरूरी हैं जो तीन दिनों में आपके ख्याल में आ जाएंगी।
सबसे पहली बात यही है और वह यह कि मनुष्य के भीतर कुछ है। और जो उस भीतर के सत्य को जाने बिना जीवन में कुछ भी खोजता है वह व्यर्थ ही खोजता है। यदि मैं यह भी न जान पाऊं कि मैं क्या हूं और कौन हूं, तो मेरी सारी खोज का क्या अर्थ होगा? चाहे वह खोज धन की हो, चाहे पद की, चाहे यश की, चाहे परमात्मा की और चाहे मोक्ष की। मेरी सारी खोज व्यर्थ होगी। क्योंकि जो मैं था उसको भी मैंने नहीं जाना था। और यह जो मैं हूं, इसे जानने के लिए कहां दौड़ेंगे? कहां जाएंगे? क्या करेंगे?
इसे जानने को तो सारी दौड़ छोड़ कर रुक जाना पड़ेगा। इसे जानने को तो सारी खोज छोड़ कर ठहर जाना पड़ेगा। क्योंकि जो चित्त खोजता है वह चित्त उद्विग्न हो जाता है, तनाव से भर जाता है, अशांत हो जाता है। तो यदि मैं सारी खोज छोड़ कर ठहर सकूं, मेरे मन में कोई खोज न हो, कहीं पहुंचने का ख्याल न हो, कहीं जाना न हो, तो क्या होगा? सारी उद्विग्नता, सारी दौड़, सारी खोज जहां न होगी, वहां एक अदभुत शांति अवतरित होगी। एक मौन, एक साइलेंस आनी शुरू होगी, एक शांति आनी शुरू होगी। क्योंकि जो दौड़ने के ख्याल में नहीं है वह एकदम शांत हो जाता है। और उस शांति में ही उसके दर्शन होंगे जो मैं हूं।

इसलिए कोई कभी खोज कर नहीं खोज सका है स्वयं को। ठहर कर, रुक कर। वह तो
हम आने वाले दिनों में बात करेंगे। लेकिन क्या मिल जाएगा? अगर हम सारी खोज छोड़ कर स्वयं को जानने में समर्थ हो जाएं तो क्या मिल जाएगा?
मिल जाएगा यह कि हाथ खाली नहीं हैं, यह ज्ञात हो जाएगा। अभी हमें लगते हैं कि हाथ खाली हैं, इसलिए भरने का ख्याल है। इसलिए दौड़ते हैं, खोजते हैं-- किसी भांति भरापन मिल जाए, फुलफिलमेंट मिल जाए। क्योंकि यह खालीपन, अभाव घबड़ाता है। दरिद्रता, दीनता मालूम पड़ती है कि मैं कुछ भी नहीं, मेरे पास कुछ भी नहीं। दौड़ते हैं, भागते हैं। लेकिन कोई आज तक दौड़ कर और भाग कर उस भरेपन को उपलब्ध नहीं हो पाया है जिसकी खोज है। जिनके पास सब कुछ इकट्ठा हो जाता है वे भी भीतर दरिद्र बने रहते हैं। उनके भीतर भी भिखारी का अंत नहीं होता। उनके भीतर भी वह मांगने वाला समाप्त नहीं होता। वे मांगे चले जाते हैं, मांगे चले जाते हैं। उनकी दौड़ का भी कोई अंत नहीं होता।
अकबर से मिलने फरीद नाम का एक फकीर गया था। उसके गांव के लोगों ने फरीद से कहा था कि अकबर से प्रार्थना करो, मित्र है तुम्हारा, गांव में एक छोटा सा स्कूल खोल दे। फरीद गया। सोचा था, अकबर के पास तो बड़ी सामर्थ्य है, क्या एक स्कूल के लिए मना करेगा! जल्दी से बहुत सुबह ही पहुंच गया। अकबर अपनी प्रार्थना करता था, सुबह की नमाज पढ़ता था। फरीद पीछे खड़ा हो गया। अकबर ने नमाज पूरी की, हाथ जोड़े और कहाः हे परमात्मा, मेरे धन को बढ़ा! मेरे राज्य को और बड़ा कर! मेरी सीमाओं को बड़ा कर! फरीद ने सुना, वह लौट पड़ा। अकबर उठा और देखा कि फरीद लौट रहा है, सीढ़ियां उतरता है, उसकी पीठ दिखाई पड़ी। दौड़ा और फरीद को रोका और पूछा, कैसे आए? और वापस लौट चले?
फरीद ने कहा कि मैं सोचता था एक सम्राट के पास जा रहा हूं। यहां तो पाया कि यहां भी एक भिखारी है। मैं तो सोचता था कि तुमसे कुछ मांगूंगा गांव के लिए, लेकिन मैंने देखा कि तुम तो खुद ही मांग रहे हो। मैं बड़ी भूल में रहा। और अब मांगना ही होगा तो उसी से मांग लेंगे जिससे तुम मांगते थे, अब तुम्हें बीच में लेने की क्या जरूरत रही? लेकिन एक भ्रम मेरा टूट गया कि मैं सोचता था कि सम्राट के भीतर का भिखारी मर जाता है। यह भ्रम मेरा टूट गया। वस्त्र सम्राट के हो जाते हैं, आत्मा भिखारी की ही बनी रहती है। दुनिया में दो तरह के भिखारी हैं--एक जिनके वस्त्र भिखारी के हैं और
एक जिनके वस्त्र सम्राटों के हैं। लेकिन जहां तक आत्मा का संबंध है, मुश्किल से कभी कोई सम्राट होता है। सभी लोग भिखारी होते हैं। मांग बंद नहीं होती, मांगते ही चले जाते हैं।
क्यों मांगते चले जाते हैं? सब कुछ मिल जाता है, फिर भी मांग समाप्त क्यों नहीं होती?
नहीं होती इसलिए कि सब कुछ मिल जाता है, फिर भी भीतर का जो खालीपन है,
जो एंप्टीनेस है, वह जो भीतर सब खाली है, वह नहीं भरता। बाहर संपदा इकट्ठी होती चली जाती है, भीतर का खालीपन अपनी जगह बना रहता है, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। नहीं पड़ सकता है अंतर, क्योंकि संपदा है बाहर और खालीपन है भीतर। तो बाहर की संपत्ति भीतर की शून्यता को कैसे भरेगी? कोई उपाय नहीं है। बाहर के सिक्के भीतर की शून्यता को कैसे भरेंगे? बाहर की संपत्ति बाहर पड़ी रह जाएगी। ढेर इकट्ठे हो जाएंगे और भीतर का गड्ढा भीतर रहेगा। उन दोनों का कोई संबंध नहीं। उन दोनों के मिलने का कोई स्थान नहीं। वे दोनों अलग-अलग बातें हैं। भीतर की दरिद्रता बाहर की समृद्धि से इसीलिए नहीं मिट पाती, क्योंकि उन दोनों का कहीं मिलन ही नहीं होता, उनका कोई संबंध ही नहीं है।
लेकिन क्या भीतर की भी कोई समृद्धि हो सकती है?
कुछ लोग सोचते हैं कि हो सकती है। तो वे भजन में, पूजा में, प्रार्थना में लग जाते हैं। वे सोचते हैं कि शायद धन से तो काम नहीं होता, तो भजन करें; गृहस्थी से तो काम नहीं होता, संसार से तो काम नहीं होता, तो संन्यासी हो जाएं। वे सोचते हैं कि पद से तो नहीं मन भरता, तो परमात्मा को पा लें। लेकिन उनका परमात्मा भी बाहर होता है और उनके भजन भी बाहर होते हैं और उनका मंदिर भी बाहर होता है। धन बाहर था, पद बाहर थे। यह परमात्मा भी बाहर होता है। जिसके लिए वे हाथ जोड़ते हैं और प्रार्थना करते हैं, वह बाहर है। जिस परमात्मा के सामने वे हाथ जोड़ते हैं वह बाहर होगा, कहीं आकाश

में होगा, कहीं और होगा। जिससे वे प्रार्थना करते हैं वह भी बाहर होगा। जिसके लिए वे गीत गाते हैं और भजन करते हैं वह भी बाहर होगा।
तो बाहर के संसार से छुटकारा होता है तो बाहर का परमात्मा पकड़ लेता है। लेकिन भीतर जाना फिर भी नहीं हो पाता। क्योंकि जितने बाहर के मकान हैं, उतने ही बाहर के मंदिर हैं। चीज बदल जाती है, स्थिति वही की वही रही आती है। इसलिए जीवन भर कोई प्रार्थना करता है और फिर भी पाता है कि भीतर का खालीपन अपनी जगह है। वह कहीं नहीं गया। जीवन भर भजन करता है, फिर भी आखिर में पाता है कि वे शब्द खो गए हवाओं में, और भीतर जो खाली था वह अब भी खाली है।
असल में मजा यह है कि हम एक ऐसी चीज को भरने चले हैं जो पहले से ही भरी हुई है! तो न तो धन उसे भर सकेगा और न धर्म उसे भर सकेगा। उसे तो कोई भी नहीं भर सकेगा। लेकिन अगर हम उस खालीपन को देखने को राजी हो जाएं, तो हम पाएंगे कि खालीपन इसीलिए था कि हम उस तरफ देख ही नहीं रहे थे। वहां तो सब भरा हुआ था।
एक भिखारी मरा था एक बार। और जिस जमीन के टुकड़े पर बैठ कर बाजार में वह भीख मांगता रहा जीवन भर, मरने के बाद, तीस साल बाद उसके गांव के लोगों ने उसे तो हटाया, उसकी लाश को हटाया, और तीस साल उसी जगह अपने चीथड़े और गंदगी फैलाए बैठा रहा था तो उसकी सफाई करनी जरूरी हो गई थी, तो उन्होंने सफाई की और थोड़ी-थोड़ी जमीन खोद कर भी साफ करवा दी। तीस साल से एक भिखमंगा वहां बैठा रहा था। जमीन उन्होंने थोड़ी सी खोदी, वे हैरान हो गए! जमीन खोदते ही, वहां तो अटूट खजाना गड़ा हुआ था। और तब वे हंसने लगे कि यह तो मुश्किल, अजीब बात हो गई! भिखारी उसी खजाने पर बैठा हुआ भीख मांगता रहा! तीस साल चीथड़ों में जीया, भूखा मरा और मर गया। और जिस जमीन पर बैठा था वहां खजाना गड़ा था!
उन लोगों ने मुझे यह खबर बताई, उस गांव के लोगों ने, तो मैंने उनसे कहा
कि तुम उस भिखारी पर हंस रहे हो और तुम मर जाओगे तो दूसरे लोग तुम पर हंसेंगे।
उन्होंने कहा, क्यों?
मैंने कहा, हर आदमी जिस जगह खड़ा है वहां खजाना गड़ा हुआ है। लेकिन जिंदगी भर भीख मांगता है और पता नहीं चलता कि मैं जहां खड़ा हुआ हूं वहां खजाना गड़ा हुआ है।
हर आदमी जहां है वहां खजाना है। और जिस परमात्मा को हम खोजते हैं वह वहां है जहां हम हैं। इसलिए उसे हम कभी नहीं खोज पाएंगे कहीं खोजने जाएंगे तो। और जिस यश को, और जिस धन को, और जिस संपत्ति को हम खोजते हैं वह वहां है जहां हम हैं। इसलिए हम खोजें और खोजें और मिट जाएं, हम कभी नहीं खोज पाएंगे। वह है हमारा स्वरूप जिसे हम खोज रहे हैं। और जब तक हम खोजते रहेंगे, तब तक स्वरूप का कोई बोध नहीं हो सकता। जो खोज को छोड़ देता है और खोज को छोड़ कर खड़ा होता है, उसे दिखाई पड़ता है कि मैं कौन हूं।
एक आदमी दौड़ रहा हो, दौड़ रहा हो। दौड़ते हुए आदमी को पता भी नहीं चल सकता कि मैं कौन हूं। ठहरे, रुके, थोड़ी दौड़ बंद हो, थोड़े चित्त का भागना बंद हो, तो शायद उसे दिखाई पड़े कि मैं कौन हूं। और जिस क्षण उसे दिखाई पड़ता है कि मैं कौन हूं, वह पाता है कि मैं तो कभी खाली था ही नहीं।
बुद्ध को समाधि उपलब्ध हुई। कुछ लोगों ने जाकर उनसे पूछा कि आपको ज्ञान उपलब्ध हुआ है, आपको क्या मिला ज्ञान में?
बुद्ध हंसने लगे और उन्होंने कहा कि मिला तो कुछ भी नहीं, बल्कि कुछ
खो गया।
वे लोग हैरान हुए और उन्होंने कहा कि हम तो सुनते रहे हैं कि ज्ञान होता है तो कुछ मिलता है।
बुद्ध ने कहा, नहीं, मिला तो कुछ भी नहीं। क्योंकि जैसे ही आंखें खुलीं, दिखाई पड़ा कि जिसे मैं सोचता था कि खो गया है, वह तो खोया ही नहीं था। मिला वही जो सदा से मिला ही था। इसलिए उसे मिलना नहीं कह सकता हूं। हां, कुछ खो जरूर गया; यह भ्रम खो गया कि मेरे पास कुछ भी नहीं है।
यह जो दौड़ है हमारी, इस दौड़ को बदल नहीं लेना है। एक चीज को छोड़ कर हम दूसरी चीज के लिए दौड़ने लगें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता है। जब तक हम दौड़ते हैं, तब तक हम नहीं पा सकेंगे।

कैसे हम रुक जाएं, कैसे हम ठहर जाएं, क्या कोई उपाय है, कोई मार्ग है कि
हम ठहर जाएं? क्या कोई दृष्टि है जहां हम रुक जाएं? उसकी तो हम तीन दिनों में बात करेंगे। लेकिन उस बात की तैयारी के लिए कि उस बात को आप, वह बात आपको दिखाई पड़ सके, कुछ थोड़े से सूत्र आपसे कहना चाहूंगा। जिनके आधार पर अगर तीन दिन हम थोड़े से जीए, तो शायद जो बात मैं कहूं वह आपको दिखाई पड़ जाए। क्योंकि महत्वपूर्ण यह नहीं है कि मैं कुछ कहूं। मेरे कहने का क्या महत्व है? सवाल तो यह है कि वह आपको दिखाई पड़ जाए। हो सकता है कि मैं कहता रहूं और आपको दिखाई न पड़े। तो उस कहने का कोई भी प्रयोजन नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। इसलिए यह महत्वपूर्ण नहीं है बहुत कि मैंने क्या कहा, बहुत महत्वपूर्ण यह होगा कि आपने कैसे सुना।
तो इन तीन दिनों में अगर कुछ सूत्रों पर आप प्रयोग करेंगे, तो जो मैं कहूंगा, शायद वह कम्युनिकेट हो पाए। वह आप तक पहुंच पाए, आप तक मेरी बात पहुंच जाए। बहुत कठिन है यह बात, किसी की बात किसी तक पहुंचनी, बहुत कठिन है। इतना काफी नहीं है कि मैं बोल दूं और आप तक पहुंच जाए। आपके भीतर अगर उस बात से जुड़ने की कोई तैयारी हो तो दिखाई पड़ सकती है। और नहीं तो उलटा भी हो सकता है। उलटा यह हो सकता है कि मैं कुछ कहूं, आपको कुछ सुनाई पड़े। अक्सर तो ऐसा ही होता है, अक्सर ऐसा ही होता है। क्योंकि जब मैं यहां बोलूंगा तब आप भी अपने भीतर बोले चले जाएंगे।
एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक के चिकित्सालय में दो पागल नये-नये चिकित्सा के लिए लाए गए। वे दोनों ही किसी विश्वविद्यालय के अध्यापक थे। और जैसा कि अक्सर होता है, अध्यापक अगर अध्यापक बना ही रह जाए तो उसके पागल हो जाने के खतरे पैदा हो जाते हैं। क्योंकि वह सीखना तो बंद कर देता है और सिर्फ सिखाता है, सिर्फ सिखाता है। वह धीरे-धीरे यह भूल ही जाता है कि उसको भी कुछ सीखना है। और जो आदमी यह भूल जाए कि मुझको कुछ सीखना है--सिर्फ सिखाना है, सिर्फ सिखाना है--वह आदमी पागल नहीं हो जाएगा तो क्या होगा? उन दोनों अध्यापकों पर भी यह मुसीबत आ गई थी और करीब-करीब दुनिया में सभी अध्यापकों पर आ रही है। वे दोनों पागल हो गए थे। वे दोनों भर्ती किए गए थे। मनोवैज्ञानिक खिड़की में से छुप कर उनका अध्ययन करता था कि वे क्या करते हैं।
वे एक बड़ी अजीब बात करते थे। एक बोलना शुरू करता था तो बोले ही चला जाता था, बोले ही चला जाता था, दूसरा बैठ कर बिल्कुल चुपचाप सुनता था। जब वह बोलना बंद कर देता था तो दूसरा बोलना शुरू करता था। लेकिन दूसरा जहां से शुरू करता था वहां से पहले वाले की बात का कोई संबंध ही नहीं होता था। वह मनोवैज्ञानिक बहुत हैरान हुआ। उनका कोई वास्ता ही नहीं था, जो एक कहता था उससे दूसरे का कोई संबंध नहीं था। लेकिन दूसरा रुकता था जब तक एक बोलता था।
उसने जाकर उनसे पूछा कि मेरे मित्रो, बड़ी हैरानी की बात है! तुम्हारी बातों में तो कोई संबंध नहीं है, फिर रुकते क्यों हो? एक आदमी बोलता है तो दूसरा रुकता क्यों है?
तो उनमें से एक पागल ने कहा, हम जानते हैं कॉनवरसेशन कैसे किया जाए, बातचीत कैसे की जाए। यह तो नियम है बातचीत का कि जब एक बोलता हो तब दूसरा चुप रहे। तो हम चुप रहते हैं। और जब वह थक जाता है तो हम शुरू करते हैं बोलना, फिर उसको चुप रहना पड़ता है।
मैंने यह घटना पढ़ी और मैंने सोचा कि यह तो बात बड़ी सच्ची है। सारी दुनिया में सभी लोग इसी भांति तो बातचीत करते हैं। जब तक मैं बोल रहा हूं, तब तक आप भी अपने भीतर बोले जा रहे हैं, बोले जा रहे हैं। मैं जो बोल रहा हूं उससे और आपके बोलने का क्या संबंध है? कोई भी संबंध नहीं है। हां, हम अभी इतने पागल नहीं हैं, हम बातचीत करते हैं तो जब एक बंद होता है तब दूसरा शुरू करता है। और हम इतने पागल नहीं हैं कि बिल्कुल असंगत बात शुरू कर दें। इसलिए दूसरा जहां खत्म करता है वहां से बहाने मात्र को कोई बात ले लेते हैं और अपनी बात शुरू कर देते हैं। बस वह बहाना भर होता है बात शुरू करने का। फिर बात शुरू हो जाती है। हम सब इस भांति बातचीत करने के आदी हैं। यहां मैं कोई बातचीत नहीं करूंगा तीन दिनों में आपसे। तो अगर मैं बोल रहा हूं, उस वक्त आप भी अपने भीतर बोले चले जा रहे हैं, तो इस भ्रम में आप न

रहें कि आपने वही सुना जो मैंने कहा था। वह आप नहीं सुन सकेंगे। और सच तो यह है कि वह आपने कभी नहीं सुना। और आपने जिंदगी में हमेशा अनुभव किया होगा।
अगर आप पति हैं तो आपने अनुभव किया होगा कि मैं पत्नी से जो कहता हूं,
यह तो उत्तर जो देती है उसका कोई संबंध ही नहीं है। अगर आप पत्नी हैं तो आपने अनुभव किया होगा कि पति से जो मैं कहती हूं, वे तो न मालूम क्या मतलब ले लेते हैं और झगड़ा खड़ा हो जाता है। वह तो मैंने कभी कहा ही नहीं था, वह मेरा अभिप्राय नहीं था, वह मेरा प्रयोजन नहीं था। बच्चे जानते हैं कि मां- बाप से उन्होंने जो कहा उनका प्रयोजन नहीं था, उन्होंने न मालूम क्या अर्थ ले लिया! मां-बाप जानते हैं कि बच्चों, हमने जो कहा, बच्चों ने क्या अर्थ ले लिया!
हम सब अर्थ ले रहे हैं। समझ कोई भी नहीं रहा है। इसलिए तो चौबीस घंटे कलह खड़ी हो जाती है। क्योंकि जो कहा गया वह हम सुनते नहीं, हम कुछ और सुन लेते हैं। हम सुनेंगे ही कुछ और, क्योंकि हमारे भीतर खुद बहुत सी बातें चल रही हैं। और उन बातों के धुएं में दूसरे की बात आकर विकृत हो जाती है, उसके सब अर्थ खो जाते हैं।
तो तीन दिन में एक तो प्रार्थना यह करूंगा, यहीं नहीं, घंटे भर के लिए यहीं नहीं, बल्कि तीन दिनों में जब भी आप किसी से कुछ भी बात कर रहे हों, तो कृपा करके इसका थोड़ा ध्यान रखें कि जब आप कुछ भी बात सुन रहे हैं तो आपके भीतर बातचीत नहीं चलनी चाहिए। अगर चलती है तो आप सामान्य बातचीत भी नहीं समझ पाते।
कौन किसको समझ पाता है? पत्नी पति को समझ पाती है? गलती है। पति पत्नी
को समझ पाता है? मित्र मित्र को समझ पाते हैं? नहीं समझ पाते। जिंदगी भर जिनके हम साथ रहते हैं उनको भी नहीं समझ पाते, क्योंकि हमने सुनना ही नहीं सीखा! हमने कभी सुनना ही नहीं जाना कि किसी की बात कैसे सुनी जाए!
बात सुनने का पहला सूत्र तो यह है कि जब कोई कुछ कह रहा हो तो हमारे भीतर दूसरी बात न चले, वहां सब मौन हो। वहां हम बहुत तत्परता से, बहुत शांति से, बहुत मौन से, अत्यंत शांति में, अत्यंत शून्य में कुछ सुनें। तो जब शून्य में कुछ सुना जाता है, मौन में कुछ सुना जाता है, तब, तभी सुना जाता है। उससे अन्यथा कभी नहीं सुना जाता।
तो तीन दिन में एक प्रयोग करें। बातचीत तो करेंगे ही, तो उस वक्त यह प्रयोग करें कि जब मैं सुन रहा हूं किसी की बात, तब मेरे भीतर कुछ न चले। तब मैं पूरी तत्परता हो जाऊं, पूरी अटेंशन हो जाऊं। पूरा ध्यान मेरा उसको सुनने में हो, मेरे भीतर कुछ भी न चले। अगर तीन दिन इसका थोड़ा प्रयोग किया तो शायद मैं भी जो कहूंगा, दिन के किन्हीं-किन्हीं समय में, वह भी शायद सुनाई पड़ सके। क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता कि मेरी तो आप बात सुन लें और जब आपका मित्र बात कह रहा हो तब आप न सुन पाएं। अगर उसकी सुन पाएंगे तो ही मेरी भी सुन पाएंगे। ये दोनों अलग-अलग बातें नहीं हैं। यहां पक्षी हैं, वे आवाज देंगे, तो उनकी आवाज को भी उतनी ही शांति से सुनें। एक बच्चा रोने लगे तो उसके रोने को भी उतनी ही शांति से सुनें। हवाएं दरख्तों को हिलाएं और उनमें आवाज हो, उसको भी उतनी ही शांति से सुनें। आर्ट ऑफ लिसनिंग जिसको कहें, सुनने की कला।
हम सब बोलने की कला जानते हैं, सुनने की कला कोई भी नहीं। इसलिए तो दुनिया में इतना अजीब हो गया है सब। सारे लोग बोल रहे हैं, सुन कोई भी नहीं रहा है। दुनिया करीब-करीब एक पागलखाने में परिवर्तित हो गई है, जहां लोग बोल रहे हैं और सुनता कोई भी नहीं। यह जो स्थिति है इसमें तो कभी हम किसी सत्य के अभिप्राय और अर्थ के करीब नहीं पहुंच सकते।
तो पहली तो बात यह हैः सुनने की कला। उसको थोड़ा तीन दिनों में प्रयोग करें। उसके ही साथ संबंधित दूसरी बात है, जो सुनने के लिए तैयार हो जाए... और चौबीस घंटे मौके हैं, सुबह जब आप सोकर उठेंगे तब से, रात जब आप सो जाएंगे तब तक। अगर बार-बार उसका ध्यान रखा तो तीन दिन में ही आपको पता चलेगा कि सुनने से क्या हो सकता है! क्या रहस्य खुल सकते हैं जीवन के! तो उस तरफ थोड़ा ध्यान देंगे, पहली बात। दूसरी बात, जो व्यक्ति दिन भर व्यर्थ की बातें बोलता है वह कभी सार्थक बातें समझने में समर्थ नहीं हो सकता है। और

हम दिन भर व्यर्थ की बातें बोलते हैं। अगर चौबीस घंटे जो हम बोलते हैं उस पर थोड़ा सा विचार करें तो पता चलेगा, उसमें से अट्ठानबे प्रतिशत अगर हमने काट दिया होता तो कोई हर्जा नहीं होता।
बोलने के संबंध में टेलीग्रैफिक होना चाहिए। बोलने के संबंध में वैसा
ही ध्यान रखना चाहिए, जैसा हम तार करते वक्त ध्यान रखते हैंः एक-एक शब्द काट देते हैं, क्योंकि एक-एक शब्द का पैसा चुकाना पड़ता है। लेकिन बोलने में हमें कोई ध्यान नहीं है, हम समझते हैं कि बोलने में थोड़े ही कुछ चुकाना पड़ रहा है, कुछ भी बोले चले जाएं।
लेकिन आपको पता नहीं हैः पैसे का कोई मूल्य नहीं है, बोलने में हम जीवन खो रहे हैं। एक-एक शब्द हमारे जीवन की शक्ति को और ऊर्जा को ले जा रहा है। और एक-एक गलत और निद्रा में निकला हुआ शब्द, व्यापक संसार में जाकर कितने उपद्रव खड़ा करेगा, इसका हमें कुछ भी पता नहीं।
तो एक-एक शब्द के संबंध में सचेत होना जरूरी हैः क्या बोल रहे हैं? लाओत्से हुआ चीन में; उसकी एक घटना मन में स्मरण रखेंगे। लाओत्से का
एक मित्र रोज-रोज सुबह-सुबह लाओत्से के साथ घूमने जाता था। यह क्रम वर्षों से चलता था। कोई दो घंटे तक वे मीलों पहाड़ियों में चक्कर लगाते थे। जो कुल जमा बात होती थी वह इतनी ही होती थी, लाओत्से का मित्र कहता, नमस्कार! और लाओत्से कहता, नमस्कार! बस इतनी ही बात होती थी। यह वर्षों से चलता था।
एक दिन उसके मित्र का भी मित्र मेहमान हुआ मित्र के घर में, तो वह अपने मेहमान को भी लाओत्से के साथ घूमने को ले आया। जब वे तीनों लौट आए घूम कर तो लाओत्से ने अपने मित्र के कान में कहा कि भाई, अपने मित्र को कल से मत लाना, यह बहुत बातूनी मालूम पड़ता है। और बातूनी होने का क्या मामला था? मामला कुल इतना था कि रास्ते में मित्र के मित्र ने इतना कहा था, आज मौसम बहुत अच्छा है। बस इतनी ही बात कही थी।
लाओत्से के मित्र ने पूछा, इतनी सी बात के लिए आप कहते हैं बातूनी? लाओत्से ने कहा, बिल्कुल फिजूल बात थी, क्योंकि मौसम हमको भी दिखाई पड़ रहा था, तुमको भी और उसको भी। एकदम एब्सर्ड थी बात, एकदम बेमानी थी, मीनिंगलेस थी, उसमें कोई अर्थ ही नहीं था। क्योंकि मैं भी वहां जिंदा था, तुम भी वहां जिंदा थे, वह भी वहां जिंदा था। हम तीनों देख रहे थे। इसको कहने की कहां जरूरत थी?
अगर ऐसी बात भी अर्थहीन है, तो हमारी और सारी बातों का क्या होगा जो हम चौबीस घंटे किए जा रहे हैं? इन तीन दिनों में थोड़ा ख्याल रखें, अर्थहीन न बोलें। अगर सार्थक को समझना हो तो अर्थहीन न बोलें, क्योंकि जो अर्थहीन बोलता है वह सार्थक को नहीं समझ सकेगा। अगर सार्थक को समझने की बुद्धि उसमें आ जाए तो अर्थहीन नहीं बोल सकेगा। ये दोनों बातें एक साथ नहीं चल सकती हैं।
तो तीन दिनों में थोड़ा इसका ध्यान रखें कि हम अर्थहीन न बोलें, व्यर्थ
न बोलें।
कितना हम व्यर्थ बोल रहे हैं! कितना हम व्यर्थ बोल रहे हैं, चौबीस घंटे बोल रहे हैं! जो बोलने की कमी जागने में रह जाती है, रात नींद में भी बोल कर हम उसे पूरा करते हैं। रात भर भी बोल रहे हैं, दिन भर भी बोल रहे हैं। क्या बोल रहे हैं? क्या कह देना चाहते हैं दुनिया से? इस पर थोड़ा विचार करें, इसे थोड़ा छांटें, इसे बोधपूर्वक जाने दें। जबरदस्ती मौन से बैठ जाने का कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि एक आदमी जबरदस्ती मौन से बैठ जाए तो वह भीतर-भीतर बोलता रहेगा, सुलगता रहेगा, भीतर-भीतर उबलता रहेगा। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मैं मौन के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं कह रहा हूं, बोलने की व्यर्थता को समझें। और अगर बोलना व्यर्थ होता जाएगा, तो जितना बोलना व्यर्थ हो जाएगा उतना गिर जाएगा। और तब एक वास्तविक मौन भीतर विकसित होगा। वह मौन जबरदस्ती नहीं लिया जा सकता कि हम सोमवार मौन रखते हैं, रविवार मौन रखते हैं। ऐसा मौन रखने से कहीं मौन आया दुनिया में? क्योंकि जो आदमी रविवार को समझदार है वह सोमवार को फिर नासमझ हो जाएगा क्या? यह मौन होगा थोपा हुआ जबरदस्ती।
मौन का अर्थ नहीं है; बोलने की व्यर्थता दिखाई पड़नी चाहिए। तो जितना बोलना व्यर्थ है वह खो जाएगा; सार्थक बोलना शेष रह जाएगा। सार्थक बोलना

अत्यंत अल्प है। और बाकी, बाकी जो अंतराल होंगे वे मौन के हो जाएंगे। और बड़े रहस्य की बात है कि मौन से जो बोलना निकलता है, वह बात ही कुछ और है, शब्द का मूल्य ही कुछ और है। और निरंतर बातचीत, निरंतर बातचीत से जो बोलना निकलता है उसका कोई भी मूल्य नहीं है। वह हमारी विक्षिप्तता का हिस्सा है, वह हमारी मैडनेस का हिस्सा है।
आप अगर यह सोचते हों कि आप इसलिए बात कर रहे हैं कि मित्र मौजूद है, इसलिए बात कर रहे हैं, तो आप गलती में हैं। आप सोचते हों कि इसलिए बात करनी जरूरी है कि यह तो मामला बहुत आवश्यक है इसलिए मैं बात कर रहा हूं, तो भी आप गलती में हैं। आपको पता नहीं है, ये बहाने हैं बात करने के। अगर आपको एक कमरे में बिल्कुल अकेला बंद कर दिया जाए, तो दो-चार दिन के बाद आप अकेले में ही बातचीत शुरू कर देंगे। इस पर तो प्रयोग हुए हैं। ये तो हमारे बहाने हैं कि यह जरूरी बात थी इसलिए हम कर रहे हैं। जरूरी बात तो खूंटी की तरह काम कर रही है, जिस पर हम कोट टांग देते हैं अपना खूंटी पर। हमारे भीतर उबल चल रही है, हमारे भीतर उपद्रव चल रहा है, हमारे भीतर एक विक्षिप्त दौड़ चल रही है, उसको हमें टांगना है कहीं भी। तो कोई भी बहाना ले लेते हैं खूंटी की तरह, उस पर टांग देते हैं।
तो इसके प्रति जागना जरूरी है कि हमारे भीतर यह क्या चल रहा है? व्यर्थ बोलने के प्रति अगर तीन दिनों में थोड़ी सजगता आई, तो सार्थक सुनने का सामर्थ्य भी पैदा होगा। तो इन तीन दिनों में यहां व्यर्थ न बोलें।
अभी यहां कहा गया कि यहां सफाई का बड़ा ध्यान है, तो कोई चीज न फेंकें, कुछ गंदगी न फैलाएं।
कोई फिक्र नहीं, थोड़ी-बहुत गंदगी आप फैला भी दें तो वह शारदा ग्राम के संयोजक बाद में साफ कर लेंगे। लेकिन दूसरे के दिमाग में गंदगी न फैलाएं, क्योंकि उसको कोई संयोजक कभी साफ नहीं कर सकेगा। और हम जब भी गलत बोल रहे हैं तो हम दूसरे के दिमाग में गंदगी फेंक रहे हैं। जिससे हम परेशान हैं, वह कचरा हम दूसरे के ऊपर फेंक रहे हैं। और इस तरह हम सब एक-दूसरे के सहयोगी हो गए हैं। तो दुनिया अगर पागल नहीं हो जाएगी तो क्या होगा? हम एक-दूसरे के दिमाग...
अगर मैं आपके घर में आकर कचरा फेंकूं तो झगड़ा खड़ा हो जाए। अगर आप मेरे
घर में कचरा फेंकें तो मैं पुलिस में खबर करूं। लेकिन सुबह से ही मैं आपसे आकर कहता हूं, कहिए, खबर पता चली? और आप पूछते हैं, कौन सी? और मैं कचरा फेंकना शुरू कर देता हूं। और न आप खबर करते हैं पुलिस में, न कोई फिक्र करता है इस बात की कि मैं आपके दिमाग में कचरा डाल रहा हूं।
हम सब एक-दूसरे के दिमाग में कचरा फेंक रहे हैं। और जब भी हम व्यर्थ बोलते हैं तो स्वभावतः कचरा फिंकता है।
तो जब आपको लगे कि कोई बात अत्यंत आवश्यक है, मेरी कहने की मजबूरी के कारण नहीं कि मेरे भीतर उबल रही है इसलिए मुझे कह देना है, बल्कि आपको लगे कि जीवन ने उसे चाहा है, उसकी जरूरत पड़ी है, तब तो ठीक। अन्यथा उसे अपने तक ही रोकें, तो भी बड़ी कृपा है। वह बीमारी संक्रामक न हो और सब तक न जाए। बातचीत की बीमारी बढ़ती चली गई है दुनिया में, मौन एकदम खो गया है, एकदम
खो गया है। तो हमको अगर एकांत में भी बिठाल दिया जाए तो हमारे भीतर बातचीत चलती है। हम किसी से बातचीत करते हैं कल्पना में। डायलॉग चलता है, कोई मौजूद होता है कल्पना में, उसी से बात करते हैं।
तो यहां हम ध्यान करने को बैठेंगे और अगर आपकी ऐसी आदत रही तो ध्यान
तो क्या, आप आंख बंद करके बैठ जाएंगे, और किसी काल्पनिक मित्र से, शत्रु से बातचीत जारी रखेंगे। उसका कोई उपयोग, अर्थ नहीं होगा। ऊपर से दिखाई पड़ेंगे कि हम आंख बंद किए बैठे हैं, भीतर काम जारी रहेगा।
तो दूसरा निवेदन यह है कि यह बातचीत करने की जो बीमारी है, इसके प्रति थोड़ा सचेत होना जरूरी है। इन तीन दिनों में थोड़ा प्रयोग करें। और जिस चीज के प्रति सचेत हो जाएंगे, कठिनाई नहीं है बहुत। हम सचेत नहीं हैं, यही कठिनाई है, और कोई कठिनाई नहीं है। तो जरा देखें कि व्यर्थ की बातचीत आपसे न हो। अगर कोई दूसरा आपके भीतर कचरा डालता हो तो उसको भी थोड़ा सावधान करें कि कृपा करो। इन तीन दिनों में कम से कम मन की एक स्वच्छता पर ध्यान हो।

सड़कें स्वच्छ होनी चाहिए, मकान स्वच्छ होने चाहिए, जरूर। वे अस्वच्छ क्यों हैं? वे इसीलिए अस्वच्छ हैं कि भीतर मन गंदगी से भरा हुआ है। वह गंदगी सड़कों पर भी फैल जाती है, मकानों में भी फैल जाती है। तो हम अगर किसी तरह कोशिश करके मकान और सड़कें साफ भी कर लें, आदत भी बना लें, तो भी बहुत फर्क नहीं पड़ता, हमारी आत्मा वैसी की वैसी रह जाती है। वहां फर्क होने चाहिए।
तो एक तो मैंने आपसे कहा सुनने के संबंध में, लिसनिंग के बाबत तीन दिन प्रयोग करें। और दूसरा बोलने के संबंध में। शब्द क्षीण हो जाए, व्यर्थ हो जाए, और मौन गहरा हो जाए तो सुनना संभव हो जाएगा। ये तो दो सूत्र।
तीसरा सूत्रः शांति से सुनना जरूरी है, सार्थक बोलना जरूरी है, और स्वीकारपूर्वक जीना जरूरी है।
हम अस्वीकार से जीते हैं, रेसिस्टेंस से जीते हैं। हर चीज में रेसिस्टेंस है हमारा।
किसी मित्र ने कहा कि आठ-दस लोग एक कमरे में ठहरेंगे तो बहुत मुश्किल है। पता होता तो हम आते ही नहीं यहां।
अब अगर यह ख्याल मन में आ गया कि आठ-दस लोग जिस कमरे में ठहरे हों उसमें मैं कैसे रह सकता हूं? तो जरूर वे आठ-दस लोग बाधा बन जाएंगे, जरूर बाधा बन जाएंगे। दिमाग ने एक रेसिस्टेंस बना लिया, एक विरोध बना लिया। मैं एक छोटे से रेस्ट हाउस में पीछे मेहमान था। छोटा सा गांव था और गांव भर के कुत्ते उस रेस्ट हाउस के आसपास रात को इकट्ठे हो गए थे। मेरे एक मित्र भी साथ थे, वे करवटें बदलने लगे और उन्होंने कहा कि नींद आनी बहुत मुश्किल है। सोना मुश्किल है। ये कुत्ते तो सब यहां गांव भर के इकट्ठे शोरगुल कर रहे हैं। दो दफा बाहर जाकर उनको भगा भी आए। लेकिन जिसको भी हम भगाएं वह बहुत जल्दी वापस लौट आता है। वे कुत्ते, वे मित्र भीतर भी नहीं आ पाए और वापस आ गए। शायद उन्होंने सोचा होगा कि जरूर यहां कोई महत्वपूर्ण बात है, यहां से भागना ठीक नहीं। तो जहां से भी हम चीजों को हटाते हैं, वहीं वापस लौट आती हैं। कुत्ते भी आदमी से कोई कम समझ तो हैं नहीं, वे भी वापस लौट आए। वे मित्र परेशान हो गए और उन्होंने कहा, यह तो नींद हराम कर दी। मैंने उनसे कहा, इन कुत्तों को पता भी नहीं है कि आप यहां ठहरे हुए हैं। और आपसे इनका क्या संबंध है? और ये क्यों आपकी नींद हराम करना चाहेंगे? इनको कोई पता भी नहीं है आपका। आप चले जाएंगे तब भी ये यहां इकट्ठे होते रहेंगे और चिल्लाते रहेंगे। आपसे इनका कोई संबंध नहीं है। हां, आपका इनसे कोई संबंध जरूर बन गया--रेसिस्टेंस का, विरोध का। कुत्तों को कोई भी पता नहीं है कि आप यहां हैं। उनकी तरफ से कोई नाता नहीं है आपसे, कोई रिलेशनशिप नहीं है। लेकिन आपकी तरफ से नाता खड़ा हो गया है। और वह नाता यह खड़ा हो गया है, इस विचार ने सारी दिक्कत खड़ी कर दी है कि ये कुत्ते भौंक रहे हैं तब तक मैं कैसे सो सकता हूं? मैंने उनसे कहा कि इस विचार की जगह कोई और विचार भी हो सकता है।
उन्होंने पूछा, क्या?
मैंने कहा कि लेट जाएं, और कुत्ते भौंक रहे हैं, इसे शांति से सुनें। इससे विरोध न करें। कुत्ते भौंक रहे हैं, ठीक है। हमारा क्या बस है! आकाश में तारे निकले हुए हैं, जमीन पर पौधे निकले हुए हैं, पक्षी उड़ते हैं, कुत्ते भौंकते हैं, यह हो रहा है। यह जो विस्तीर्ण जगत है उसका हिस्सा है। इसे शांति से सुनें, इसके प्रति विरोध छोड़ दें। और मैंने उनसे कहा कि आप हैरान होंगे कि कुत्तों का भौंकना नींद का तोड़ना तो बनेगा ही नहीं, बल्कि संगीत बन जाएगा और नींद ले आएगा।
वे कोई पंद्रह मिनट लेटे रहे आंख बंद किए। फिर उनकी नींद लग गई होगी। सुबह वे उठे और मुझसे बोले, यह तो बड़ी अजीब बात हुई! मैंने जैसे ही विरोध छोड़ दिया और सुनने लगा उनकी आवाज को... निश्चित ही मैं कौन हूं जो विरोध करूं? जमीन पर मैं भी हूं, कुत्ते भी हैं। कुत्तों का होना भी उतना ही सार्थक है जितना मेरा होना। ठीक है, उनकी आवाज मैं सुनने लगा। और जैसे ही मैं उनकी आवाज सुनने लगा और मेरे भीतर विरोध टूट गया, मैंने पाया कि उनकी आवाज आती है और चली जाती है, पर मेरे भीतर उससे कोई तनाव, कोई विक्षोभ, कुछ

भी पैदा नहीं हो रहा है। थोड़ी देर में उनकी आवाज ने एक अदभुत रूप से संगीत का रूप ले लिया और मैं सो गया।
जीवन में जिन चीजों के प्रति हम विरोध पालते हैं उनसे विसंगीत पैदा होता है। और जो पूरे जीवन के प्रति विरोध से भर जाता है, उसका जीवन पूरा का पूरा दुख, पीड़ा और अशांति हो जाती है, नरक हो जाता है। नरक का अर्थ ही है, सब चीजों के प्रति विरोध का भाव। स्वर्ग का अर्थ है, सब चीजों के प्रति स्वीकार का भाव।
तो इन तीन दिनों में एक सहज स्वीकृति का जीवन आप जीएंगे।
संयोजकों ने अभी कहा कि थोड़ी-बहुत तकलीफें शायद हो जाएं। मैं उनसे प्रार्थना करूंगा, थोड़ी-बहुत तकलीफें वे जान कर दें। शायद हो जाएं तो उतना मजा नहीं, वे थोड़ी कोशिश करें और तकलीफें दें। और उसका स्वीकार का भाव! चीजें जैसी हैं, अगर उनका स्वीकार का भाव ले लें, तो आप पाएंगे कि उनका कष्ट विलीन हो गया।
एक रात एक साध्वी एक गांव में ठहरना चाहती थी। लेकिन उस गांव के लोग दूसरे धर्म के मानने वाले थे और उन्होंने उस साध्वी के लिए दरवाजे बंद कर दिए। और उन्होंने कहा कि यहां नहीं, तुम आगे गांव जाओ। रात घिरने को हो गई थी। औरत थी अकेली, जंगल का रास्ता था, कैसे जाए? लेकिन धार्मिक लोग तो बड़े कठोर होते हैं। उन लोगों ने दरवाजे न खोले सो न खोले।
यह तो निश्चित ही बात है, अब तक जमीन पर अगर धार्मिक लोग कठोर न होते
तो कितनी बेहतर दुनिया न बन गई होती! हिंदू कहां से पैदा होता? मुसलमान कहां से पैदा होता? हमारी कठोरता से पैदा हुआ है। मस्जिद मंदिर के खिलाफ खड़ी कैसे होती? हमारी कठोरता से खड़ी हुई है। वे भी कठोर लोग थे, वे भी धार्मिक लोग थे, उन्होंने कहा कि इस धर्म को हम मानते नहीं। तुम साध्वी किसी और धर्म की। अब जाओ वहीं, यहां रुकने का कोई स्थान नहीं।
उस साध्वी को उस गांव के बाहर चले जाना पड़ा। एक दरख्त के नीचे रात उसे गुजारनी पड़ी। आधी रात गए दरख्त के फूल चटक-चटक कर खिलने लगे तो उसकी नींद खुल गई। उसने आंखें उठा कर ऊपर देखा तो पूर्णिमा का चांद था ऊपर, और दरख्त पर फूल थे जो चटक-चटक कर आवाज करके खिल रहे थे, छोटी-छोटी बदलियां थीं आकाश में घूमती। वह उठी, उसने इतना बड़ा सौंदर्य अपने जीवन में कभी न जाना था। उसने ऐसे बात करते हुए फूल आकाश से कभी न देखे थे। उसने ऐसा चांद भी कभी न देखा था। ऐसी बदलियां भी कभी न देखी थीं। असल में, खुली रात और अकेले जंगल में वह सोई ही नहीं थी, हमेशा आदमी की बंद दीवालों में रही थी। पहला मौका था कि आदमी ने कठोरता से और भूल से उसे दीवाल के बाहर कर दिया था।
वह नाचने लगी। और आधी रात उस गांव में वापस पहुंच गई। और जिन-जिन दरवाजों ने उसे इनकार कर दिया था, उन-उन दरवाजों को उसने जोर-जोर से पीटा। लोग नींद से उठे और बाहर आए। और उस साध्वी ने कहा कि धन्यवाद! अगर कहीं तुमने मुझे ठहरा लिया होता तो आज मैं एक अलौकिक आनंद से वंचित रह जाती। तो मेरे मित्रो, धन्यवाद! तुम्हारी कृपा थी कि तुमने मुझे नहीं ठहराया। और मैंने जो आज जाना और देखा, वह मैंने कभी जाना और देखा नहीं था।
वे गांव के लोग तो हैरान हो गए, उनकी तो कल्पना के बाहर था यह।
यह है स्वीकार का भाव। अगर सांझ वह साध्वी क्रोध से भर कर उस झाड़ के नीचे सोई होती तो क्या होता?
पहली बात--उस रात चांद न निकलता, उस रात फूल न फूलते, उस रात बदलियां न निकलतीं; निकलतीं ही नहीं; उस रात चांद नहीं निकलता, उस रात फूल भी नहीं खिलते। ऐसा नहीं कि फूल नहीं खिलते और चांद नहीं निकलता। चांद तो निकलता, फूल भी खिलते। लेकिन क्रोध में जो हो उसने कभी फूल खिलते देखे हैं? उसने कभी चांद निकलते देखा है? उसने कभी आकाश में बादल तैरते देखे हैं?
नहीं देखे। क्योंकि देखने के लिए तो अविरोधी चित्त चाहिए, नॉन-रेसिस्टेंट माइंड चाहिए। वही जीवन में जो सत्य है और सौंदर्य है, उसको देख पाता है।
तो इन तीन दिनों में नॉन-रेसिस्टेंस का, अप्रतिरोध का, विरोध के अभाव
का अगर हम तीन दिन प्रयोग करेंगे तो शायद इस शिविर के कोई परिणाम हो सकें। नहीं तो कोई परिणाम नहीं होते। तो इन तीन दिनों में इन तीन सूत्रों के लिए निवेदन है।

पहली बातः सुनने की कला के बाबत थोड़े से जागरूक हों।
दूसरी बातः बोलने के संबंध में जो व्यर्थ है उसके प्रति सचेत हों।
और तीसरी बातः हमारे भीतर चौबीस घंटे जो विरोध चलता है सबका, सब स्थिति का, उसके प्रति थोड़े ढीले और शिथिल हों, उसको जाने दें। आज ही रात ऐसे सोएं जैसे संसार से, किसी चीज से आपका कोई विरोध नहीं। सब आपको स्वीकार है। जैसा है, जो है, सब उसकी समग्रता में आपको स्वीकार है। इस स्वीकृति को ही मैं आस्तिकता कहता हूं। इस समग्र स्वीकृति को आस्तिकता कहता हूं।
तो आज रात ऐसे ही सोएं जैसे सब स्वीकार है। और देखें कि नींद कुछ और हो जाएगी। सुबह आप दूसरे आदमी की तरह जागेंगे। और अगर सब स्वीकार है तब आप देख पाएंगे... अभी आप कहते तो हैं कि यह बहुत अच्छी जगह है। यहां दरख्त हैं, छाया है, फूल हैं, पौधे हैं, सफाई है, बहुत सुंदर है, ऐसा कहते हैं, लेकिन अभी ऐसा दिखाई नहीं पड़ा होगा। ऐसा दिखाई पड़ना एकदम आसान नहीं है। और ऐसा अगर दिखाई पड़ जाए तो आप खुद ही एक सुंदर आदमी हो उठेंगे। लेकिन बस हम यह कहते हैं, ये हमारे सीखे हुए शब्द हैं। ये हमने किताबों में पढ़े हैं। ये हमने कविताओं में पढ़े हैं कि जहां बहुत दरख्त होते हैं वहां बड़ी सुंदर जगह होती है। यह हमने जाना नहीं है, यह हमने देखा नहीं है। क्योंकि इसे देखने के लिए जो बात जरूरी है वह हमारे भीतर नहीं है। वह है नॉन-रेसिस्टेंट माइंड। वह एक ऐसा मन, एक ऐसा चित्त है जिसमें विरोध न हो।
तो आज रात ऐसे सोएं जैसे आपका इस संसार से कोई विरोध नहीं है। किसी तल
पर आपका कोई विरोध नहीं है। तो सुबह आप बिल्कुल दूसरी बात अनुभव करेंगे। कल सुबह से ही उठ कर बाकी दो सूत्रों का भी ध्यान रखें। ये तीन सूत्र अगर थोड़े आपने ध्यान रखे, तो कुछ हृदय की बातें जो मुझे आपसे कहनी हैं, वे शायद पहुंच जाएं। और अगर वे पहुंच जाएं तो आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा उन बातों के लिए, अगर वे पहुंच जाएं तो वे खुद अपने आप कुछ करना शुरू कर देती हैं। सत्य के साथ यह एक अदभुत बात है कि सत्य अगर ख्याल में आ जाए तो फिर हमें कुछ करना नहीं पड़ता, सत्य खुद हमारे भीतर कुछ करना शुरू कर देता है। और जब सत्य हमारे भीतर कुछ करना शुरू कर देता है तब जिंदगी में, जिंदगी में कुछ भराव आना शुरू होता है; कुछ फुलफिलमेंट मालूम होता है; लगता है कि कहीं पहुंचे, लगता है कि कुछ पाया, लगता है कि हाथ भरे हुए हैं।
तो परमात्मा से प्रार्थना करता हूं इस उदघाटन चर्चा में कि आपकी मौत आपके हाथ खाली न देखे। और यह तभी हो सकता है जब आपकी जिंदगी आपके हाथों को भरा देख ले। और यह किसी और पर नहीं, बिल्कुल आप पर और एकदम आप पर निर्भर है कि आपके हाथ भरे हो जाएं। हाथ तो भरे हुए हैं, लेकिन देखने की दृष्टि उन हाथों की हमारे पास नहीं है।
इन तीन दिनों में उस तरफ थोड़ा सा हम काम करेंगे। दूर-दूर से आप इकट्ठे हुए हैं। मैं भी आपका स्वागत करता हूं--एक बड़े जीवन के लिए, एक बड़े जीवन के द्वार के लिए आपको आमंत्रित भी करता हूं। परमात्मा करे वह मिले जीवन में जिसे पाए बिना जीवन व्यर्थ है और जिसे पाकर जीवन एक धन्यता बन जाता है, एक कृतार्थता बन जाता है।
तो इधर तीन दिन बहुत कुछ बात आपसे करनी हैं, लेकिन बात कम, कुछ और करना है, जो बात के बाहर है और पार है। उसको ही मैं ध्यान कहता हूं। लेकिन ध्यान से मेरे वे अर्थ नहीं हैं जो प्रचलित हैं। किस बात को ध्यान कहता हूं वह तो हम सुबह से शुरू करेंगे। अभी रात समग्र स्वीकार के भाव से जाकर सो जाएं। और यहां से जाते वक्त ही प्रयोग शुरू करें कि बातचीत शुरू न कर दें। सोते वक्त भी बिना बातचीत के सो जाएं। देखें आपकी बिना बातचीत के दुनिया का कोई हर्जा नहीं हो जाएगा, कोई नुकसान नहीं हो जाएगा। परमात्मा करे जिस आकांक्षा को लेकर आप आए हैं वह पूरी हो सके।
मेरी बातों को इतनी शांति और धैर्य से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

रोम रोम रस पीजिए
दूसरा प्रवचन

अज्ञान का बोध

एक बड़ी राजधानी में राजा की चोरी हो गई थी। सिपाही खोज-खोज कर थक गए थे
और चोरी न पकड़ी जा सकी थी। जैसा कि अक्सर ही होता है, चोर हमेशा सिपाही से ज्यादा होशियार साबित होते हैं, वह चोर भी ज्यादा होशियार साबित हुआ। राजा परेशान हो गया, कुछ जरूरी चीज चोरी में चली गई थी, उसका वापस लौटना आवश्यक था। किसी वृद्ध ने कहा कि गांव में एक आदमी है, जो सभी कुछ जानता है।
गांव में एक शेखचिल्ली था, जो सब कुछ जानता था। शेखचिल्ली हमेशा ही सर्वज्ञ होते हैं। वह भी सर्वज्ञ था। ऐसी कोई बात न थी जो वह न जानता हो, ऐसा कोई प्रश्न न था जिसका उत्तर उसके पास न हो।
अंततः शेखचिल्ली के पास आदमी भेजे गए। उसने कहा, इसमें कौन सी कठिन बात है! मैं बता सकूंगा। लेकिन राजा को ही बताऊंगा। वह भी एकांत में बताऊंगा, वह भी कान में ही बताऊंगा।
एकांत में राजा के पास शेखचिल्ली को ले जाया गया। उस राजा ने पूछा कि बताओ।
उसने कहा, मैं कान में ही बताऊंगा, क्योंकि राजा के मकान की दीवालों
का भी कोई भरोसा नहीं, वे भी सुनती हैं।
राजा के कान में उसने कहा, जैसा कि सभी गुरु कान में मंत्र देते हैं, उसने भी कान में यह बात कही, कान के पास ले जाकर उसने कहा, सच में ही बता दूं?
राजा ने कहा, इसीलिए बुलाया है, इसीलिए आमंत्रित किया है।
तो शेखचिल्ली ने कहा कि मैं बताए देता हूं, किसी को तुम मत बताना, अन्यथा मुझ पर मुसीबत आ सकती है।
राजा ने कहा, बताओ भी! बात गुप्त रखी जाएगी।
उस शेखचिल्ली ने कहा, निश्चित ही कहता हूं, किसी चोर ने चोरी की है।
वह राजा बहुत हैरान हुआ, उसने कहा कि यह क्या बताते हो?
वह शेखचिल्ली हंसने लगा और उसने कहा कि अगर मेरी बात गलत है, तो दुनिया में जितने तत्वज्ञानी हुए हैं, उन सबकी भी बात गलत हो गई।
राजा ने कहा, वह कैसे?
उसने कहा, लोग पूछते हैं संसार किसने बनाया है? वे कहते हैं, हम कान में बताएंगे। और कान में वे बताते हैं कि किसी बनाने वाले ने संसार बनाया है। सो मैंने भी सोचा कि किसी चोर ने चोरी की है।
राजा ने कहा, चोर का नाम भी तो बताओ!
उसने कहा, चोर क्या काफी नाम नहीं! ऐसा ही वे तत्वज्ञानी कहते हैं कि ईश्वर ने इस दुनिया को बनाया है। किसी बनाने वाले ने दुनिया बनाई है। नाम पूछो तो वे कहते हैं ईश्वर।
उस शेखचिल्ली को वापस भेज दिया गया। लेकिन दुनिया से अभी भी तत्वज्ञानियों को वापस नहीं भेजा गया है।
यह कहानी इसलिए आज की सुबह मैं कह रहा हूं और इससे अपनी बात शुरू करना चाहता हूं, मनुष्य के जीवन में थोथे ज्ञान से ज्यादा खतरनाक और कुछ भी नहीं है। सत्य की उपलब्धि में, जिसे हम ज्ञान जानते हैं, वही बाधा है।
कल रात मैंने आपसे कहा कि जो रुक सकते हैं, वे जान सकेंगे कि सत्य क्या है; जो ठहर सकते हैं, वे जीवन की संपदा को उपलब्ध हो जाते हैं। उस ठहरने की दिशा में पहला चरण, यह जो ज्ञान है हमारा, इससे छुटकारा है। सुनी होगी यह बात कि लोग कहते हैं, अज्ञान से छूट जाएं; लेकिन मैं आपसे कहना चाहूंगा, ज्ञान से छूट जाएं। और सुनी होगी यह बात कि लोग आपको ज्ञान सिखाने आते हैं और मैं आपको अज्ञान सिखाने के लिए ही यहां हूं। ज्ञान, यह सारा ज्ञान जो मनुष्य के मन में घर कर गया है, इस ज्ञान ने दो काम कर दिए हैं। एक तो उसके भीतर जो अज्ञान है उसे छिपा दिया है। और किसी भी बीमारी का छिप जाना बहुत खतरनाक होता है। क्योंकि तब बीमारी दिखाई नहीं पड़ती और भीतर-भीतर बढ़ती

है। और किसी बीमारी का छिप जाना इसलिए भी खतरनाक होता कि उसके उपचार का ख्याल भी भूल जाता है। जब बीमारी ही भूल जाती है, तो उसके उपचार का भी ख्याल भूल जाता है।
इस ज्ञान ने हमारे अज्ञान को छिपा दिया है। क्या हम ईश्वर को जानते हैं? नहीं जानते। क्या हम स्वयं को जानते हैं? नहीं जानते। ये चारों तरफ जो वृक्ष लगे हैं, इनको हम जानते हैं? रास्ते पर जो पत्थर पड़े हैं, उनको हम जानते हैं? आकाश में जो तारे हैं, उनको हम जानते हैं? पड़ोस में जो हमारे बैठा हुआ प्राण धड़क रहा है, उसको हम जानते हैं? क्या हम जानते हैं? पति पत्नी को जानता है? मां बेटे को जानती है? क्या हम जानते हैं?
अज्ञान है हमारा गहन। लेकिन उस अज्ञान को हमने बहुत सी ज्ञानपूर्ण बातों में ढांक लिया है और छिपा लिया है। यह छिपाना बहुत खतरनाक हो गया है। क्योंकि इसकी वजह से अज्ञान की जो पीड़ा, अज्ञान की जो अग्नि, अज्ञान की जो लपटें हमें जलानी चाहिए वे अब नहीं जलाती हैं। हम निश्चिंत हो गए हैं और संतुष्ट हो गए हैं। जो ज्ञान से संतुष्ट हो गया है वह सत्य तक कभी नहीं पहुंच पाएगा। क्योंकि ज्ञान का संतोष, उसके अज्ञान को समाप्त नहीं करता, केवल छिपा देता है।
हम सब अपने अज्ञान को छिपाए बैठे हैं। और इस अज्ञान के छिपाने को हम कहते हैं श्रद्धा; इस अज्ञान के छिपाने को हम कहते हैं विश्वास; इस अज्ञान के छिपाने को हम कहते हैं निष्ठा। हमने अच्छे शब्द खोज लिए हैं। मनुष्य बहुत होशियार है, बुरी बातों के लिए हमेशा अच्छे शब्द खोज लेता है। हमारी श्रद्धा, हमारे विश्वास, हमारी बिलीफ्स क्या हैं? अज्ञान को छिपाने के उपाय हैं। छिपा लिया हमने अपने अज्ञान को।
मैं आपसे पूछूंः ईश्वर को जानते हैं? आपका ज्ञान कहेगाः हां, ईश्वर है, उसी ने दुनिया को बनाया है। लेकिन थोड़ा भीतर देखें, सोचें, आप जानते हैं? नहीं; किसी ग्रंथ में पढ़ा है, किसी गुरु से सुना है, परंपरा कहती है; गीता, कुरान, बाइबिल कहते हैं; महावीर, बुद्ध, कृष्ण कहते हैं; कोई कहता है और उसको हमने स्वीकार कर लिया है।
यह जो इस भांति आया हुआ ज्ञान है, इसने अज्ञान को समाप्त किया है? या
कि केवल ढंक दिया है, छिपा दिया है? छिपा दिया है।
अज्ञान छिप गया, यह एक काम किया है इस ज्ञान ने और दूसरा काम यह किया
है कि जीवन से, जो रहस्य था, वह तिरोहित हो गया। जीवन में जो मिस्ट्री है, वह विलीन हो गई। जीवन में जो अज्ञात है, जो अननोन है, वह छिप गया, वह भी ढंक गया। जीवन है बिल्कुल अज्ञात, कुछ भी उसमें हमें ज्ञात नहीं है। लेकिन हमने कुछ कल्पनाएं और कुछ विश्वास इकट्ठे कर लिए हैं और जीवन का वह जो अज्ञातपन है, वह जो अननोन मिस्ट्री है, वह समाप्त हो गई। हमें ऐसा लगने लगा, जैसे हम जानते हैं।
बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने गांव वापस लौटे थे। तो सारा गांव उन्हें लेने गया था, लेकिन बुद्ध की पत्नी उन्हें लेने नहीं गई। सोचा होगा उसने, जानती हूं भलीभांति इस व्यक्ति को, यही व्यक्ति बारह वर्ष पहले छोड़ कर भाग गया था। क्या था बुद्ध में जो वह जाती लेने? ज्ञात था, सब पता था, नहीं गई।
बुद्ध के पिता लेने गए थे। बुद्ध के पिता ने गांव के बाहर ही बुद्ध को कहा, मेरे द्वार अब भी खुले हैं, अगर वापस लौट आना हो। पिता का हृदय मेरे पास है। तूने जो दुख पहुंचाया है, उसको भी क्षमा कर दूंगा। तूने जो पीड़ा दी है बुढ़ापे में, वह भी माफ कर दूंगा। मैंने अभी भी अपने द्वार बंद नहीं किए हैं, वापस लौट आओ। और यह शोभा नहीं देता है! हमारे परिवार में, हमारे वंश में कभी किसी ने भिक्षा नहीं मांगी। और तुम भिक्षा मांगोगे और रास्तों पर भिक्षापात्र लेकर चलोगे?
बुद्ध के पिता क्रोधित थे। लेकिन बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने कहा, क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि एक बार मुझे गौर से देखें! क्या मैं वही हूं जो आपके घर से गया था? और क्या आप निश्चित हैं कि जब मैं आपके घर से गया था, तब आप मुझे जानते थे? और अब तो जानने की बात बहुत दूर हो गई, बारह वर्ष में गंगा में बहुत पानी बह चुका है।

बुद्ध के पिता ने गौर से देखा होगा, कहा कि ठीक से जानता हूं! मेरे ही लड़के हो और मैं न जानूंगा? मेरे ही खून से बने हो और मैं न जानूंगा? मैंने ही जन्म दिया और मैं न जानूंगा?
तो बुद्ध ने कहा था, निश्चित ही जन्म दिया है आपने, फिर भी जिसे जन्म दिया है वह बहुत अज्ञात है। और निश्चित ही मैं आपसे होकर इस दुनिया में आया हूं, लेकिन केवल इस कारण क्या आप मुझे जान सकेंगे? जिन रास्तों पर से मैं निकला हूं, क्या वे रास्ते मुझे जानते हैं? आप भी एक रास्ता थे, एक मार्ग थे जिससे मैं आया। लेकिन इससे क्या आपने मुझे जान लिया? मैं तो खुद ही अपने को नहीं जानता था, तो आप मुझे कैसे जान पाए होंगे?
लेकिन पिता को लगता है वह पुत्र को जानता है; मां को लगता है वह अपने बेटे को जानती है; पति को लगता है वह अपनी पत्नी को जानता है। हम सारे लोग जानने के भ्रम में हैं। जब कि सच्चाई यह है कि हम अपने को भी नहीं जानते हैं, तो हम दूसरे को कैसे जान सकेंगे?
चारों तरफ जो जीवन विस्तीर्ण है, वह बिल्कुल अज्ञात है, बिल्कुल अननोन है। लेकिन हमने जानने के थेगड़े लगा लिए हैं, और हम सोचते हैं कि जानना हो गया। जिस आदमी को यह ख्याल पैदा हो गया हो कि उसने जान लिया है कुछ, उसकी जानने की यात्रा आगे के लिए बंद हो जाती है। इसलिए मैं कहता हूं कि आज की सुबह तो मैं अज्ञान के संबंध में कुछ कहूंगा। जो आदमी यह जान लेता है कि मैं बिल्कुल नहीं जानता हूं, उसकी जानने की यात्रा का द्वार खुल जाता है।
अज्ञान की सहज प्रतीति, वह जो इग्नोरेंस है हमारे भीतर, उसका सहज स्वीकार, उसका सहज अनुभव। और उस सारे ज्ञान को हटा देना जो उस अज्ञान को ढांकता हो। तो दो बातें घटित हो जाएंगी। एक तो ज्ञान से जो स्वयं के भीतर का अज्ञान ढंका है, वह उघड़ आएगा; और ज्ञान से बाहर का जो रहस्य ढंक गया है, वह फिर रहस्यपूर्ण हो जाएगा। जिन चीजों को भी हम जानते प्रतीत होने लगते हैं, वे हमारे लिए रहस्यमय नहीं रह जाती हैं।
यहां नये मित्र आए हैं, इस जगह को देख कर उन्हें आनंद होगा। क्यों? क्योंकि यह जगह बड़ी नई है और बड़ी रहस्यपूर्ण मालूम होगी। इसके वृक्ष नये हैं, इसकी हवाएं नई हैं। लेकिन जो यहां रहते हैं उनके लिए यह रहस्य समाप्त हो गया होगा। लोग कश्मीर देखने जाते हैं और हिमालय। लेकिन जो वहां रहता है, वहां उसे कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उसे यह ख्याल पैदा हो गया है कि वह जानता है।
कवि बायरन ने अंतिम दिनों में शादी की थी। जिस स्त्री से उसने शादी की, उसके पीछे महीनों पागल रहा था। बड़ी कठिनाई थी विवाह के होने में। लेकिन अंततः वह जीत गया और विवाह हो सका। वह चर्च से अपनी नई-नई विवाहित पत्नी का हाथ पकड़ कर सीढ़ियां नीचे उतरता था। अभी चर्च की घंटियां बज रही थीं जो उसके विवाह की खुशी में बजाई गईं, और अभी वे मोमबत्तियां नहीं बुझी थीं जो जलाई गई थीं। सीढ़ियों पर हाथ पकड़े उतरता था, जाकर गाड़ी में अपनी पत्नी को हाथ पकड़ कर बिठाता था, और तभी एक दूसरी स्त्री सड़क पर उसे दिखाई पड़ी--और एक क्षण को उसकी पत्नी विलीन हो गई और दूसरी स्त्री ही उसकी आंखों में आ गई। वह भूल गया कि उसकी पत्नी का हाथ उसके हाथ में है--उस पत्नी का जिसके लिए वह वर्षों से पागल था और न मिलती तो शायद आत्महत्या कर लेता या पागल हो जाता या न मालूम क्या करता!
क्षण भर बाद उसे ख्याल आया, वह दूसरी स्त्री निकल चुकी थी, उसने अपनी पत्नी को कहा कि बड़ी हैरानी की बात हो गई है! जैसे ही तुम से मेरा विवाह पूरा हो गया, मैं पाता हूं कि अब तुममें मेरा कोई, तुममें मुझे कुछ रसपूर्ण नहीं मालूम हो रहा है। तुम्हें पाने की सारी आकांक्षा विलीन हो गई है। और अभी एक क्षण मुझे कोई दूसरी स्त्री दिखाई पड़ी और एक क्षण में तुम मेरे लिए मिट गईं, और मेरे मन की एक कामना ने उसका पीछा किया, और मैंने एक क्षण में उसे पाने का सपना देखा, और तुम मेरे लिए नहीं थीं! और मैं जानता हूं, अगर तुम से मेरा विवाह न होता तो जीवन भर मैं तुम्हारे सपने देखता, शायद जी भी न सकता!
शायद बायरन को भी समझ में नहीं आया होगा कि क्या बात हो गई। बात यह हो
गई थी कि जिसे हम पा लेते हैं और जिसके संबंध में ख्याल होता है कि हमने

जाना, उसके भीतर से सारी मिस्ट्री, सारा रहस्य विलीन हो जाता है। यही तो सारे जीवन की दौड़ है! जिस चीज को हम नहीं पाते हैं, उसमें रस मालूम होता है, अर्थ मालूम होता है। पा लेते हैं, रस विलीन हो जाता है, अर्थ भी विलीन हो जाता है। क्योंकि हमें लगता है कि पा लिया, जान लिया, हो गया।
लेकिन ऐसी चित्त की जो स्थिति है, जो इस भांति जान लेती है, महज परिचय
को ज्ञान समझ लेती है, ऐसी चित्त की स्थिति जड़ हो जाती है, उसकी संवेदनशीलता खो जाती है, उसका रहस्य खो जाता है। और जिस व्यक्ति के जीवन में रहस्य खो जाता है, उसके जीवन में धर्म का कोई स्थान नहीं हो सकता है। वह कितना ही राम-राम जपे, उसके राम-राम जपने का कोई अर्थ नहीं है। वह कितनी ही गीता और कुरान पढ़े, उसका भी कोई अर्थ नहीं है। अगर समग्र जीवन उसे रहस्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता है, तो उसकी इन सारी बातों का कोई अर्थ नहीं है।
जीवन की जो रहस्यात्मकता है, जीवन का जो अनजानापन है, जीवन का जो अपरिचय है वही, जीवन में जो अज्ञात है वही, उसको ही जब हृदय में द्वार मिलता है तो परमात्मा की या सत्य की प्रतीति होनी शुरू होती है। इसलिए मैं कहूं, ज्ञानी कभी परमात्मा को नहीं जान पाते हैं। पंडितों का परमात्मा से आज तक कोई संबंध नहीं हुआ और न आगे हो सकेगा। नहीं हुआ इसीलिए, न हो सकेगा इसीलिए क्योंकि वे इस भ्रम में हैं कि वे जानते हैं।
सुकरात के मरने के कुछ दो-चार महीने पहले की घटना है। एक व्यक्ति को आती थी देवी, वह आवेश में आकर व्यक्ति कुछ कहता था। लोग जो पूछते थे उसके उत्तर देता था। किसी ने यह पूछा कि एथेंस में सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है? तो उस आविष्ट व्यक्ति ने कहा कि सुकरात। लोग सुकरात के पास गए और उन्होंने सुकरात से कहा कि घोषणा हुई है कि तुम ही सबसे बड़े ज्ञानी हो।
सुकरात ने कहा कि जाओ और कहना कि जरूर कोई भूल हो गई है। जब मैं छोटा बच्चा था तो मुझे लगता था कि मैं बहुत कुछ जानता हूं। जब मैं जवान हुआ तो मेरे जानने के भवन की बहुत सी ईंटें गिर गईं, बहुत सी दीवालें गिर गईं। जानने का भवन खंडहर हो गया। जवानी में मैंने जाना कि बहुत अल्प है जो मैं जानता हूं। लेकिन जब से मैं बूढ़ा होना शुरू हुआ, अब तो भवन बिल्कुल गिर गया है और अब कोई भवन नहीं है। अब मैं जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता हूं। तो जाओ और कह देना कि सुकरात तो है महाअज्ञानी। भूल हो गई है कोई जो तुमने कहा कि एथेंस में सबसे बड़ा ज्ञानी वही है। वह तो है महाअज्ञानी।
वे लोग वापस लौटे और उस आविष्ट व्यक्ति को जाकर कहा कि भूल हो गई है कोई, सुकरात तो खुद कहता है कि मैं महाअज्ञानी हूं।
उस आविष्ट व्यक्ति ने कहा, इसीलिए! इसीलिए तो कहा कि उससे बड़ा और कोई ज्ञानी नहीं।
जिसे अपने अज्ञान का बोध होता है, पूरे अज्ञान का बोध होता है, उसके जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। और उस क्रांति से जो वह जान पाता है, वही जानना है, वही ज्ञान है। बाकी सब झूठा है, बाकी सब अज्ञान है।
सत्य की खोज में या स्वयं की खोज में पहला बिंदु अज्ञान का बोध है। क्या अज्ञान का बोध हमें है?
न तो आस्तिक को होता है अज्ञान का बोध, न नास्तिक को होता है। आस्तिक कहता है, ईश्वर है। नास्तिक कहता है, ईश्वर नहीं है। दोनों जानते हुए मालूम पड़ते हैं। नहीं; उन्हें बोध नहीं होता। जिसे अज्ञान का बोध होता है वह न तो यह कह सकता है कि क्या है...
जो अत्यंत अज्ञात है, जीवन है उससे संबंधित।...
सुकरात ने जीवन भर जिस भवन को गिराया, हम तो उस भवन को मजबूत बनाते हैं, और बड़ा बनाते हैं। हम तो बचपन में अज्ञानी होते हैं, बूढ़े होते-होते ज्ञानी हो जाते हैं। सुकरात तो बड़ा गड़बड़ रहा होगा, बचपन में ज्ञानी था, बूढ़ा हुआ तो अज्ञानी हो गया।
लेकिन मुझे भी यही दिखाई पड़ता है। बचपन में ज्ञान हो तब तो ठीक। ज्ञानी होना चाइल्डिश होना है, बचकाना होना है। तो बचपन में तो शोभा देता है कि किसी को यह भ्रम हो कि मैं जानता हूं। लेकिन बुढ़ापे में यह शोभा नहीं देता। जो ठीक से बूढ़ा होता है, उसका ज्ञान विलीन होता जाता है उम्र के साथ ही साथ। बूढ़ा होते-होते वह निपट अज्ञानी हो जाता है। उसे कुछ भी ज्ञात

नहीं होता कि मैं जानता हूं। यही ठीक और सम्यक विकास है। इसका अर्थ हुआ कि वह प्रौढ़ हो गया, वह वृद्ध हो गया, वह बच्चा नहीं रहा।
लाओत्से के संबंध में बड़ी प्रसिद्ध बात है कि वह बूढ़ा ही पैदा हुआ था। बड़ी अजीब बात है कि कोई आदमी बूढ़ा ही पैदा हो! क्या उसके लक्षण रहे होंगे बूढ़े पैदा होने के? बाद में जब किसी ने उससे पूछा कि यह अफवाह सुनी जाती है कि तुम बूढ़े ही पैदा हुए थे! तो लाओत्से ने कहा, हां, मुझे बचपन में भी यह भ्रम नहीं था कि मैं जानता हूं।
लेकिन ऐसे बच्चे खोजने तो कठिन हैं, जिनको यह भ्रम न हो कि मैं जानता हूं। दुर्भाग्य तो यह हो गया है, ऐसे बूढ़े खोजने भी कठिन हो गए हैं। जैसे-जैसे जीवन का बोध विकसित होता है, वैसे-वैसे यह दिखाई पड़ेगा कि मनुष्य तो है बहुत छोटा और जीवन है बहुत बड़ा। हमारी बुद्धि तो है जरा सी और सत्य है बहुत विराट, असीम और अनंत। कैसे हम जान सकेंगे? कैसे हो सकेगा जानना? और यह जानना, क्या सिवाय हमारे अहंकार के कुछ और है? नहीं; जानना नहीं हो सकता है इस भांति। लेकिन हम इकट्ठा करते रहते हैं। हम गीता कंठस्थ करते हैं और ज्ञानी हो जाते हैं। हम कुरान पढ़ लेते हैं और ज्ञानी हो जाते हैं। हम कुछ शब्द दोहराना सीख जाते हैं और ज्ञानी हो जाते हैं। हम कुछ रिपीट करना सीख जाते हैं--उपनिषद के वचन, और वेदों के वाक्य, और महावीर और बुद्ध की वाणी, और संतों के वचन हमें याद हो जाते हैं--और हम ज्ञानी हो जाते हैं। ज्ञानी हम इतने सस्ते में हो जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं है। थोड़ा सा हम पढ़-लिख लेते हैं और हम जानने वाले हो जाते हैं। और जो नहीं पढ़े-लिखे होते हैं उनके हम गुरु हो जाते हैं। और उन्हें हम नीचा देखने लगते हैं और खुद को ऊंचा देखने लगते हैं।
यह सारा जानना अहंकार की सजावट है, और कुछ भी नहीं। और अहंकार जितना पुष्ट हो जाता है उतनी ही कठिनाई हो जाती है, उतनी ही कठिनाई हो जाती है। क्योंकि उतनी ही हमारे भीतर जड़ता हो जाती है, उतनी ही संवेदनशीलता क्षीण हो जाती है, उतनी ही जीवन से जुड़ने की क्षमता क्षीण हो जाती है, उतने ही हम अपात्र हो जाते हैं।
तो यह जो हमारा मन है, जो गीता को कंठस्थ करता है, उपनिषद सीखता है, बाइबिल और कुरान सीख लेता है, यह मन कभी परमात्मा को नहीं जान सकेगा, कभी नहीं जान सकेगा। क्योंकि यह जो भी जानने लगता है, जिससे ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जान रहा हूं, वह ख्याल बिल्कुल झूठा है। शब्दों को जानने से सत्य नहीं जाना जाता है। शब्दों के जानने से प्रेम नहीं जाना जा सकता, शब्दों के जानने से परमात्मा नहीं जाना जा सकता। लेकिन शब्दों का बड़ा जाल है और वही हमारा ज्ञान है।
एक बाउल फकीर था बंगाल में। बाउल फकीर तो नाचते हैं, गीत गाते हैं और प्रेम की बातें करते हैं। बाउल फकीर ज्ञानी नहीं होते हैं। ऐसे कोई भी फकीर कभी ज्ञानी नहीं होता है। और अगर ज्ञानी हो तो जानना चाहिए वह फकीर नहीं है। उस बाउल फकीर के पास एक बहुत बड़ा पंडित पहुंचा। वैष्णव पंडित था। शास्त्र उसे कंठस्थ थे, दूर-दूर तक उसकी ख्याति थी। वह गया और उसने उस फकीर को कहा कि मैंने सुना है कि तुम प्रेम की बातें करते हो, लेकिन तुम्हें पता भी है कि प्रेम कितने प्रकार का होता है?
स्वभावतः, पंडित हमेशा प्रकार की भाषा में पूछता है। वह कहता है, प्रेम कितने प्रकार का होता है? कौन से वाले परमात्मा को मानते हो--हिंदू के कि मुसलमान के? कितने प्रकार के परमात्मा होते हैं? कौन से सत्य को मानते हो--गीता के कि कुरान के? वह तो हमेशा प्रकार में पूछता है। पंडित की भाषा प्रकार की भाषा होती है। तो उसने भी पूछा। इसमें नाराज होने की कोई भी बात नहीं, हंसने की भी कोई बात नहीं, पंडित हमेशा ऐसे ही पूछता रहा है। उसने पूछा उस फकीर को कि प्रेम कितने प्रकार का होता है? प्रेम-प्रेम लगाए रहते हो दिन-रात! जानते हो प्रेम कितने प्रकार का होता है?
वह फकीर बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने कहा कि प्रेम तो मैंने जाना, लेकिन प्रकार का मुझे आज तक पता नहीं चला। प्रेम तो मैंने जरूर जाना, लेकिन प्रकार मेरे रास्ते में नहीं आए। तुम ही मुझे ज्ञान दो! तुम ही मुझे बताओ!

उस पंडित ने अपने झोले में से एक किताब निकाली। और पंडित हमेशा किताब साथ रखते हैं। कुछ झोले में रखते हैं; जो बहुत मजबूत होते हैं, ताकतवर होते हैं, वे सिर में रखते हैं। कुछ झोले में, कमजोर जो होते हैं वे झोले में रखते हैं। कुछ जरा स्मृति जिनकी अच्छी होती है वे सिर में रख लेते हैं। लेकिन झोले में वजन कम पड़ता है, सिर पर वजन ज्यादा पड़ता है। क्योंकि सिर बड़ी छोटी जगह है और उसमें बहुत किताबें हो जाती हैं तो सिर बहुत बोझिल हो जाता है, भारी हो जाता है। इसलिए झोले में ही रखना अच्छा है। लेकिन झोले वाले पंडित को लोग छोटा पंडित समझते हैं। इसलिए असली पंडित सिर में रखते हैं।
उसने झोले से अपनी किताब निकाली। वह पूरा पंडित न रहा होगा, नहीं तो फकीर के पास जाता ही क्यों? थोड़ा कम रहा होगा, झोले में किताब रखता था, इसलिए गया था फकीर के पास। उसने किताब निकाली और कुछ सूत्र किताब में से पढ़ कर बताए और कहा कि प्रेम पांच प्रकार का होता है। और सूत्र पढ़ कर सुनाए, उनकी व्याख्या की और समझाया। और पीछे उस फकीर को पूछा कि कहो, कैसा लगा? ठीक है या कि गलत?
वह फकीर खड़े होकर नाचने लगा। बड़ी ठीक तो बात न थी यह। क्योंकि पंडित आया था विवाद को और नाच कर उत्तर देना किसी भी तरह उचित न था। लेकिन फकीरों के अपने रास्ते हैं उत्तर देने के। वह नाचने लगा और उसने एक गीत गाया। और उस गीत में उसने जो कहा वह बहुत अदभुत है। उसने उस गीत में कहा कि हे पंडित, हे ज्ञानी, तुम्हारी बातें सुन कर मुझे कैसा लगा, पूछते हो? मुझे वैसा लगा जैसा एक बार एक सर्राफ सोने के कसने के पत्थर को लेकर फूलों की बगिया में चला गया था और फूलों को पत्थर पर कस-कस कर देखने लगा था कि कौन सा फूल सच्चा, कौन सा फूल झूठा! तो बगीचे के माली को जैसा लगा था, वैसा ही मुझको भी लगा। जब तुम प्रेम के प्रकार बताने लगे और तर्क पर कस-कस कर समझाने लगे, तो मुझे वैसा ही लगा जैसे कोई सोने के कसने के पत्थर को ले जाए फूलों की बगिया में और फूलों को कस-कस कर देखने लगे, मुझे वैसा ही लगा।
उस पंडित ने समझा होगा--पागल है। पंडित हमेशा, जो प्रेम करते हैं, उनको पागल समझता रहा है। क्योंकि पंडित तो प्रेम को जानता नहीं। उठ कर चला गया होगा कि ऐसे आदमी से क्या बात करनी! लेकिन जो उस फकीर ने कहा था वह बहुत अदभुत था। प्रेम में प्रकार कहां! और जो प्रेम के प्रकारों को जानता है, वह प्रेम को कभी नहीं जानेगा! क्योंकि प्रेम के संबंध में उसने कुछ शब्द सीख लिए हैं। शब्दों का अपना गणित है, अपना जाल है। शब्दों की अपनी कुशलता है, अपनी कला है। और हम सारे लोग शब्दों को सीखे बैठे हुए हैं। और इन शब्दों को सीख लेने को ही हमने जाना है ज्ञान।
यही शब्द हमारी बाधा बन गए हैं, यही शब्द रुकावट बन गए हैं। यही है दीवाल जो हमें तोड़ती है, उससे जो चारों तरफ हमारे मौजूद है। शब्दों की इस दीवाल को गिरा देना होगा, शब्दों की इस दीवाल को मिटा देना होगा। सिद्धांतों और शब्दों की इस दीवाल ने ही तो हिंदू और मुसलमान खड़े किए हैं, जैन और ईसाई, बौद्ध और पारसी खड़े कर दिए हैं। क्योंकि सबकी शब्दों की दीवाल अलग-अलग है, इसलिए वे अलग-अलग हैं। और फासला क्या है? मेरे और आपके बीच शब्दों के अतिरिक्त और क्या फासला है? एक हिंदू और मुसलमान के बीच शब्दों के अलावा और कौन सी दीवाल है? एक ने कुरान के शब्द सीखे हैं, एक ने गीता के शब्द सीखे हैं। उनके शब्द अलग-अलग हैं, इसलिए दो आदमी अलग-अलग हो गए हैं। और शब्दों पर हजारों वर्ष से मनुष्यता लड़ रही है। आदमी की हत्या कर रही है शब्दों के लिए। कि वे कहते हैं, गीता के शब्द सच्चे हैं और कुरान के गलत। इस पर लड़ाई चल रही है, इस पर हत्याएं हो रही हैं। इस पर हत्याएं होती रही हैं, मंदिर और मस्जिद जलते रहे हैं और आदमी को मिटाया जाता रहा है। और ये शब्द जो मनुष्य को मनुष्य से तोड़ देते हों, ये शब्द मनुष्य को परमात्मा से कैसे जोड़ेंगे?
शब्द नहीं जोड़ सकता परमात्मा से मनुष्य को! शब्द तो आदमी को आदमी तक
से तोड़ देता है! तो जो आदमी को आदमी से तोड़ देता है, वह मनुष्य और परमात्मा के बीच जोड़ने वाली कड़ी कभी नहीं बन सकेगा।
निःशब्द जोड़ता है मनुष्य को परमात्मा से। और निःशब्द ही जोड़ता है मनुष्य को मनुष्य से। जब भी हम किसी के प्रति निःशब्द और मौन हो जाते हैं

तभी हम जुड़ते हैं। इसीलिए प्रेम में शब्द खोजने कठिन हो जाते हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं उससे बात करनी कठिन हो जाती है कि क्या बात करें! उसके बीच, हमारे बीच शब्द खो जाते हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं उसके-हमारे बीच शब्द गिर जाते हैं। और जब शब्द गिर जाते हैं तो हृदय हृदय तक पहुंचता है। शब्द तो केवल बुद्धि का व्यापार है। और बुद्धि तोड़ती है, जोड़ती कभी भी नहीं। हृदय जोड़ता है। हृदय के पास कोई शब्द नहीं है। पंडित सिर्फ बुद्धि रह जाता है, उसका हृदय खो जाता है।
तो यह जो दीवाल है शब्द की, सिद्धांत की, इसे खो देना होगा।
लेकिन हम तो इसी को सीखते फिरते हैं। हो सकता है कुछ मित्र यहां भी आए हों, कि यहां से भी कुछ शब्द सीख कर चले जाएं। तो फिर वे और दीवाल को मजबूत कर लेंगे।
यहां तो दीवाल को तोड़ने की कोशिश करनी है तीन दिनों में। अगर यहां से
आप निपट अज्ञानी होकर चले जाएं तो काम पूरा हो गया। यहां से जाते वक्त अगर आपको ऐसा लगने लगे कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं, तो काम पूरा हो गया।
यह जो स्टेट ऑफ नॉट-नोइंग है, यह जो न जानने की भाव-दशा है, यह धार्मिक चित्त की पहली सीढ़ी है--न जानने की भाव-दशा। न जानने में आदमी एकदम सरल हो जाता है, जानने में जटिल हो जाता है। और जानना बिल्कुल असत्य है और न जानना बिल्कुल सत्य है। यह तथ्य है कि हम नहीं जानते हैं और यह बिल्कुल कल्पना है कि हम जानते हैं।
लेकिन बड़ी कठिनाई है इस दीवाल को तोड़ने में। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है
कि कोई भी अपने को अज्ञानी नहीं मानना चाहता है, नहीं जानना चाहता है। हम सब अपने को ज्ञानी जानना चाहते हैं। हम सब अपने को ज्ञानी जानना चाहते हैं। कौन है राजी जो इस बात के लिए राजी हो कि मैं अज्ञानी हूं।
टॉल्सटॉय एक दिन सुबह-सुबह चर्च में गया। गांव का एक बहुत बड़ा पंडित, धनी और बहुत ख्यातिप्राप्त व्यक्ति भी चर्च में पहले से मौजूद था। रविवार का दिन था और वह सुबह ही चर्च में आकर भगवान से प्रार्थना कर रहा था। अंधेरा था। टॉल्सटॉय भी पीछे खड़ा हो गया। वह जो गांव का बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति था, वह हाथ जोड़ कर परमात्मा से कह रहा था कि हे परम प्रभु, मैं तो बिल्कुल अज्ञानी हूं; मैं तो कुछ भी नहीं जानता; मैं तो पापी हूं; मैंने तो बहुत पाप किए। वह ये सारी बातें कह रहा था।
टॉल्सटॉय ने सुना, टॉल्सटॉय बहुत प्रसन्न हुआ, बहुत हैरान भी हुआ। उसने कहा कि यह तो हमें पता ही नहीं था कि यह पंडित जो है यह भी अज्ञानी है! जाएं हम जल्दी और गांव में खबर कर दें कि हम भ्रम में पड़े थे कि यह आदमी पंडित है। यह आदमी चर्च में भगवान से कह रहा था कि मैं अज्ञानी हूं। और हम भ्रम में थे कि हम इसको समझते थे कि बड़ा पुण्यात्मा है। यह तो वहां कह रहा था कि मैं महापापी हूं।
वह आदमी निकला और टॉल्सटॉय भी उसके पीछे निकला। सुबह होने लगी थी, गांव जगने लगा था, लोग चलने लगे थे। चौरस्ते पर जब गांव के पहुंचे, तो टॉल्सटॉय ने कहा कि रुको भई! उस पंडित को कहा कि ठहरो! तुमने जो चर्च में कहा था, मैं यहां चौरस्ते पर इन लोगों को इकट्ठा करके बता दूं। पूरा गांव भ्रम में पड़ा हुआ है कि तुम ज्ञानी हो और तुम पुण्यात्मा हो।
उस आदमी ने कहा कि चुप! अगर उस बात को यहां कहा तो अदालत में मुकदमा चलवाऊंगा। वह मेरे और परमात्मा के बीच की बात है। उसे यहां सब के बीच कहने की जरूरत नहीं है।
हम सारे लोग भी अपने और परमात्मा के बीच भलीभांति जानते हैं कि अज्ञानी हैं, भलीभांति जानते हैं, भलीभांति जानते हैं कि बिल्कुल अज्ञानी हैं। लेकिन सबके सामने कौन कहे? चौरस्ते पर कौन कहे? बाजार में कौन कहे? और इसीलिए दुनिया में झूठा ज्ञान बढ़ता चला जाता है। बाप अपने बेटे को दे देता है, जिन बातों को वह खुद नहीं जानता था, वह अपने बेटे को सम्हाल देता है। बेटा पूछता है, दुनिया किसने बनाई? बाप कहता है, भगवान ने। और बेटा अगर शक करे, तो वह कहता है, बिगड़ गए हो, कलियुग आ गया है। हम जानते हैं और तुम शक करते हो! और वह खुद भी नहीं जानता! और इस भांति ज्ञान के नाम से महाअज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता चला जाता है। अब यह सारी दुनिया परेशान हो गई है, पांच-छह हजार वर्ष का इसी तरह का अज्ञान सबके चित्त पर इकट्ठा हो गया है। बाप

बेटे को दे देता है, बेटा फिर बेटों को दे देता है और देता चला जाता है। और कोई यह स्वीकार नहीं करता अपनी सरलता में कि मैं नहीं जानता हूं।
लेकिन जो इसको स्वीकार नहीं करता पूरी सरलता में, पूरी समग्रता में,
वह कभी जानने में समर्थ नहीं हो सकेगा। इस जानने के अहंकार को तो खोना ही होगा। और इसे खोने में कुछ खोना नहीं है, यह केवल वहम है कि हम जानते हैं। थोड़ा इसे सोचें, थोड़ा विचार करें, तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा--नहीं जानते हैं, नहीं जानते हैं। विश्वास कर लिया है। और सैकड़ों वर्षों से समझाया गया हैः विश्वास करो। और विश्वास के नीचे अंधेरा छिपा है, उसे मत देखो। विश्वास के पीछे संदेह छिपा है, उसे मत देखो। और इस भांति हमने एक अजीब अपने मन की स्थिति बना ली है। अंधकार को छिपा दिया, संदेह को छिपा दिया, विश्वास के वस्त्र ओढ़ लिए हैं और ज्ञान के वस्त्र ओढ़ लिए हैं।
यह स्थिति शुभ नहीं है। क्या करना होगा इसको छोड़ने को? कुछ करना नहीं होगा, सिर्फ इस सत्य को देख लेना पर्याप्त है इसके छूट जाने के लिए। और जब भी आप ज्ञान की बातें बोलने लगें तो थोड़ा सजग होना जरूरी है कि जिन बातों को आप नहीं जानते हैं उन्हें कह रहे हैं। जिन बातों से आपका कोई संबंध नहीं है, कोई नाता नहीं है, उन्हें आप इस भांति कह रहे हैं जैसे वे सत्य हों। सजग होना थोड़ा सा जरूरी है। और चित्त में अपने थोड़ा सा इसकी खोज कर लेनी जरूरी है कि मेरा ज्ञान कहां है? वहां कोई जड़ें न पाई जाएंगी, वहां ज्ञान की कोई जड़ें न होंगी। ऊपर से खोंसे हुए पत्ते हैं, ऊपर से लगाए हुए फूल हैं, कागज के हैं, झूठे हैं। इस ज्ञान को तो छोड़ देना जरूरी है।
तो मैं आपसे नहीं कहता आप संसार छोड़ दें; मैं आपसे नहीं कहता आप पत्नी
को छोड़ दें, बच्चों को छोड़ दें; मैं आपसे नहीं कहता जीवन को छोड़ कर पहाड़ों पर चले जाएं। मैं आपसे कहता हूं, अहंकार के पहाड़ से थोड़ा नीचे उतर आएं। यह जानने के पहाड़ पर जहां बैठे हुए हैं उससे थोड़ा नीचे उतर आएं, यह जानने का पहाड़ बिल्कुल झूठा है। जमीन पर आ जाएं। बहुत गहरी सच्चाई है यह सीधा-सीधा जानना--कि नहीं जानते हैं।
और अगर यह दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो यही जीवन, यही जीवन दूसरा हो जाएगा, क्योंकि आपकी दृष्टि दूसरी हो जाएगी। यही पौधे, यही पक्षियों की आवाज, किसी दूर के रहस्यपूर्ण संगीत को लाने लगेगी। यही हवाएं किसी परमात्मा की खबर बन जाएंगी। यही आसपास बैठे हुए लोग कुछ और ही दिखाई पड़ने लगेंगे। अभी जानने के ख्याल से इनको देखा है, ये कुछ और दिखाई पड़ते हैं। न जानने के स्थान से इनको देखेंगे, ये कुछ और हो जाएंगे। यह सब कुछ रहस्यपूर्ण हो जाएगा। यह सारी एक मिस्ट्री हो जाएगी।
एडीसन एक गांव में गया था। उस गांव के बच्चों ने, छोटा स्कूल था, बिजली
के कुछ छोटे-छोटे उपकरण बनाए थे। एडीसन को दिखाने वे ले गए। उन्हें पता भी नहीं था कि बिजली के संबंध में एडीसन जितना जानता है, उतना कोई भी जमीन पर नहीं जानता। गांव के छोटे बच्चे थे, उन्होंने एडीसन को कहा कि आप भी चलें। एडीसन गया। एडीसन ने यह नहीं कहा कि मैं तो विद्युत को भलीभांति जानता हूं, तुम मुझे क्या दिखाओगे!
एडीसन कोई पंडित नहीं था। गया। उनके छोटे-छोटे खिलौने, उन्होंने बिजली से चलने वाली गाड़ी बनाई थी, बिजली से चलने वाला पंखा बनाया था, कुछ और बनाया था, वे सब उसने देखे और बहुत खुश हुआ। और आखिर में उसने कहा कि मेरे बच्चो, तुमने बहुत गजब का काम किया, बड़ी अच्छी चीजें बनाईं। क्या मैं तुमसे पूछ सकता हूं, व्हाट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी? यह बिजली क्या है, क्या तुम मुझे बताओगे?
वे बच्चे ठगे रह गए, खड़े रह गए। उनके अध्यापक भी ठगे रह गए। बिजली क्या है? और बड़े दुखी हुए मन में कि हम बड़े अज्ञानी हैं, इतनी सी बात का उत्तर नहीं दे पा रहे। तो एडीसन ने कहा, चिंतित मत होओ, चिंतित मत होओ। शायद पूरी जमीन पर विद्युत के संबंध में जितना काम मैं करता रहा हूं, किसी ने भी नहीं किया, लेकिन मैं भी नहीं जानता कि विद्युत क्या है! मैं भी नहीं जानता हूं कि विद्युत क्या है! हां, हम विद्युत का उपयोग करना जान गए हैं। विद्युत क्या है, मुझे भी पता नहीं!
यह आदमी धार्मिक आदमी है, यह जो कह सका विद्युत के बाबत कि मैं नहीं जानता हूं कि विद्युत क्या है! यह विनम्रता केवल उसी में हो सकती है जिसे

अपने अज्ञान का बोध हो। जिसे ज्ञान का बोध है वह तो कभी विनम्र हो ही नहीं सकता। जिसको गीता याद हो वह कहीं विनम्र हो सकता है? कभी नहीं, कभी नहीं, कोई गुंजाइश नहीं है। वह विनम्र हो ही नहीं सकता, उसे जानता है वह। इसीलिए तो पंडित विवाद करते रहे हैं। विनम्रता होती तो विवाद कैसे होता? शास्त्रार्थ करते रहे हैं, हारते रहे हैं, हराते रहे हैं। यह हारना और हराना, यह जीतने के लिए पूरे मुल्क में झंडा लेकर घूमना और यात्रा करना, और किसी को हराना और किसी से हार जाना, यह सब क्या पागलपन है? इनका कोई धार्मिक चित्त से संबंध है? इनका धार्मिक चित्त से जरा भी संबंध नहीं है। यह जानने वाले लोगों का सारा का सारा उपद्रव है।
फरीद नाम का एक फकीर यात्रा पर निकला हुआ था। बीच में कबीर का आश्रम
भी पड़ता था मगहर में। तो फरीद के मित्रों ने कहा, उनके साथियों ने कहा कि आप रुक जाएं, कबीर का आश्रम है। दो दिन वहां रुकेंगे, आप दोनों की बातें होंगी तो बड़ा सुख होगा। उधर कबीर के मित्रों को पता चला था तो उन्होंने भी कहा कि फरीद यहां से निकलता है, उसे दो दिन को रोक लेंगे आश्रम में तो बड़ा अच्छा होगा।
लेकिन एक बड़ी अजीब बात हुई। जब फरीद के शिष्यों ने कहा कि रुक जाएं, तो फरीद ने कहा, रुक तो जरूर जाएं, लेकिन बात क्या करेंगे? मैं तो कुछ जानता नहीं। और कबीर के शिष्यों ने जब कहा कि रोक लें फरीद को, तो उसने कहा, रोक तो जरूर लूं, लेकिन बात क्या करेंगे? मैं तो कुछ जानता नहीं।
शिष्यों ने समझा कि ये तो इस तरह की उलटी बातें कहते ही रहते हैं संत।
दो दिन रोक ही लिया। दो दिन फरीद और कबीर एक ही जगह रहे, मिले, एक-दूसरे के गले मिले, खूब हंसे, लेकिन बातचीत कोई भी न हो पाई। दो दिन बाद विदा भी कर आए कबीर जाकर गांव के बाहर फरीद को। शिष्य तो बहुत घबड़ा गए, बहुत परेशान हो गए दो दिन। अपेक्षा एकदम टूट गई और एक तरह की ऊब आ गई होगी कि यह क्या है! दोनों को बिठाल देते थे, वे दोनों बैठे रहते थे, कभी-कभी हंस भी लेते थे और बैठे रहते थे। फिर विदाई भी हो गई।
विदा होते से ही कबीर के शिष्यों ने कबीर को पूछा, फरीद के शिष्यों ने फरीद को कि यह क्या हुआ? तो उन्होंने कहा, हम तो पहले कहे थे, हम तो पहले कहे थे। हम वहां पहुंच गए हैं जहां हम कुछ भी नहीं जानते। अब क्या करें? अगर हम खोजेंगे अपने चित्त में, तो हम भी वहां पहुंच जाएंगे जहां हम कुछ भी नहीं जानते। हम वहां हैं, पहुंचने की कोई बहुत देर नहीं है। तो ज्ञान की अगर यात्रा करनी हो तो शायद बहुत मुश्किल है--सीखो, सीखो, सीखो। तो मुझसे लोग पूछते हैं कि क्या हम इसी वक्त परमात्मा को जान सकते हैं? मैं कहता हूं, इसी वक्त! क्योंकि अगर सीखना हो तो समय लगेगा। लेकिन अगर अन-सीखना हो तो समय कैसे लगेगा? अगर ज्ञान इकट्ठा करना हो तो समय लगेगा, टाइम लगेगा, क्योंकि ज्ञान इकट्ठा करने में समय लगता है। मैट्रिक पास होता है एक लड़का तो सात वर्ष लग जाते हैं, और एम.ए. होता है तो और छह वर्ष लग जाते हैं, कोई पंद्रह-बीस वर्ष लगते हैं पढ़ता है तो। तो अगर हम शास्त्र पढ़ेंगे तो समय लगेगा, अगर ज्ञानी होना है तो समय लगेगा। लेकिन अगर यह जानना है कि मैं ज्ञानी नहीं हूं, तो समय कहां? सिर्फ अहंकार बाधा हो सकता है, और कोई बाधा नहीं है। समय का क्या सवाल है? इसी क्षण हो सकता है! अभी हो सकता है! यहीं हो सकता है! इसमें एक क्षण की भी देरी की कहां गुंजाइश है? यह दिखाई पड़ जाए, हो गया कि मैं नहीं जानता हूं। और सारा भवन गिर जाएगा ज्ञान का वैसे ही जैसे ताशों का भवन बनाया और गिर जाए; और कोई रेत का भवन बनाए और हवा का एक झोंका आए और गिर जाए।
सिर्फ अहंकार बाधा है। अगर अज्ञानी होने में डर लगता हो तो फिर कोई रास्ता नहीं है, फिर बहुत समय लगेगा, फिर जन्म-जन्म भी लग सकते हैं और फिर भी काम पूरा नहीं होगा। लेकिन अगर अज्ञानी होने का साहस हो--और इस जमीन पर सबसे बड़ा साहस अज्ञानी होने का साहस है--अगर यह करेज हो, तो इसी वक्त बात हो गई। बात होने में और क्षण का भी विलंब क्यों? क्या नहीं बात हो जाती है इसी वक्त? क्या बात नहीं हो गई?
नहीं लेकिन, भीतर कोई कहता है कि नहीं, मैंने जो किताबें जानीं और इतनी मेहनत की, वह सब बेकार छोड़ दूंगा क्या? और मैंने इतने शास्त्र याद किए, वह सब ऐसे ही छोड़ दूंगा? पानी में गए वे? वह जिंदगी मेरी मेहनत की और

वह श्लोकों का स्मरण करना और सूत्रों का याद करना, कितनी तो मेहनत की, कितनी रातें खराब कीं, कितनी सुबह उठ आया, कितनी मुश्किल से तो यह सब इकट्ठा किया, और यह ऐसे ही चला जाएगा क्या?
अगर ऐसा मन में होता हो तो फिर रुकेगा वह। हम रोकेंगे तब तक रुकेगा। जिस दिन हम खोल देंगे, वह बिखर जाएगा और विलीन हो जाएगा। और अदभुत घटना घटती है! जिस दिन ज्ञान बिखर जाता है और गिर जाता है, उस दिन हो जाता है चित्त अत्यंत सरल, उस दिन बुद्धि हो जाती है विलीन, रह जाता है शेष हृदय। उस दिन, वह जिसको हम बुद्धि कहते हैं, इंटलेक्ट कहते हैं, वह हो जाती है शून्य, और रह जाता है हृदय। वह हृदय जानता है, जीता है, पहचानता है, देखता है, समझता है और प्रवेश करता है कहीं विश्वसत्ता में।
तो आज की सुबह तो पहला सूत्र आपसे कहना चाहता हूंः आपका ज्ञान, आपका ज्ञान छीन लेना चाहता हूं। मैं तो कहता ही हूं कि मैं अज्ञान सिखाता हूं। धन्य हैं वे लोग जो ज्ञान को छोड़ने में समर्थ हो जाते हैं! बड़े साहस की बात है। परिवार छोड़ कर भाग जाना कोई बड़े साहस की बात नहीं है। क्योंकि सच्चाई तो यह है कि परिवार से सारे लोग इतने ऊबे-ऊबे हैं कि जिसको भी मौका मिल जाएगा वही छोड़ कर भाग जाएगा। इसलिए परिवार छोड़ कर भाग जाना कोई बड़े साहस की बात नहीं है। बल्कि सच यह है कि जो सबसे ज्यादा कमजोर होते हैं, वे परिवार को छोड़ कर सबसे पहले भाग जाते हैं। कमजोरी चाहिए परिवार को छोड़ने में, ताकत नहीं। ताकतवर तो झेलता रहता है, कमजोर भाग जाते हैं, वही संन्यासी हो जाते हैं। कमजोर, जो जीवन के संघर्ष में खड़े रहने का साहस नहीं पाते, वे पलायन कर लेते हैं, वे भाग जाते हैं। और अपने भागने को अच्छे शब्दों में सजा लेते हैं कि उन्होंने संसार छोड़ दिया, संसार असार था। वैसे ही जैसे किसी लोमड़ी ने एक दफा कहा थाः अंगूर खट्टे हैं। भाग जाते हैं कमजोर लोग। कमजोरी हमेशा कहती हैः भागो। भागना जो है वह हमेशा कमजोरी का नारा है। वीकनेस जो है वह हमेशा कहती हैः भागो। सामर्थ्य कहता हैः टिको। कमजोरी कहती हैः भागो। इसलिए घर-द्वार छोड़ कर भाग जाना जरा भी कठिन नहीं है। और किसी दिन अगर आंकलन हो सकेगा मनुष्य का, तो दुनिया से भागे हुए लोग बीमार और कमजोर सिद्ध होंगे।
तो न तो परिवार को छोड़ कर भाग जाने का कोई प्रयोजन है, न जीवन से। और ये
जो लोग परिवार छोड़ कर भाग जाते हैं, समाज छोड़ कर भाग जाते हैं, ये भी, समाज ने इनको जो ज्ञान दिया था, उसे कभी नहीं छोड़ते। अगर वे हिंदू थे तो समाज छोड़ने के बाद भी हिंदू बने रहते हैं, यह कैसा आश्चर्य है! अगर वे जैन थे तो वे समाज छोड़ने के बाद भी जैन बने रहते हैं, कैसा आश्चर्य है! वे जैन साधु कहलाते हैं, वे हिंदू साधु कहलाते हैं। ये समाज से कहां भागे? कहां छूटे? समाज ने इनके मस्तिष्क में जो रख दिया था, उसे अब भी पकड़े हुए हैं, उसको अब भी सजाए हुए हैं, अब भी जैन हैं, अब भी हिंदू हैं।
क्या कोई साधु हिंदू और जैन और मुसलमान हो सकता है? और अगर कोई होता हो
तो निश्चित ही वह साधु नहीं होगा, कुछ और होगा। वह भागा हुआ गृहस्थ है; साधु नहीं है, संन्यासी नहीं है। संन्यास भी जरूर, साधुता भी जरूर छोड़ती है कुछ, लेकिन समाज नहीं, जीवन नहीं, बल्कि समाज जो ज्ञान दे देता है मस्तिष्क में, वह उसे छोड़ देती है। क्योंकि जो दूसरों से दिया हुआ ज्ञान है वह कभी मेरा ज्ञान नहीं हो सकता है। जो दूसरों ने मुझे दिया है वह कभी मेरा ज्ञान नहीं हो सकता है। वह हमेशा झूठा होगा, मिथ्या होगा, क्योंकि वह दूसरे का दिया हुआ है। ज्ञान हस्तांतरणीय नहीं है, ट्रांसफरेबल नहीं है, कि मैं उसे आपको दे दूं, आप मुझे दे दें, और कोई किसी को दे दे। ज्ञान कभी किसी को कोई नहीं दे सकता। ज्ञान पाया जा सकता है, लेकिन लिया-दिया नहीं जा सकता।
तो यह जो दूसरों से मिला हुआ ज्ञान है, इसे छोड़ना बहुत जरूरी है, ताकि
वह उपलब्ध हो सके जो किसी से मिलता नहीं; जागता है प्राणों में, उठता है, विकसित होता है। लेकिन वह तभी विकसित होता है, जब हम दूसरों का सारा सहारा छोड़ देते हैं।
जीवन ऊर्जा का एक नियम है, कि वह तभी जगती है जब बेसहारा होती है। अगर आपको बिना पैर के चलने की सुविधा हो, तो धीरे-धीरे पैरों की ऊर्जा समाप्त हो जाएगी। अगर आपको निरंतर बिना हाथों के काम करने की सुविधा मिल जाए,

हाथों की शक्ति वापस लौट जाएगी और सो जाएगी। अगर एक आदमी को हम आंख बंद करके दो वर्ष जीने को कह दें कि तुम आंख बंद करके जीओ, तो आंखों की शक्ति वापस सो जाएगी भीतर जाकर, उसकी कोई जरूरत न रही। अगर हम बोलना बंद कर दें, दो-चार वर्ष बाद तो फिर हम नहीं बोल सकेंगे, बोलना खो जाएगा, बोलने की ताकत वापस सो जाएगी।
जीवन शक्ति का एक नियम हैः हम जिस शक्ति का उपयोग करते हैं और जिस शक्ति के लिए चुनौती देते हैं, वही शक्ति जगती है और सक्रिय हो जाती है। और जिस शक्ति को हम चुनौती देना बंद कर देते हैं, उपयोग बंद कर देते हैं, वह सो जाती है।
हमारे भीतर ज्ञान सोया हुआ है, क्योंकि हम दूसरे के ज्ञान पर विश्वास किए हैं। दूसरे का ज्ञान ही जब काम कर देता है तो खुद के ज्ञान के जगने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, जीवन ऊर्जा सोई रह जाती है। अगर हम दूसरों के सारे ज्ञान को अस्वीकार कर दें, अगर दूसरों के ज्ञान को झाड़ दें अपने से, दूसरों के ज्ञान से खाली हो जाएं, तो जो चुनौती पैदा होगी, जो चैलेंज पैदा होगा, जो दबाव पैदा होगा, जो प्रेशर पैदा होगा जीवन में, वही हमारे भीतर जो सोए हुए ज्ञान के स्रोत हैं उनको जगा देगा।
दुनिया में केवल वे ही लोग सत्य की दिशा में जान पाते हैं, जो सत्य के संबंध में जो भी जाना है उसे छोड़ देते हैं। तब उनके अपने प्राण उस बात को सम्हाल लेते हैं, जो उन्होंने दूसरों के कंधों पर ली थी, जिसके लिए वे दूसरों का सहारा खोज रहे थे। सहारा खो देने पर उनके भीतर अपनी शक्ति जागनी शुरू होती है, जब कोई सहारा नहीं होता।
ज्ञान के लिए हम सहारे लिए हुए हैं, इसलिए ज्ञान कभी जगेगा नहीं। तो ज्ञान के लिए बेसहारा हो जाना जरूरी है। और बेसहारा होने का मतलब है, अज्ञान की स्थिति में खड़े हो जाना। आज तो इतनी ही बात कहूंगाः अज्ञान की स्थिति में खड़े हो जाएं, यदि चाहते हों कि भीतर ज्ञान का जन्म हो। ज्ञात को छोड़ दें, अगर चाहते हों कि अज्ञात के लिए द्वार खुले। जो जानते हैं उसे भूल जाएं, अगर चाहते हों उसे जानना जिसे नहीं जानते हैं। वह जो अभी नहीं जाना है, अगर उसे जानना है, तो उसे छोड़ देना होगा जिसे हम जानते हैं, जिसे हमें ख्याल है कि हम जान रहे हैं। ज्ञान से मुक्त हो जाना जरूरी है, अगर सचमुच ज्ञान को उपलब्ध करना है।
इस दिशा में दो सूत्र और कल और परसों सुबह आपसे बात करूंगा। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो थोड़ी सी दो-चार बातें सुबह के ध्यान के लिए आपसे कह दूं।
सबसे पहली बात तो यह ध्यान कोई एकाग्रता, कोई कनसनट्रेशन नहीं है। एकाग्रता ही ध्यान समझी जाती रही है। किसी से पूछेंः ध्यान क्या है? तो वह कहेगाः चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान है। लेकिन चित्त का एकाग्र हो जाना ध्यान बिल्कुल भी नहीं है। चित्त का चंचल होना भी ध्यान नहीं है और चित्त का एकाग्र होना भी ध्यान नहीं है। चंचलता और एकाग्रता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ध्यान इन दोनों से ही अलग बात है। ध्यान तो वह स्थिति है जहां न तो चित्त चंचल होता है और न एकाग्र होता है।
चंचलता का अर्थ हैः एक चीज से दूसरी, दूसरी से तीसरी पर मन का बदलते जाना। और एकाग्रता का अर्थ हैः एक ही चीज पर मन का रुका रह जाना। लेकिन दोनों हालत में कोई चीज होती है। चंचलता में बदलती हुई चीजें होती हैं, एकाग्रता में ठहरी हुई कोई चीज होती है, लेकिन ऑब्जेक्ट दोनों में होता है। ध्यान का अर्थ हैः जहां कोई ऑब्जेक्ट न हो, जहां कोई चीज न रह जाए, जहां हम ही रह गए अकेले और कोई ऑब्जेक्ट न रहा, कोई विषय न रहा।
चंचलता में विषय बदलते हैं, ऑब्जेक्ट बदलते हैं। एकाग्रता में ऑब्जेक्ट एक ही रह जाता है। ध्यान में कोई ऑब्जेक्ट नहीं रह जाता, वह ऑब्जेक्टलेसनेस है। वहां कोई विषय नहीं है। वहां केवल चेतना रह जाती है, और कोई नहीं रह जाता।...

रोम रोम रस पीजिए
तीसरा प्रवचन

बच्चों को विश्वास नहीं, जिज्ञासा सिखाएं

मेरे प्रिय आत्मन्!

क्या बच्चों को न बताएं कि ईश्वर है? क्या धर्म के संबंध में उन्हें कुछ भी न कहें? आत्मा के लिए कोई उन्हें विश्वास न दें? ऐसे कुछ प्रश्न पूछे हैं।

जिसे हम नहीं जानते हैं, उसे हम देना भी चाहेंगे तो क्या दे सकेंगे? और
जो हमें ही ज्ञात नहीं है, क्या उस बात की शिक्षा, हमारे संबंध में, बच्चे के मन में आदर पैदा करेगी? क्या यह असत्य की शुरुआत न होगी? और क्या असत्य पर भी ईश्वर का ज्ञान कभी खड़ा हो सकता है? और क्या असत्य के ऊपर हम सोच सकते हैं कि बच्चा कभी धार्मिक हो जाएगा?
यह दुनिया अधार्मिक इसी तरह हो गई है। यह दुनिया धार्मिक हो सकती थी, लेकिन जिन लोगों ने स्वयं बिना जाने शिक्षाएं दी हैं उन्होंने इस दुनिया को अधर्म के अंधकार में भेज दिया है।
दो ही परिणाम होते हैं उस शिक्षा के। बच्चा आज नहीं कल बड़ा हो जाएगा।
और भलीभांति जानेगा कि उसके पिता ने, उसके गुरु ने जो कहा था वह झूठ था। वे खुद भी नहीं जानते थे।
इस सत्य को कब तक छिपाए रखिएगा कि आप नहीं जानते हैं? आपका जीवन कह देगा, आपका आचरण कह देगा। सब तरफ से खबर मिल जाएगी बच्चों को कि पिता भी नहीं जानते हैं कि ईश्वर है। तब ईश्वर पर तो श्रद्धा पैदा नहीं होगी; हां, पिता पर जरूर अश्रद्धा पैदा हो जाएगी।
यह बच्चों की जो श्रद्धा उठती चली गई है मां में, पिता में, गुरु में,
यह अकारण नहीं है। आप इसके लिए जिम्मेवार हैं। आपने ऐसे झूठ उन्हें सिखाए हैं जो थोड़े दिनों में वे समझ जाते हैं कि झूठ हैं। और तब आपके प्रति सारा आदर, सारा सम्मान तिरोहित हो जाता है।
यह जो इस ख्याल से हम शिक्षा देते हैं कि शायद ईश्वर के संबंध में न बताएंगे तो फिर बच्चा ईश्वर को न जान सकेगा। तो क्या आप समझते हैं आपके बताने से वह ईश्वर को जान लेता है? तो अब तक सारे लोगों ने ईश्वर को जान लिया होता। क्योंकि सभी के मां-बाप तो बच्चों को बता देते हैं कि ईश्वर है, आत्मा है।
नहीं, इससे जानने का कोई संबंध नहीं। बल्कि इससे जीवन में एक झूठ की शुरुआत होती है जिसका फिर कोई अंत नहीं होता। जिस झूठ को आपने अपने बच्चों से दोहराया है, आपके बच्चे भी अपने बच्चों से दोहरा देंगे, बस इतना हो सकता है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। और क्या कोई ईश्वर ऐसी चीज है कि आप किसी को सिखा सकते हैं?
मैं एक अनाथालय में गया था। वहां के संयोजकों ने मुझसे कहा कि हम अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। तो मैंने उनसे कहा कि यह बड़े आश्चर्य की बात होगी, क्योंकि मैं तो आज तक समझ ही नहीं पाया कि धर्म की भी शिक्षा हो सकती है। धर्म की साधना तो हो सकती है, लेकिन शिक्षा नहीं हो सकती। फिर भी आप कहते हैं तो मैं समझना चाहूंगा कैसी शिक्षा देते हैं। हां, हिंदू होने की शिक्षा हो सकती है, मुसलमान होने की शिक्षा हो सकती है; लेकिन धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती। बच्चे को हिंदू बनाया जा सकता है, मुसलमान, जैन और ईसाई बनाया जा सकता है; लेकिन धार्मिक नहीं। तो मैंने उनसे कहा कि मैं समझना चाहूंगा, धर्म की क्या शिक्षा आप देते हैं।
और अब तक दुनिया में बच्चों के साथ धर्म के नाम पर यही किया गया है। उनको हिंदू बनाया जाता है, मुसलमान, ईसाई, जैन बनाया जाता है। और इस बनाए जाने से जितना अधर्म जमीन पर फैला है, किसी और बात से फैला है? हिंदू होना, मुसलमान होना, जैन होना, कितनी कुरूपता की बात है! कितनी अग्लीनेस की बात है! कोई आदमी आदमी न हो, हिंदू हो, मुसलमान हो, जैन हो, यह कोई सौंदर्य की

बात है? और यह जो खंडित आदमी है, जो एक समूह से बंध जाता है, इस बंधे हुए आदमी ने कितने उपद्रव किए हैं, इसका कुछ पता है? कितनी हत्याएं की हैं, कितना रक्त बहाया है, इसका कोई पता है?
अगर मां-बाप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, तो वे कभी उनको हिंदू, मुसलमान और ईसाई होने की शिक्षा न देंगे। क्योंकि जमीन पर इतना उपद्रव हुआ है इन शिक्षाओं के कारण कि अब कोई मां और कोई बाप यह नहीं चाह सकता कि उसका बच्चा भी हिंदू होकर कटे या मुसलमान होकर कटे या किसी को काटे या मंदिर जलाए या मस्जिद गिराए। जो मां-बाप अपने बच्चों को प्रेम करते हैं, उनके प्रेम का पहला लक्षण यह होगा कि बच्चे को मनुष्य की भांति बड़ा करें, हिंदू-मुसलमान की भांति नहीं। क्योंकि ये महामारियां, ये बड़े-बड़े रोग आदमी को कितने खड्डों में और अंधकार में ले गए हैं!
तो मैंने उनसे कहा कि यह तो हो सकता है कि आप हिंदू बनाते हों, मुसलमान बनाते हों, लेकिन धार्मिक होने की क्या शिक्षा देते होंगे?
उन्होंने कहा कि नहीं, आप देख कर प्रसन्न होंगे।
तो मैं उनके बच्चों को देखने गया। सौ के करीब बच्चे थे। उन्होंने खुद
ही उन बच्चों से पूछा कि बताओ, ईश्वर है? उन सभी बच्चों ने हाथ ऊपर उठा दिए कि ईश्वर है। उनको सिखाया गया था। उन्होंने पाठ सीख लिया था और हाथ उन्होंने ऊपर उठा दिए। और उन्होंने पूछा कि ईश्वर कहां वास करता है? तो उन सबने अपने हृदय के ऊपर हाथ रख दिए कि यहां। यह भी उनको सिखाया गया था। जैसे हम बच्चों को कवायद करना सिखा देते हैं, लेफ्ट टर्न और राइट टर्न सिखा देते हैं, बाएं घूमो, दाएं घूमो, रुको, ठहरो, वैसे ही उनको यह भी सिखा दिया गया था। ईश्वर कहां है? तो उन्होंने सबने हाथ उठा दिए--यहां।
मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछा कि हृदय कहां है?
उसने कहा, यह तो हमें बताया नहीं गया। यह हमारी किताब में भी नहीं लिखा हुआ है।
उसे हृदय का कोई पता नहीं था, लेकिन जब उससे पूछा गया, ईश्वर कहां है?
तो उसने बताया--यहां। स्वभावतः, जो उसे बताया गया था, जो उसे सिखाया गया था, वह उसने बता दिया था। लेकिन क्या वह जानता है कि यहां क्या है?
नहीं, परीक्षा उत्तीर्ण हो जाएगा, धर्म की शिक्षा पा लेगा। हो सकता है प्रथम भी आ जाए, पुरस्कार भी पा जाए, खुश होता हुआ घर लौट जाए; और शिक्षक भी खुश हों और संयोजक भी खुश हों कि बच्चा धर्म की शिक्षा लेकर घर आ गया। और बच्चा क्या लेकर घर आया है? बच्चा धर्म लेकर घर नहीं आया है, कुछ शब्द लेकर घर आ गया है। और वे शब्द इतने खतरनाक सिद्ध होंगे कि धर्म को कभी भीतर प्रवेश न करने देंगे। क्योंकि जिंदगी में जब भी प्रश्न उठेगाः ईश्वर है? तो वह बचपन में सीखी गई बात, जो मन के गहरे तल में प्रविष्ट हो गई होगी, वह कहेगीः है। और जब प्रश्न उठेगाः कहां? तो वह मन के गहरे तल में बैठ गई बात कहेगीः यहां। और यह हाथ भी झूठा होगा, यह गेस्चर झूठ होगा। और यह उत्तर भी झूठ होगा कि ईश्वर है, क्योंकि यह सीखा हुआ है।
धर्म के संबंध में जो भी सीखा हुआ है वह झूठा होता है। और जिंदगी भर,
वह बूढ़ा हो जाएगा, फिर भी, वह बचपन में जो सीख लिया था, उसका पीछा करेगा। और जब भी कोई पूछेगाः ईश्वर है? वह कहेगाः है। यह वही छोटा बच्चा बूढ़ा हो गया है, कोई फर्क नहीं पड़ा है, वही उत्तर है। जिंदगी भर उसी तरह का उत्तर दोहराता रहेगा। और जब उत्तर मिल गया तो खोजेगा क्यों? उसे जब मालूम हो गया कि ईश्वर है तो अब वह और खोज क्या करेगा? दुर्भाग्य हो गया यह उत्तर, क्योंकि इसने खोज बंद कर दी।
दुनिया में ईश्वर की खोज बंद हो गई है, क्योंकि धार्मिक पुरोहितों और पंडितों ने इतनी शिक्षा दे दी है, इतनी शिक्षा, कि सभी मान गए हैं कि ईश्वर है। इसलिए खोज बंद हो गई है, कोई नहीं खोजता। खोजते हम उसे हैं, खोजते ही हम उसे हैं जो हमारे सामने प्रश्न बन कर खड़ा हो जाता है, उत्तर बन कर नहीं। जो उत्तर बन जाता है उसकी खोज बंद हो जाती है। ईश्वर होना चाहिए एक प्रश्न; एक उत्तर नहीं। आत्मा होनी चाहिए एक प्रश्न; एक उत्तर नहीं।
मैंने उनको कहा कि बच्चों को प्रश्न सिखाएं, उत्तर नहीं, अगर बच्चों
को धार्मिक बनाना है।

आपको पता नहीं है कि ईश्वर है, तो अपने बच्चे को मत सिखाएं कि ईश्वर है। बच्चे को कहें कि मैं भी खोज रहा हूं, लेकिन अब तक मुझे कुछ पता नहीं चला। मेरे प्राण भी प्यासे हैं कि मैं जानूं कि यह क्या है जीवन? लेकिन मुझे पता नहीं। तुम भी खोजना। हो सकता है मैं न खोज पाऊं, तुम मेरी खोज को पूरा करना। तुम भी पूछना, तुम भी जिज्ञासा करना।
तो बच्चे को सिखाएं जिज्ञासा, बच्चे को सिखाएं प्रश्न, बच्चे को सिखाएं इंक्वायरी; बच्चे को उत्तर न सिखाएं। अगर बच्चे को कभी धार्मिक बनाना है तो उसको ऐसी जिज्ञासा सिखाएं कि जब तक वह खुद न जान ले, तब तक मानने को कभी राजी न हो। उसको इतना साहस सिखाएं कि जब तक वह न जान ले, तब तक दुनिया की कोई ताकत उसको मानने के लिए न झुका सके। वह चाहे मर जाए, लेकिन वह यह कहे कि मैं खोज लूंगा तभी स्वीकार करूंगा, तभी मानूंगा, उसके पहले नहीं। क्योंकि उसके पहले जो मान लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है। जिसकी खोज बंद हो जाती है वह कभी ज्ञान को उपलब्ध नहीं होता।
तो बच्चे को सिखाएं न कि ईश्वर है, बल्कि बच्चे के मन में जिज्ञासा और खोज... और इस खोज के लिए आप कहें अपने हृदय को खोल कर कि मैं भी नहीं जानता हूं, मैं भी खोज रहा हूं। और जब बच्चा बड़ा होगा और अपने पिता और गुरु के बाबत यह बात जानेगा कि कितने विनम्र हृदय लोग थे कि उन्होंने अहंकार नहीं किया जानने का। एक छोटे से बच्चे के सामने भी उन्होंने धोखा नहीं देना चाहा, उन्होंने सच्चाई और ईमानदारी से कहा कि हम भी खोजते हैं, अभी रास्ते पर हैं, हम कहीं पहुंचे नहीं हैं। ऐसे पिता और गुरु के प्रति आदर से भर जाना बहुत स्वाभाविक है, बहुत सहज है।
गुरु और पिता अहंकार के कारण सिखाते हैं, कोई बच्चे के हित के कारण नहीं। बच्चे के सामने यह स्वीकार करने में उनके अहंकार को चोट लगती है कि मैं नहीं जानता हूं। बच्चे के सामने तो वे सर्वज्ञ बन जाते हैं--मैं सब कुछ जानता हूं। छोटा सा बच्चा है, उसके सामने कोई भी सर्वज्ञ बन सकता है। लेकिन बच्चा कल बड़ा हो जाएगा और आपकी सर्वज्ञता की सब धूल उड़ जाएगी। और वह जानेगा कि आप भी वैसे ही अज्ञानी हो जैसा वह है। तब क्या होगा? तब उसके मन से आपके प्रति अगर अनादर उठे तो इसमें आश्चर्य है? इसमें कोई आश्चर्य नहीं।
आप इन बातों को सिखा कर बच्चे को धार्मिक नहीं बना रहे हैं। बच्चे को खोज सिखाइए। और खोज का पहला सूत्र हैः संदेह, डाउट। संदेह सिखाइए। उससे कहिए कि तू संदेह कर, जल्दी से मान मत ले किसी बात को, सोच-विचार कर, साहसपूर्वक, निर्भयता से खोज कर। ये गुण सिखाइए--साहस, अभय, फियरलेसनेस सिखाइए। क्योंकि जो बच्चा भय सीख लेता है वह कभी खोज नहीं कर सकेगा। लेकिन हम तो धार्मिक बनाने के लिए बच्चे को भय सिखाते हैं। हम कहते हैं, अगर ईश्वर को न माना तो नरक में डाल देंगे। भगवान जो हैं वे नरक में भेज देते हैं। आग है वहां, आग में जलाते हैं।
छोटा सा बच्चा है, आप क्या कर रहे हैं उसके साथ? पूरी मनुष्य-जाति के साथ यह पाप हुआ है, कि धर्म के नाम पर भय सिखाया गया है--नरक का भय, पाप का भय; और सिखाया गया है प्रलोभन--स्वर्ग का प्रलोभन, पुण्य का, अच्छे जन्मों का। प्रलोभन और भय, दोनों संगी-साथी हैं, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तो हम सिखाते हैं भय और सिखाते हैं प्रलोभन। प्रलोभन कि अगर अच्छे बनोगे तो स्वर्ग जाओगे और भय कि अगर भगवान को नहीं माना, अस्वीकार किया, नास्तिक बने, संदेह किया, तो नरक जाओगे।
बच्चे को हम धर्म थोड़े ही सिखा रहे हैं। हम सिखा रहे हैं फियर। और क्या आपको पता है, दुनिया में सबसे ज्यादा अधार्मिक वृत्ति कौन सी है? सबसे ज्यादा अधार्मिक, सबसे ज्यादा इररिलीजस--भय है, फियर है। क्योंकि जो भयभीत है वह कभी परमात्मा को नहीं जान सकेगा, सत्य को नहीं जान सकेगा। जो भयभीत है वह यात्रा ही नहीं करता है अज्ञात की तरफ। वह तो जो ज्ञात है उसी के घेरे में चलता है। जहां-जहां उजाला है और जहां-जहां साफ-साफ रास्ते हैं वहीं-वहीं जाता है। अंधेरे रास्तों पर, अनजान-अपरिचित मार्गों पर, जो भयभीत है, वह कभी जाता ही नहीं।
और भगवान है सबसे ज्यादा अनजान, सबसे ज्यादा अपरिचित, सबसे ज्यादा अंधकार से भरा हुआ। वहां तो भयभीत कभी कदम ही नहीं रखता है। तो जब उसे

भगवान की तरफ जाना होता है, तो गांव के पुजारी ने जो मंदिर बनाया हुआ है, उसमें चला जाता है। क्योंकि भगवान तो है अपरिचित, यह मंदिर बिल्कुल परिचित है। यह आदमी का बनाया हुआ है, बिल्कुल परिचित है। और भगवान है बिल्कुल अपरिचित, आदमी का बनाया हुआ नहीं है। इसलिए उस अपरिचित भगवान को तो छोड़ देता है, यह परिचित जो मंदिर है, मस्जिद है, इसमें चला जाता है और तृप्ति कर लेता है कि मैं धार्मिक हो गया।
आदमी भी कहीं भगवान का मंदिर बना सकता है? और आदमी जो बनाएगा वह भगवान
का मंदिर हो सकता है?
एक छोटी सी कहानी आपको कहूं।
एक रात एक चर्च के द्वार पर एक नीग्रो आदमी ने आकर दरवाजे पर दस्तक दी, दरवाजा हिलाया। दिन के प्रकाश में भी आ सकता था, लेकिन वह चर्च था गोरी चमड़ी वालों का, वहां काली चमड़ी के लोग नहीं आ सकते थे। तो दिन में तो डर था कि उसे कोई घुसने न देगा, लेकिन सोचा रात के अंधेरे में हो सकता है पादरी भी दया खा जाए। ऐसे पादरी कभी किसी पर दया खाता नहीं है। सोचा लेकिन रात के अंधेरे में अकेला देख कर, कोई भी न हो, तो रोऊं, गिड़गिड़ाऊं, आंसू बहाऊं तो शायद दया खा जाए। ऐसे जैसा मंदिर का भगवान पत्थर का होता है, मंदिर का पुजारी उससे भी ज्यादा पत्थर का होता है, वह कभी दया नहीं खाता। लेकिन फिर भी आशा तो आदमी की बड़ी थी। सोचा कि शायद दया खा जाए किसी कमजोर क्षण में और भीतर आ जाने दे।
उस गांव में एक ही चर्च था, सफेद चमड़ी के लोगों का चर्च था। नीग्रो, काले लोगों के पास चर्च नहीं था, क्योंकि उनके पास पैसे ही नहीं थे कि भगवान का निर्माण कर सकें। जिनके पास पैसे होते हैं वे भगवान को बना लेते हैं, जिनके पास नहीं होते वे बिना भगवान के रह जाते हैं। क्योंकि भगवान तो एक बनावट है आदमी की, तो पैसा हो तो बन सकता है, न पैसा हो तो कैसे बनेगा? इसलिए जिनके पास ज्यादा होता है पैसा, उनके भगवान बड़े होते हैं, उनके मंदिर बड़े होते हैं। जिनके पास नहीं होता, उनके छोटे भगवान होते हैं। भगवान भी एक कमोडिटी है जो पैसे से खरीदी जाती है, एक सामान है जो बाजार में बिकता है।
सोचा कि शायद दया खा जाए एक गरीब के रोने पर, तो वह रात के अंधेरे में गया। लेकिन पादरी को धोखा देना बहुत मुश्किल है। चाहे दिन हो चाहे रात, पादरी हमेशा चमड़ी को बहुत गौर से पहचान लेता है, फिर उसके हिसाब से दया- ममता रखता है। देखा कि नीग्रो है, तो उसने कहा, कैसे आए इतनी रात?
उस नीग्रो ने कहा कि मैं भी भगवान की प्रार्थना करना चाहता हूं। मैं
भी भगवान के दर्शन करना चाहता हूं।
लेकिन पादरी को तो... अगर कोई पुराना जमाना होता तो वह कहता, हट शूद्र यहां से! यहां आने की तेरे लायक जगह नहीं! जैसा कि पुराने जमाने के पंडित और मंदिर के पुजारी कहते। लेकिन जमाना बदल गया है, और जमाने की हवा बदल गई है, और अब किसी को इस भांति कहना खतरनाक भी हो सकता है, अदालत तक भी ले जा सकता है। तो उस चर्च के पादरी ने होशियारी की बात कही।
और यह तो आप जानते ही हैं कि पादरी-पुरोहित सबसे ज्यादा होशियार और कनिंग और चालाक लोग हैं। इसलिए सबसे ज्यादा चालाक लोग हैं कि आप तो कपड़ा बेचते होंगे, सोना बेचते होंगे, कोई और तरह की दुकान करते होंगे; पादरी और पुरोहित भगवान को बेचने का धंधा करते हैं, ये सबसे ज्यादा चालाक लोग हैं। इन्होंने भगवान का व्यवसाय बना लिया है, इनसे ज्यादा होशियार और कौन हो सकता है? और एक ऐसा व्यवसाय बनाया है जो कभी नहीं चुकेगा, हमेशा चलेगा। तो चालाक पादरी ने उस नीग्रो को कहा कि मेरे मित्र, मंदिर में आकर क्या होगा? जब तक तुम्हारा हृदय पवित्र न हो, मन शांत न हो, तब तक मंदिर में आने से क्या होगा? भगवान के दर्शन नहीं हो सकते।
हालांकि और भी लोग आते थे, लेकिन वे सफेद चमड़ी के होते थे, उनसे उसने
यह शर्त कभी नहीं बताई थी कि मन शांत करो, पवित्र करो, तब मंदिर में आओ।
लेकिन इसको बताई।
वह नीग्रो वापस लौट गया। उसने सोचा, मन को शांत और पवित्र करूं, फिर आऊंगा।

कोई तीन महीने बीत गए, वह नहीं आया। चर्च के पादरी ने एक दिन रास्ते पर उसे रोका, रोकने का कारण भी मालूम था। और एक नई वजह आ गई थी। रास्ते पर चलते उस नीग्रो को देखा तो वह पादरी भी हैरान हुआ! उसकी आंखें किसी बहुत गहरी शांति से भरी हुई मालूम पड़ती थीं। उसके चेहरे पर कोई नई रौनक, नई चमक आ गई थी। उसके पैरों में कोई नई जागरूकता मालूम पड़ती थी। वह कुछ दूसरा ही आदमी हो गया था। तो उसे रोका और कहा कि मेरे मित्र, आए नहीं तुम फिर वापस?
उसने कहा, मैं कैसे आता, बड़ी मुश्किल में पड़ गया। तुमने कहा था, मैं मान कर मन को पवित्र और निर्दोष करने में लग गया। और रात रोता था और प्रार्थना करता था। तीन महीने बीत जाने पर एक दिन रात सपने में भगवान आए और उन्होंने मुझसे पूछा कि तू किसलिए रोता है? किसलिए प्रार्थनाएं कर रहा है? तो मैंने कहा कि वह जो हमारे गांव का मंदिर है, जो चर्च है, उसमें मैं जाना चाहता हूं। इसीलिए अपने मन को पवित्र कर रहा हूं। तो भगवान हंसने लगे और उन्होंने कहा, तू बिल्कुल पागल है! उस मंदिर में तू न पहुंच पाएगा; बहुत कठिन है वहां पहुंचना। मैं खुद दस साल से घुसने की कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी घुसने नहीं दे रहा है। तो जब मैं ही हार गया, थक गया, तू कैसे जा पाएगा? बहुत कठिन है। तू यह आशा छोड़ दे। मुझको पाना आसान है, उस पादरी के मंदिर में घुसना बहुत कठिन है।
और मैं आपसे कहता हूं कि दस साल तो भगवान ने इसलिए कहे होंगे कि कहीं
वह बेचारा नीग्रो घबड़ा न जाए, सच्चाई तो यह है कि दस हजार साल से वे घुसने की कोशिश कर रहे हैं। और उस चर्च में ही नहीं, दुनिया के किसी मंदिर में अब तक नहीं घुस पाए हैं। और कभी घुस भी नहीं सकेंगे, पादरी बहुत होशियार है, पंडित बहुत होशियार है, पुरोहित बहुत होशियार है, वह भीतर नहीं घुसने देगा। क्यों? क्यों नहीं घुसने देगा? क्योंकि जहां परमात्मा का प्रवेश हो जाए वहां प्रेम आ जाता है और जहां प्रेम आ जाए वहां से व्यवसाय विलीन हो जाता है।
और भगवान को वह घुसने भी दे तो भी भगवान न घुस पाएंगे, क्योंकि आदमी का बनाया हुआ मंदिर बहुत छोटा है, भगवान बहुत बड़े हैं। आदमी का मंदिर है छोटा सा, परमात्मा है बहुत विराट और अनंत, वह कैसे उसमें प्रवेश कर पाएगा?
यह जब हमारा, यह सीखा हुआ धर्म भय पर खड़ा होता है तो हम मंदिर में जाकर तृप्ति कर लेते हैं और मुक्त हो जाते हैं, समझते हैं कि धर्म उपलब्ध हो गया।
नहीं, धर्म तो बहुत बड़ा एडवेंचर है--अज्ञात सागर में ही यात्रा के जैसा; अज्ञात पर्वतों के शिखरों पर चढ़ने जैसा; अंधेरे मार्गों पर, अपरिचित मार्गों पर, राजपथों पर नहीं, अंधेरे और अकेले मार्गों पर चलने जैसा। उसके लिए चाहिए साहस, उसके लिए चाहिए अभय, उसके लिए चाहिए अदम्य जिज्ञासा, उसके लिए चाहिए प्राणों को दांव पर लगाने का साहस।
अपने बच्चे को यह सिखाएं। ईश्वर की बातें न सिखाएं। ये गुण दें। तो निश्चित ही आपका बच्चा किसी दिन खोज पाएगा। धर्म की शिक्षा नहीं हो सकती, लेकिन धार्मिक गुणों के विकास के लिए अवसर हो सकते हैं। धर्म तो खुद ही जानना होता है। लेकिन अवसर जुटाए जा सकते हैं, जिनके बीच एक धार्मिक व्यक्तित्व का जन्म हो जाए। धार्मिक व्यक्तित्व का लक्षण होगा अभय, साहस, जिज्ञासा, खोज।
लेकिन हम तो उलटी बातें सिखाते हैं। हम तो सिखाते हैं विश्वास। विश्वास से आदमी काहिल और कमजोर हो जाता है। उसकी खोज बंद हो जाती है। वह इंपोटेंट हो जाता है। उसके जीवन में कोई बल नहीं रह जाता।
हम तो सिखाते हैं भय। हम तो कहते हैं, भगवान से डरो। हम तो कहते हैं, गॉड फियरिंग बनो।
इससे ज्यादा बेहूदी बात क्या कोई और हो सकती है कि कोई भगवान से डरे?
और जिससे हम डरेंगे, क्या उसको हम कभी प्रेम कर सकते हैं? जिससे हम डरते हैं उसको हम घृणा करते हैं। जिससे हम डरते हैं उससे घृणा स्वाभाविक है। जिससे हम प्रेम करते हैं उससे तो हम कभी भी नहीं डरते। यह सारी दुनिया में--भगवान को भय करो, भगवान से डरो--इसका यह परिणाम हुआ है कि सारी दुनिया आज भगवान के खिलाफ खड़ी हो गई है। यह उस घृणा का इकट्ठा विस्फोट है जो हजारों साल से मनुष्य के मन में इकट्ठी होती रही है। क्योंकि जिसको हम भय

करते हैं उसके प्रति घृणा पैदा हो जाती है। जिसको हम भय करते हैं उसको हम कभी प्रेम तो कर ही नहीं सकते। प्रेम और भय का कोई नाता नहीं है।
लेकिन ये बातें हम सिखाते हैं और हम सोचते हैं कि हम कुछ सिखा रहे हैं। और हम सिखाते हैं जो कि खुद कुछ भी नहीं जानते! तो अगर इससे जीवन उलझता गया हो तो आश्चर्य नहीं है। इसको मैं जघन्य से जघन्य अपराधों में से एक कहता हूं, जो कोई मां-बाप अपने बच्चों के साथ कर सकते हैं, अगर वे इस तरह की शिक्षाएं दें। अगर वे बच्चे जीवन में भटक जाएं तो आप जिम्मेवार होंगे। और बच्चे भटक गए हैं और आप जिम्मेवार हैं। सब कुछ गलत है, सब कुछ गलत है। धर्म के नाम पर जो भी हम सिखाते हैं वह गलत है।
नहीं लेकिन, कुछ और बातें जरूर जीवन में खड़ी की जा सकती हैं, उनमें हम सहयोगी हो सकते हैं। और अगर हम उन बातों में सहयोगी हो जाएं और बच्चे को एक जिज्ञासा दे सकें, तो उसके जीवन में जरूर वह शायद जानने में समर्थ हो जाए। और हम भी उसको जिज्ञासा देने में अपने ज्ञान के अहंकार से मुक्त हो सकेंगे। और शायद हम भी जानने में समर्थ हो सकेंगे।
तो मैं नहीं कहता हूं कि आप बच्चों को सिखाएं कि ईश्वर है या कि ईश्वर नहीं है; आत्मा है या कि आत्मा नहीं है। यह कुछ भी सिखाने की जरूरत नहीं है, न आस्तिकता और न नास्तिकता। जिज्ञासा सिखाएं। और जिज्ञासा जब अदम्य हो जाती है तो मनुष्य जरूर सत्य की यात्रा कर पाता है।

पूछा है कि संदेह मेरे मन को सताते हैं। जीवन का क्या अर्थ है, इस संबंध में संदेह उठते हैं। और संदेह से उदासी आती है, विषाद आता है।

एक बात तो सबसे पहली जाननी जरूरी है, हम संदेह करना जानते ही नहीं। इसीलिए संदेह आते हैं। संदेह करना हम जानते ही नहीं। और जब संदेह आते हैं तो जो हमें विषाद पैदा होता है, उदासी पैदा होती है, वह संदेह के कारण नहीं होती; वह होती है, हमने पहले से जो विश्वास कर रखे हैं, उनके कारण। संदेह से घबड़ाहट लगती है, क्योंकि हमारे विश्वास हिलते हैं और डगमगाते हैं। और हम चाहते हैं कि विश्वास न डगमगाएं।
मैं अपने गांव जाता था। कभी वहां दिन दो दिन रुकता था। एक बार वहां कोई आठ दिन रुका। बचपन में जिन्होंने मुझे पढ़ाया, अब तो वे बूढ़े हुए, मेरे एक शिक्षक, उनके घर रोज जाता था। आठ दिन रुका था, दो दिन उनके घर गया, तीसरे दिन सुबह उनका लड़का आया और एक चिट्ठी लाया और उसमें उन्होंने लिखा कि कल से मेरे घर मत आना। आते हो तो मुझे बहुत खुशी होती है। लेकिन नहीं, अब इस खुशी को मुझे छोड़ना पड़ेगा और मैं प्रार्थना करता हूं कि मेरे घर अब दुबारा मत आना। क्योंकि कल तुमसे जो बातें हुईं, उसके बाद जब मैं सुबह भगवान की प्रार्थना को बैठा तो मुझे शक आने लगा, संदेह आने लगा--कि पता नहीं यह भगवान हैं भी या मैं मिट्टी की मूर्ति रखे हुए बैठा हूं? तो शक और संदेह ने मेरा चित्त बहुत अशांत कर दिया, रात भर मैं सो नहीं सका हूं। अब कृपा करके मेरे घर मत आना। मैं बहुत दुख से यह लिख रहा हूं। लेकिन नहीं; यह संदेह अगर बढ़ जाए मेरे इस बुढ़ापे में, अस्सी वर्ष की मेरी उम्र हुई, मरते वक्त संदेह पकड़ ले तो भटक जाएगी सारी यात्रा। जीवन भर, चालीस वर्ष से मैं प्रार्थना करता हूं, पूजा करता हूं, और तुमने आकर मेरी सारी पूजा और प्रार्थना गड़बड़ कर दी, मेरी सारी शांति खंडित कर दी।
मैंने उनको पत्र लिखा कि एक बार तो मैं और आऊंगा, चाहे आप कुछ भी करें।
एक बार आना मेरा बहुत जरूरी भी है। अशांति इसलिए नहीं आ रही है कि संदेह आ गया, अशांति इसलिए आ रही है कि संदेह अधूरा है। मैं उसे पूरा कर दूं, फिर अशांति नहीं आएगी। वह जो थोड़ा सा विश्वास अटका रह गया है वह अशांति पैदा कर रहा है। संदेह अशांति पैदा नहीं कर रहा।
मैं गया। वे बहुत घबड़ाए हुए थे। मैंने उनसे कहा कि चालीस वर्ष पूजा की, प्रार्थना की, मूर्ति को भगवान जाना। चालीस वर्ष! तीन-तीन घंटे रोज! और एक घंटा मैंने बात की और चालीस वर्ष की पूजा और प्रार्थना सब डांवाडोल हो गई! ऐसी पूजा-प्रार्थना का मूल्य कितना है? अर्थ कितना है?
मैंने उनसे कहा कि मैं कुछ भी करूं, आपको संदेह में नहीं ला सकता। संदेह आपके भीतर रहा होगा, चालीस वर्ष ही रहा होगा। लेकिन आपने जबरदस्ती

उसे भीतर छिपा दिया होगा। ऊपर से विश्वास के वस्त्र ओढ़ लिए होंगे। जिस दिन यह मूर्ति पहले दिन रखी थी उस दिन भी आपके मन में संदेह रहा होगा। असल में संदेह जा कैसे सकता है बिना ज्ञान के? बिलीफ से, विश्वास से, श्रद्धा से संदेह जा कैसे सकता है? हां, छिप सकता है, जा नहीं सकता। तो आपने विश्वास कर लिया होगा कि ये भगवान हैं। और जिस दिन विश्वास किया होगा उस दिन भी भीतर संदेह कह रहा होगा कि अरे, मिट्टी की मूर्ति को भगवान! लेकिन दबा दिया होगा उसको कि संदेह भटकाता है, जो संदेह करता है वह भटक जाता है। विश्वास करो! विश्वास फलदायी है! ऐसा कह-कह कर मन को समझा लिया होगा। फिर रोज-रोज पूजा करते-करते, आखिर मन की भी सामर्थ्य है, कब तक वह संदेह करता, धीरे-धीरे जब आपने नहीं सुना होगा, उसने आवाज देनी बंद कर दी होगी। संदेह भीतर पड़ा हुआ सो गया होगा। और आप निश्चिंत हो गए थे, आप समझते थे संदेह समाप्त हो गया। मैंने फिर से आपसे बात की, सोए हुए संदेह को फिर एक मौका मिला, वह बाहर वापस निकल आया और उसने आपकी नींद खराब कर दी। लेकिन यह संदेह का कसूर नहीं है कि आपने चालीस साल व्यर्थ गंवा दिए। वह तो पहले दिन ही खड़ा हो रहा था कि मत इस यात्रा पर जाओ। लेकिन आपने उसको दबा दिया। वह अभी भी आपका साथ देने को तैयार है चालीस साल के बाद भी। और चालीस साल जिन विश्वासों को पोसा, वे आज भी इनकार करने को तैयार हैं, साथ छोड़ने को तैयार हैं। चालीस साल के पोषण के बाद भी विश्वास साथ छोड़ सकते हैं। चालीस साल दमन के बाद भी संदेह वापस जीवित हो सकता है।
तो मैं कुछ इस संबंध में उनसे कहा। मैंने उनसे कहा कि जो विश्वास से शुरू करता है वह संदेह पर समाप्त होता है। और जो संदेह से शुरू करता है वह ज्ञान पर समाप्त होता है। जो संदेह से शुरू करेगा और जितना संदेह किया जा सकता है करेगा जीवन में, एक दिन वह ऐसी जगह पहुंच जाएगा, जहां संदेह करना असंभव हो जाता है। और तब संदेह समाप्त हो जाता है और ज्ञान का जन्म होता है। और जो आदमी पहले से ही संदेह को दबा देता है वह कभी ऐसी जगह नहीं पहुंचता जहां संदेह समाप्त हो जाए। दबा हुआ संदेह किसी भी मौके पर वापस खड़ा हो सकता है। वह भीतर हमेशा मौजूद है।
तो आपको अगर संदेह सताते हैं, उसका मतलब यह है कि आप विश्वास से पीड़ित होंगे। नहीं तो संदेह सताता नहीं। अगर कोई विश्वास न हो तो संदेह सताता नहीं। संदेह तो एक मुक्ति बन जाती है, एक खोज बन जाती है। लेकिन अगर कोई विश्वास हो तो संदेह एक कांफ्लिक्ट बन जाती है, द्वंद्व बन जाता है। भीतर विश्वास होता है और संदेह उस विश्वास को तोड़ने लगता है। हम विश्वास को सम्हालना चाहते हैं, संदेह विश्वास को गिराने लगता है। एक द्वंद्व खड़ा हो जाता है। द्वंद्व से घबड़ाहट होती है, बेचैनी होती है, अशांति होती है। हम कोशिश करते हैं कि विश्वास आ जाए, संदेह मिट जाए, तो शांति हो जाएगी।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, ऐसी शांति झूठी होगी जो संदेह को दबा कर लाई जाती है। शांति तो वह सच्ची है जो संदेह के पूरे प्रयोग से आती है। उस शांति को तोड़ने के लिए फिर संदेह कभी वापस नहीं लौटता। वह हमेशा के लिए चला गया होता है।
संदेह तो मित्र है। जब तक ज्ञान का आलोक न आ जाए, तब तक संदेह साथी की तरह ज्ञान की यात्रा पर ले जाता है। संदेह तो मित्र है, जो कहता है, ज्ञान की तरफ चलो। और जब आप किसी विश्वास को पकड़ते हैं तो वह कहता है, मत पकड़ो, यह तो विश्वास है, यह आपका जानना नहीं है, यह संदिग्ध है। लेकिन मित्र को आप इनकार करते हैं और विश्वास को पकड़ते हैं। विश्वास शत्रु है, क्योंकि वह ज्ञान तक जाने से रोकता है। संदेह मित्र है क्योंकि वह यह कहता है कि ज्ञान के पहले किसी बात को मानने को मैं राजी नहीं हूं। लेकिन हजारों वर्ष की शिक्षा का यह परिणाम हुआ है कि संदेह मित्र नहीं मालूम होता और विश्वास मित्र मालूम होता है। विश्वास तो जहर है, नशा है। संदेह तो बड़ा मित्र है। वह तो यह कहता है कि मानना मत, जब तक तुम न जान लो। वह तो उसी समय शांत होगा जब मैं जान लूंगा। उस वक्त संदेह कहेगाः ठीक है, आ गई मंजिल, अब मैं विदा होता हूं, अब मेरा काम समाप्त हो गया। तुम वहां पहुंच गए जहां असंदिग्ध कुछ उपलब्ध हो गया है, जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता।
तो संदेह तो निरंतर साथ देना चाहता है और आप कहते हैं तकलीफ दे रहा है। तकलीफ देगा तभी जब आपने विश्वास पकड़ लिए होंगे। तो कृपा करें,

विश्वासों को छोड़ दें, संदेह के साथी हो जाएं। खोजें! खोजें! उस दिन तक संदेह का साथ जरूरी है, जब तक कि संदेह खुद न कहे कि बस आ गया मुकाम, अब यहां मेरा कोई भी काम नहीं है। अब वह चीज आपने जान ली है जिसको आप मानते थे तो मैं खड़ा हो जाता था, और संदेह करता था कि नहीं, अभी मानना मत। अब तो वह जगह आ गई है जहां मेरी कोई जरूरत नहीं है, अब आप जानते हैं। मानना जब तक होता है तब तक संदेह खड़ा होता रहता है, जिस दिन जानना आ जाता है उस दिन संदेह विलीन हो जाता है।
तो संदेह कष्ट नहीं दे रहा है। कष्ट दे रहे हैं आपके विश्वास। संदेह बढ़ता है तो विश्वास की नींव डगमगा जाती है, तो हमारे प्राण कंपते हैं। यह सारा जीवन हमने विश्वास पर खड़ा किया हुआ है। संदेह से घबड़ाएं न, अगर ज्ञान की यात्रा पर ही जाना है तो संदेह की नौका पर ही वह यात्रा करनी होगी। जो ठीक से संदेह करना सीख लेता है, वह ठीक से यात्रा करना सीख जाता है। और जीवन का अर्थ खोजना है, तब तो विश्वास करना ही मत, नहीं तो न मालूम किस प्रोपेगेंडा के चक्कर में आप पड़ जाएंगे।
विश्वास है क्या? एक तरह का प्रोपेगेंडा है। एक आदमी हिंदू घर में पैदा हो गया है, तो बचपन से वह एक तरह का प्रोपेगेंडा सुन रहा है, एक तरह की बातें सुन रहा है। ये धर्मग्रंथ हैं, ये भगवान हैं, यह मंदिर है, यह पूजा है, यह मंत्र है, यह सुन रहा है। बचपन से उसके दिमाग को कंडीशंड किया जा रहा है, उसको समझाया जा रहा है कि यह है। व्यापारियों को बहुत बाद में पता चला प्रोपेगेंडा, एडवरटाइजमेंट का रहस्य। सबसे पहले धार्मिक पुरोहितों को पता चल गया था। अभी तो व्यापारी अब कहना शुरू करते हैं कि बस लक्स टायलेट साबुन ही सबसे अच्छा है। धार्मिक बहुत दिन पहले से कहते थेः हमारी किताब ही सबसे अच्छी है। और एक बात अगर बहुत बार दोहराई जाए तो मनुष्य के मन पर उसका संस्कार बैठ जाता है।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः ऐसा कोई असत्य नहीं है जिसे बार-बार दोहरा कर सत्य न बनाया जा सके।
ठीक लिखा है, अनुभव से लिखा है। ऐसा गैर-अनुभव से नहीं लिखा। उसने जिंदगी भर यही किया, कोई भी असत्य बोला और ठीक से उसका प्रोपेगेंडा किया, थोड़े दिनों में लोगों ने मान लिया।
उन्नीस सौ सत्रह में रूस में क्रांति हुई। उसके बाद जो लोग वहां हुकूमत में आए उन्होंने पूरे मुल्क को समझाना शुरू कियाः ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, धर्म अफीम का नशा है। पहले लोग हंसे होंगे, फिर धीरे-धीरे सुनते-सुनते आदी हो गए होंगे, कोई पंद्रह-बीस साल बाद बीस करोड़ का मुल्क यह मानने लगा कि न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है। बीस करोड़ का मुल्क यह स्वीकार कर लिया कि कोई आत्मा, ईश्वर कुछ भी नहीं; बस मनुष्य शरीर है और मृत्यु पर सब समाप्त हो जाता है।
आप कहेंगे, बड़े नासमझ लोग हैं कि बीस साल का प्रचार किया और मान लिया।
और आप जो मान रहे हैं वह क्या है? वह दो हजार साल का प्रचार है, तीन हजार साल का प्रचार है, और क्या है? कोई हिंदू है, यह क्या है? कोई मुसलमान है, यह क्या है? एक तरह का प्रचार है। जो बच्चे के मन पर हम बचपन से डालते हैं, वह उसी तरह का मानने के लिए राजी हो जाता है। मरने के लिए राजी हो सकता है, मानने की तो बात दूर। एक मूर्ति टूट जाए तो एक आदमी मरने को राजी हो सकता है--कि यह मूर्ति मेरे भगवान की है, मैं अपनी जान लगा दूंगा, लेकिन इसको बचाऊंगा। यह क्या है? यह मस्तिष्क को संस्कारित करना है, कंडीशन करना है।
पावलफ नाम का एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ। उसने जीवन भर कुत्तों पर प्रयोग किए, और कुछ अनूठे नतीजे निकाले। और बड़ा नतीजा तो यह निकाला कि आदमी का दिमाग भी कुत्तों के दिमाग की भांति ही संस्कारित किया जा सकता है। एक कुत्ते पर जिस पर वह प्रयोग करता था उसको वह रोज रोटी देता था, तो रोटी सामने आते ही से कुत्ते की जीभ बाहर निकल आती थी और लार टपकने लगती थी। रोटी देने के साथ जब लार टपकती थी तभी वह घंटी भी बजाता था। फिर पंद्रह दिन के बाद रोटी तो नहीं दी, सिर्फ उसने घंटी बजाई, कुत्ते की जीभ से लार टपकने लगी।

अब घंटी और कुत्ते की जीभ से लार टपकने का कोई भी संबंध नहीं है। रोटी
दी जाए तो कुत्ते की जीभ से लार टपके, यह तो समझ में आता है। लेकिन घंटी बजाई जाए और लार टपके, यह बिल्कुल समझ में नहीं आता। लेकिन पंद्रह दिन तक रोटी दी गई, लार टपकी, तभी घंटी बजाई गई। तो घंटी का बजना और रोटी का मिलना संयुक्त हो गया उसके मन में। अब सिर्फ घंटी बजाई गई, लार टपकने लगी। अब यह जो लार टपक रही है, यह पंद्रह दिन की कंडीशनिंग का परिणाम है।
आप एक मंदिर के सामने से निकलते हैं, और आपके हाथ ऐसे जुड़ जाते हैं, आपको पता ही नहीं चलता कि ये हाथ कैसे जुड़ गए। आपको बचपन से बताया गया कि ये भगवान हैं, ये भगवान हैं, ये भगवान हैं, यह कहता ही चला गया आपका समाज। आपके हाथ भी उठने लगे कि ये भगवान हैं। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है वहां। आपका मस्तिष्क, प्रचारित कर दी गई एक बात। और एक, जैसे घंटी के बजने से लार टपकने का कोई संबंध नहीं है, वैसे ही एक पत्थर की मूर्ति से हाथ जुड़ने का भी कोई संबंध नहीं है, कोई संबंध ही नहीं है किसी तरह का। लेकिन एक कंडीशनिंग हो गई, दिमाग राजी हो गया। दिमाग ने प्रचार पकड़ लिया। पकड़ लिया और वह कहने लगा कि...
एक मेरे मित्र हैं, मेरी बातें सुनते-सुनते उनको ऐसा ख्याल आया कि यह बात तो ठीक है। वे तो किसी भी मंदिर के सामने से निकलते थे तो हाथ जोड़ते थे। भयभीत इतने थे कि न मालूम कौन सा भगवान नाराज हो जाए। जिस मंदिर के सामने से निकले उसी का... कहीं हनुमान जी का मंदिर है, कहीं शंकर जी का... न मालूम कौन नाराज हो जाए। और न मालूम कौन इनमें ताकतवर है, कुछ पक्का पता नहीं। इसलिए सभी को जोड़ते थे। जितना भयभीत आदमी होता है, उतना ही ज्यादा यह मुश्किल हो जाता है। यह सब फियर कांप्लेक्सेज का धर्म से, पूजा से कोई संबंध नहीं है। भय है भीतर। मेरी बातें सुनते थे तो उन्होंने एक दिन बड़ी हिम्मत की और एक मंदिर के सामने से बिना हाथ जोड़े निकल गए। लेकिन दो सौ कदम के बाद वापस लौटना पड़ा। रात में आकर मुझसे कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई थी। मुझे तो ऐसा लगा कि न मालूम क्या हो जाएगा! चला तो गया हिम्मत किए दो सौ कदम, लेकिन फिर मैंने सोचा कि अरे छोड़ो भी, किसकी बातचीत में पड़े हो! पता नहीं भगवान नाराज हो जाएं, इतने दिन से हाथ जोड़ते थे। तो मैंने सोचा कि कोई देख भी नहीं रहा, कोई मतलब भी नहीं, मैं वापस लौट आया, मैंने हाथ जोड़े। और तब मुझे शांति मिली जब मैंने हाथ जोड़े। नहीं तो मेरा मन बड़ा अशांत हो गया था।
यह आप रोज सुबह पूजा करते हैं, एक दिन नहीं करते तो कहते हैं, आज मन बड़ा अशांत है, पूजा नहीं की। तो आप सोचते होंगे कि पूजा से शांति मिलती है। नहीं, मन एक चीज के लिए कंडीशंड हो गया, संस्कारित हो गया। एक चीज जड़ आदत की तरह पकड़ गई। और कोई भी चीज पकड़ाई जा सकती है, कोई भी चीज पकड़ाई जा सकती है। हजारों साल का प्रचार, चीजें पकड़ जाती हैं। हमारा मन उनको पकड़ लेता है और उनके अनुसार हम जीने लगते हैं। और हम सोचते हैं कि यह धर्म हो रहा है।
इसी भांति हमारे सारे विश्वास हैं जो प्रचारित किए गए हैं, उनको हमने पकड़ लिया है। विचार और विश्वास हैं दूसरों के, संदेह है मेरा। मेरे प्राण संदेह करते हैं और विश्वास मुझे नीचे दबाते हैं कि नहीं, संदेह मत करो। तो बेचैनी पैदा होती है। इस बेचैनी में आपका मन होता है कि अगर संदेह समाप्त हो जाए तो बेचैनी समाप्त हो जाए। मैं आपसे कहता हूं, संदेह इस भांति कभी समाप्त हो ही नहीं सकता है; बेचैनी कभी समाप्त नहीं हो सकती है।
लेकिन हां, विश्वासों को छोड़ दें और संदेह को पूरी तरह जगने दें; और संदेह का अनुसरण करें; और संदेह जहां ले जाए, हिम्मत से जाएं। संदेह कभी गलत जगह नहीं ले जा सकेगा। क्यों? क्योंकि गलत जगह अगर पहुंच भी गए तो संदेह फिर संदेह करेगा कि यह तो ठीक नहीं है। संदेह कभी गलत जगह किसी को नहीं ले जा सकता, अगर संदेह पूरा हो। क्योंकि गलत जगह जाते ही से संदेह कहने लगेगा कि यह तो ठीक नहीं है। जिसने संदेह को जगाया है अपने भीतर, वह कभी गलत जगह नहीं पहुंच सकता। वह तो परमात्मा पर ही पहुंच जाए तभी संदेह समाप्त होगा, नहीं तो संदेह उसका पीछा करेगा।
लेकिन जिसने विश्वास किया है वह कभी भी गलत जगह पर पहुंच सकता है, क्योंकि कभी भी गलत चीज पर विश्वास किया जा सकता है। और जो विश्वास करने वाले लोग हैं वे किसी भी चीज पर विश्वास कर सकते हैं। सिर्फ उनके विश्वास

को थोड़ा सा बदलने की जरूरत होती है, वे किसी भी चीज पर विश्वास कर लेते हैं।
हमारा मुल्क हजारों साल से विश्वास का अनुसरण करता रहा है। जब इस मुल्क पर पश्चिमी जीवन का प्रभाव आया तो हम एकदम पश्चिमी जीवन से प्रभावित हो गए। लोग सोचते हैं कि यह पश्चिमी जीवन से प्रभावित हो जाना बड़ा बुरा है। लेकिन आपको पता नहीं है, जिस कौम को तीन हजार साल तक विश्वास के अंतर्गत पाला गया हो वह कौम किसी भी चीज से प्रभावित हो सकती है। उसके विचार करने की और संदेह करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। इसलिए पश्चिम का प्रभाव आया तो हम उसमें बह गए। कोई भी बेवकूफी आ जाए हमारे ऊपर तो हम संदेह करने में असमर्थ हो गए हैं, हम उसको मान लेंगे। एक ही बात होनी चाहिएः बेवकूफी करने वाला मालिक होना चाहिए, ताकतवर होना चाहिए। बस फिर हम मान लेंगे। क्योंकि कभी ताकतवर लोग, धनी लोग, राजा लोग, शक्तिशाली लोग थोड़े ही गलती करते हैं! बस फिर हम मान लेंगे, हम उनके पैरों में हाथ जोड़ कर पड़ जाएंगे, कहेंगे कि जो तुम कहते हो ठीक है।
तीन हजार साल के विश्वास का यह परिणाम हुआ कि पश्चिमी संस्कृति जब हमारे ऊपर आनी शुरू हुई तो हम संदेह करने में असमर्थ हो गए। संदेह हमने कभी किया ही नहीं था। हम पहले अपने पंडित-पुरोहितों को मानते थे, फिर हम उनके, सफेद चमड़ी के पुजारियों को मानने लगे, उन पर विश्वास करने लगे। विश्वास करने वाली कौम की संदेह करने की क्षमता नष्ट हो जाती है। इस देश में संदेह को वापस जगाना है, नहीं तो यह कौम करीब-करीब मर चुकी है। और यह कौम कुछ भी विश्वास कर सकती है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, इसको कोई भी चीज विश्वास करवाई जा सकती है। क्योंकि हम विश्वास करने में पाले गए हैं। हमसे जो भी कहा जाएगा, हम मान लेंगे कि ठीक है। क्योंकि संदेह, संदेह की हमें कोई शिक्षा नहीं दी गई है।
संदेह की शिक्षा न होने से ही इस देश में विज्ञान का जन्म नहीं हो पाया। दूसरे मुल्कों ने विज्ञान में इतना विकास किया, संदेह के कारण। हम पिछड़ गए, क्योंकि हमने तो विश्वास किया। विश्वास किया तो वहीं हम ठहर गए-- बैलगाड़ी पर, तो बैलगाड़ी पर ठहर गए। आगे जाने का कोई सवाल नहीं था। क्योंकि मेरे पिता बैलगाड़ी में चलते थे, उनके पिता भी बैलगाड़ी में चलते थे, मैं कौन हूं जो संदेह करूं कि बैलगाड़ी से बेहतर भी कोई वाहन हो सकता है? नहीं-नहीं, यह कभी नहीं हो सकता! मेरे पिता क्या नासमझ थे जो बैलगाड़ी में चलते थे? अगर हो सकता, तो इतने बुद्धिमान मेरे पिता थे, जगतगुरु थे, वे तो और कुछ अच्छा बना लेते। लेकिन संदेह, संदेह कैसे किया जा सकता है! इसलिए हम एक डबरे की भांति हो गए। संदेह की यात्रा होती है सरिता की भांति, वह सागर तक जाती है। और विश्वास एक डबरे की भांति बंद हो जाता है; सड़ता है, लेकिन गति नहीं करता।
तो मैं तो कहूंगा, संदेह शुभ है। घबड़ाएं न, उसके आमंत्रण को स्वीकार करें। वह आपकी आत्मा को ऊंचाइयों तक ले जाएगा। लेकिन एक ही बात याद रखें, संदेह हो पूरा, फिर कहीं भी बीच में रुकने को राजी न हों। जब तक कि, जब तक कि ज्ञान का ही क्षण न आ जाए तब तक रुकने को राजी न हों।
इसीलिए तो जैसे-जैसे हम बूढ़े होते जाते हैं और कमजोर होते जाते हैं,
हम धार्मिक होते जाते हैं। क्योंकि संदेह की क्षमता हमारी कम होती जाती है, डर लगने लगता है कि मौत करीब आ रही है, अब संदेह किया तो बहुत मुश्किल हो जाएगी। इसीलिए तो मंदिरों में, चर्चों में, मस्जिदों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं, जवान दिखाई नहीं पड़ते। क्योंकि जब आदमी बूढ़ा होता है तब संदेह की हिम्मत नहीं रह जाती और विश्वास की कमजोरी आ जाती है।
लेकिन सच्चाई यह है कि धर्म है उन लोगों के लिए जिनके चित्त संदेह करने में समर्थ हैं। युवा है जिनका चित्त, उनके लिए ही धर्म है। और युवा चित्त का कोई संबंध उम्र से नहीं है। एक आदमी बुढ़ापे में भी युवा हो सकता है और एक आदमी जवान होकर भी बूढ़ा हो सकता है।
मैं एक जगह गया, ग्वालियर में। एक मित्र ने मुझे खबर की कि मेरी मां भी आपके व्याख्यान सुनने आना चाहती है। लेकिन उसकी उम्र है नब्बे वर्ष की, और इधर पचास वर्षों से वह निरंतर पूजा में लगी रहती है और चौबीस घंटे माला फेरती रहती है, कहीं आपकी बात सुन कर उसका चित्त अशांत न हो जाए, कहीं उसका

चित्त परेशानी में न पड़ जाए, तो मैं उसे लाऊं या न लाऊं? उन्होंने मुझे पत्र लिखा।
मैंने उनसे कहा कि जरूर लिवा लाएं।
वे अपनी मां को लेकर आए। पता नहीं मीटिंग में क्या हुआ। दूसरे दिन वे फिर आए मेरे पास और बोले कि मैं बहुत हैरान हूं। रास्ते में मैं डरा हुआ था कि मेरी मां के मन पर पता नहीं कैसा प्रभाव पड़े। लौटते में मैंने अपनी मां से पूछा कि चित्त में अशांति तो नहीं हुई आपको? मेरी मां ने कहा कि मैं अपनी माला, जिसे मैं हमेशा साथ रखती थी, वहीं छोड़ आई हूं। क्योंकि वे जो कह रहे थे, पचास साल का मेरा अनुभव भी कहता है कि यह व्यर्थ है। पचास साल मैंने इसको फेर कर देखा है। पचास साल का मेरा अनुभव भी कहता है यह व्यर्थ है। लेकिन मुझमें हिम्मत नहीं जुटा पा रही थी मैं कि इसको छोडूं कि नहीं छोडूं। मैंने बात सुनी, और मैंने कहा कि अब एक क्षण को भी पोस्टपोन करना ठीक नहीं है। क्योंकि जितने दिन गए, गए। जो बचा है समय उसमें कुछ किया जा सकता है। तो मैंने वहीं छोड़ दी है माला, उस मीटिंग में ही छोड़ आई हूं। उसको वापस लेकर नहीं आई हूं।
इस बूढ़ी स्त्री को कौन बूढ़ा कहेगा? यह जवान है, यह युवा है।
तो मैंने उनसे कहा कि तुम बूढ़े हो, तुम्हारी मां जवान है। क्योंकि तुम डरते थे कि मां को लाएं या नहीं लाएं। मां को लाने में तुम डरते थे और मां पचास साल की माला छोड़ने में नहीं डरी। तुम बूढ़े आदमी हो।
और हमारा दुर्भाग्य यही है कि हमारे देश में जवान आदमी पैदा होने बहुत दिन से बंद हो गए हैं। बस बूढ़े ही बूढ़े लोग हैं। बच्चे से सीधे बूढ़े हो जाते हैं, जवान होने का मौका ही नहीं आता। क्योंकि यंग माइंड का, जवान चित्त का पहला लक्षण हैः संदेह, खोज।
तो मैं तो कहूंगा, शुभ है यह कि संदेह उठता है। भगवान न करे यह उठना कहीं बंद न हो जाए, नहीं तो आप मर गए। यह अभी उठता है, इस बात की सूचना है कि अभी कुछ भीतर खोज के लिए गुंजाइश है। अभी पूरी तरह नहीं मरे हैं। थोड़ी जिंदगी भीतर है, थोड़ी चिनगारी है, तो वह राख को उड़ा-उड़ा कर बाहर निकल आती है। उससे घबड़ाएं न, चिनगारी को पूरा निकाल लें, सारी राख को उड़ा दें, एक विश्वास को भी न टिकने दें मन में। और तब संदेह एक मुक्ति लाता है, एक स्वतंत्रता। और खोज की एक ऊर्जा पैदा होती है और खोज शुरू होती है।
इतना जरूर सच है कि अगर पूरे चित्त से कोई संदेह करने को इसी वक्त राजी हो जाए, इसी क्षण टोटल डाउट अगर हो, तो इसी क्षण सत्य उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि टोटल डाउट, पूरा संदेह सारे विश्वासों को गिरा देता है, सारे ज्ञान को गिरा देता है। जिसकी मैं सुबह आपसे बात कर रहा था। सारा ज्ञान झड़ जाता है और तब स्टेट ऑफ नॉट नोइंग पैदा होती है, न जानने की भाव-दशा पैदा होती है। और वह न जानने की भाव-दशा इतनी सरल, इतनी शांत, इतनी मौन होती है कि उसी में, उसी में जाना जाता है वह जो है। धीरे-धीरे संदेह करेंगे तो कभी जानेंगे और अगर पूरा संदेह कर सकते हैं तो अभी और यहीं जान सकते हैं।

पूछा है कि बुद्ध का परिवार छोड़ना क्या कमजोरी था?

अगर बुद्ध ने परिवार छोड़ा हो तो जरूर कमजोरी था। लेकिन मेरा निवेदन
यह हैः कुछ लोग परिवार छोड़ते हैं और कुछ लोगों से परिवार छूट जाता है। जिनसे छूट जाता है वह कमजोरी नहीं होती, जो छोड़ते हैं वह कमजोरी होती है। छोड़ना कमजोरी है, छूट जाना कमजोरी नहीं है। जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से गिर जाते हैं; वृक्ष को वे पत्ते छोड़ते नहीं हैं, बस छूट जाते हैं। ऐसे ही जीवन में जितना-जितना बोध विकसित होता है, कुछ चीजें छूटनी शुरू हो जाती हैं, उन्हें छोड़ना नहीं पड़ता। जिन चीजों को छोड़ना पड़ता है वे तो कच्चे पत्तों की भांति टूटती हैं और पीछे उनका घाव छूट जाता है।
एक छोटी सी कहानी कहूंगा, उससे समझ में बात आ जाएगी।
एक गांव में एक दंपति रहता था, पति और पत्नी। वे दोनों बड़े सरल, सीधे, साधु चरित्र व्यक्ति थे। और रोज लकड़ियां काट लाते थे, जो पैसा होता था, सांझ खाना खा लेते थे, जो बचता था वह बांट देते थे। रात उनके पास कुछ भी नहीं होता था। अपरिग्रही होकर सो जाते थे। सुबह फिर लकड़ियां काट लाते थे।

लेकिन एक दफा वर्षा गिरी सात दिन तक अनायास बेमौसम में और वे लकड़ियां नहीं काटने जा सके। उन्होंने भिक्षा मांगनी भी उचित न समझी, किसी के ऊपर भार बनना भी ठीक न समझा। तो वे भूखे रहे, उन्होंने उपवास किया।
फिर सात दिन बाद सूरज निकला, तो वे लकड़ियां काटने गए। सात दिन के भूखे, उन्होंने लकड़ियां काटीं, मौलियां बांधीं और घर की तरफ चलते थे। पति आगे था, पत्नी पीछे थी, थोड़ा फासला था।
पति रास्ते से निकलता था जंगल के, देखा कि पास में, किनारे पर पगडंडी के, कोई राहगीर की थैली गिर गई है अशर्फियों से भरी, कुछ अशर्फियां बाहर पड़ी हैं, कुछ थैली में हैं। उसके मन को हुआ कि मैंने तो स्वर्ण को छोड़ दिया है, मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया है, मैं तो हूं विजेता, मेरे मन को तो लोभ नहीं पकड़ता, लेकिन पत्नी का क्या भरोसा! एक तो पुरुष ने कभी स्त्री का भरोसा किया ही नहीं है। और पति ने पत्नी का भरोसा तो कभी किया ही नहीं है। उसने भी नहीं किया। क्या भरोसा, उसका मन डांवाडोल हो जाए!
इसलिए पुरुषों ने जो शास्त्र लिखे हैं, उनमें स्त्रियों को मोक्ष जाने का अधिकार नहीं दिया। कोई भरोसा नहीं है स्त्रियों का। पुरुष भरोसा कर ही नहीं सकता। अगर स्त्रियां शास्त्र लिखतीं तो वे भी भरोसा न कर सकती थीं, और वे भी नहीं भेजतीं उसको। वे भी नियति बना देतीं कि जब तक स्त्री पर्याय में पैदा नहीं होओगे तब तक मोक्ष नहीं जा सकते।
तो यह सोच कर कि कहीं स्त्री का मन न डोल जाए, कहीं उसके मन में कमजोरी
न आ जाए, सात दिन की भूख, परेशानी, उसने जल्दी से एक गड्ढे में उस थैली को सरका दिया और मिट्टी से ढंक दिया। वह ढंक भी न पाया था कि पीछे से आ गई स्त्री और उसने पूछा कि क्या कर रहे हैं?
अब बड़ी मुश्किल हो गई, सत्य बोलने का नियम लिया हुआ था। झूठ बोल सकते नहीं थे, जिद्द के पक्के थे, नियम था उसको तोड़ नहीं सकते थे, और बताना भी कठिन हो गया, लेकिन बताना पड़ा। तो कहा कि मेरे मन में ख्याल आया कि मैंने तो स्वर्ण को जीत लिया, मैंने तो छोड़ दिया संपत्ति का मोह, और यहां पड़ी थी थैली, स्वर्ण की अशर्फियां थीं, सोचा कि कहीं तेरा मन उनके ऊपर लालच न खा जाए, इसलिए उनको गड्ढे में डाल कर मिट्टी से ढंकता हूं।
उसकी पत्नी ने कहा, तुम्हें स्वर्ण अभी दिखाई पड़ता है? और तुम्हें मिट्टी के ऊपर मिट्टी डालते हुए शर्म नहीं आती?
पति ने स्वर्ण छोड़ा था, पत्नी से स्वर्ण छूट गया था। इतना फर्क था।
बुद्ध ने परिवार कभी नहीं छोड़ा, महावीर ने परिवार कभी नहीं छोड़ा, परिवार छूट गया। वह अर्थहीन हो गया; उसमें कोई भी अर्थ न रहा। जैसे सांप अपनी केंचुली को छोड़ देता है, निकल जाता है उसके बाहर, वैसे ही कुछ छूट गया, कुछ व्यर्थ हो गया। छोड़ने का और छूट जाने का बुनियादी फर्क है। और फर्क बाद में भी काम करता है। बुद्ध ने अपने पूरे जीवन में बाद के कभी यह नहीं कहा कि मैंने राज्य छोड़ा और मैंने पत्नी छोड़ी, मैंने धन छोड़ा, यह कभी नहीं कहा।
एक साधु के पास था मैं। उन्होंने कहा कि मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं। मैंने पूछा, ये कब छोड़े थे? उन्होंने कहा, कोई बीस-पच्चीस वर्ष हो गए हैं। लात मार दी थी मैंने उन पर। मैंने कहा, वह लात ठीक से नहीं लग पाई। क्योंकि तीस वर्षों तक उनकी याद, उसकी याद, उसकी स्मृति कि मैंने छोड़ी थी, मैंने लाखों पर लात मार दी थी, उसकी स्मृति क्यों बनी है? अगर लात पूरी लग गई होती तो स्मृति नहीं होती। स्मृति है तो जब लाखों रुपये रहे होंगे तब यह ख्याल रहा होगा कि मेरे पास लाखों हैं। और अब तीस वर्ष से अहंकार दूसरा मजा ले रहा है। वह यह मजा ले रहा है कि मैंने लाखों छोड़ दिए।
छोड़ता है जब कोई तो अहंकार में कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकार फिर से उस छोड़ने को पकड़ लेता है और कहता हैः मैं त्यागी हूं, मैंने छोड़ा। लेकिन जब चीजें छूट जाती हैं तो पता भी नहीं चलता वे कब छूट गईं। और उनके पीछे त्याग का भाव भी पैदा नहीं होता है कि मैंने त्यागा, मैंने छोड़ा। चीजें व्यर्थ हो गई हैं और चली गई हैं।
आप अपने घर के बाहर रोज कचरा फेंक देते हैं, तो आप अखबार में जाकर खबर छपवाते हैं कि आज मैंने घर का कचरा छोड़ दिया? धन्य हूं मैं! और मेरा स्वागत करो और सम्मान करो! नहीं, आप कचरा फेंक आते हैं और भूल जाते हैं।

एक दिन जीवन में ऐसा भी होता है कि जिसको हम बहुत बहुमूल्य समझ रहे हैं, बोध के विकास के साथ-साथ वह कचरे जैसा हो जाता है। उसे छोड़ना नहीं पड़ता, बस छूट जाता है। उसकी पीछे कोई याद भी नहीं रह जाती।
तो अगर बुद्ध ने छोड़ा हो, तो वे जरूर कमजोर रहे होंगे। अगर महावीर ने छोड़ा हो, तो वे जरूर कमजोर रहे होंगे। जैसा उनके भक्त कहते हैं कि उन्होंने महान त्याग किया, अगर यह सच है, तो वे कमजोर रहे होंगे।
लेकिन मैं तो यह कहता हूं कि उन्होंने कभी छोड़ा नहीं। उनको त्याग का पता भी नहीं था। यह भक्तों भर को पता है कि बुद्ध ने त्याग किया और महावीर ने त्याग किया। उन्होंने कभी नहीं छोड़ा था। चीजें व्यर्थ हो गई थीं, वे उनके बाहर निकल गए थे। वैसे ही जैसे रोज सुबह आप कचरा फेंक आते हैं घर के बाहर, ऐसे ही जो कचरा हो गया था, उसके वे बाहर आ गए थे। इसमें कौन सा छोड़ना है! कौन सा त्याग है! त्याग किया है सिर्फ अज्ञानियों ने, ज्ञानियों ने कभी कोई त्याग नहीं किया। अज्ञानी त्याग कर सकता है, ज्ञानी कभी त्याग नहीं करता। उससे चीजें छूट जाती हैं, उससे त्याग का कोई संबंध ही नहीं है।
कुछ और प्रश्न हैं, वह रात को मैं आपसे बात करूंगा।

रोम रोम रस पीजिए
चौथा प्रवचन

झूठे धर्मों की विदाई--सच्चे धर्म का जन्म

एक मित्र ने पूछा है कि क्या सभी धर्मों के समन्वय से वास्तविक धर्म
का जन्म नहीं हो सकता है? क्या हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, सिक्ख, और सभी धर्म इकट्ठे हो जाएं और इन सब धर्मों के बीच कोई समन्वय, कोई सिंथीसिस खोजी जा सके, तो क्या वह सच्चा धर्म नहीं होगा?

एक छोटी सी कहानी कहूं और फिर इस संबंध में कुछ कहूंगा।
डार्विन का नाम तो सुना ही होगा। डार्विन ने पशुओं-पक्षियों, कीड़ों- मकोड़ों के बाबत सारे जीवन अध्ययन किया था। और उसी अध्ययन से वह इस नतीजे पर भी पहुंच गया था कि मनुष्य भी पशुओं की ही एक जाति है और पशुओं से ही विकसित हुई है। उसकी जानकारी इतनी अदभुत थी कीड़े-मकोड़ों, पशुओं और पक्षियों के संबंध में कि वह किसी भी कीड़े और मकोड़े की जाति बता सकता था, उसके संबंध में सब कुछ बता सकता था।
कुछ वनस्पतिशास्त्री मित्रों के घर वह एक दफा मेहमान था। उन्हें मजाक सूझी, उन्होंने पांच-छह छोटे-छोटे कीड़े-पतंगे पकड़ कर उनके टुकड़े-टुकड़े काट लिए और एक नया कीड़ा बना लिया। पंख हैं दूसरे कीड़े के, धड़ दूसरे कीड़े का, पैर दूसरे कीड़े के, सब टुकड़े अलग-अलग कीड़ों से काट कर एक नया कीड़ा जोड़ कर बना लिया। वे सभी विशेषज्ञ थे, सभी वैज्ञानिक थे। डार्विन को धोखा देने के लिए उन्होंने एक नया कीड़ा बना लिया कि जब डार्विन आएगा तो पूछेंगे, यह किस कोटि का कीड़ा है? हो सकता है डार्विन भी धोखे में आ जाए और कोई कोटि बता दे तो बड़ा मजाक होगा।
डार्विन आया, तो भोजन और विश्राम के बाद उसे वे अपनी प्रयोगशाला में
ले गए और उन्होंने कहा, हमने एक ऐसा कीड़ा पकड़ा है, जिसकी जाति तय करनी कठिन है। वह इतना अनूठा है कि उस जैसा कीड़ा अब तक देखा नहीं गया। डार्विन गया। उन्होंने उससे पूछा कि बताएं यह किस स्पेशी.ज, किस जाति का कीड़ा है? डार्विन ने उसे गौर से देखा और कहा, दिस इ.ज हम्बग, सर। डार्विन ने कहा,
यह कोई कीड़ा नहीं है, यह एक खिचड़ी है।
अगर सारे धर्मों को मिला कर, जिसको लोग समन्वय कहते हैं, कोई धर्म बने,
तो कहना पड़ेगा--दिस इ.ज हम्बग रिलीजन, सर। यह कोई धर्म नहीं है, यह खिचड़ी है।
और एक बीमारी ही जब खतरनाक होती है, दस-पंद्रह बीमारी इकट्ठी मिल जाएं
तो और मुश्किल हो जाएगी। अगर ये सारे धर्मों के बीच कोई समन्वय बना लिया जाए तो वह और भी खतरनाक सिद्ध होगा। वह रोग नहीं होगा, महारोग होगा। सच्चे धर्म का कोई संबंध इन प्रचलित सारे धर्मों को जोड़ लेने से नहीं
है, वरन सच्चे धर्म का संबंध तो स्वयं की सत्ता और विश्वसत्ता के बीच संबंध को खोज लेने से है। सच्चा धर्म किसी आर्गनाइजेशन, किसी संगठन और संप्रदाय में नहीं है और न सभी संप्रदाय और सभी संगठनों के मेल और उनके इकट्ठा कर लेने में है।
सच्चे धर्म की खोज तो अत्यंत निजी और वैयक्तिक है, एकदम इंडिविजुअल है, समूह से और संगठन से उसका कोई भी नाता नहीं। समूह और संगठन जैसे ही खड़ा होता है, वैसे ही धर्म की ज्योति तो विलीन हो जाती है और धुआं शेष रह जाता है।
ऐसा होगा ही। क्यों? क्योंकि धर्म की... आज तक हमने कभी प्रेम के कोई संगठन देखे हैं? प्रेम वैयक्तिक अनुभव है, एक-एक व्यक्ति का अपना निजी अनुभव है। कोई समूह का, सामूहिक रूप से, प्रेम का कोई अनुभव नहीं होता।
हम इतने लोग यहां बैठे हैं। दिखाई तो पड़ता है कि हम समूह में बैठे हुए हैं। लेकिन अगर हम सारे लोग शांत हो जाएं और ध्यान में चले जाएं तो समूह बचेगा?
नहीं; एक-एक आदमी अकेला रह जाएगा, बाकी भीड़ विलीन हो जाएगी। जब भी हम शांत होंगे, हम अकेले रह जाएंगे।

यही तो कारण है कि मनुष्य-जाति के इतिहास में जो भी श्रेष्ठ और जो भी सुंदर है, वह भीड़ ने नहीं, एक-एक व्यक्ति ने अपने अकेलेपन में और एकांत में जाना है। जो भी सुंदर है, जो भी शिव है, जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सत्य है, वह व्यक्तियों ने जाना है अकेले-अकेले। समूह ने आज तक कोई सौंदर्य और कोई सत्य नहीं जाना है। जान भी नहीं सकेगा।
वैयक्तिक प्राणों का अनुभव है धर्म भी। एक व्यक्ति अपनी निजी शांति में, मौन में अनुभव करता है। और जब भी हम संगठन और समूह बना लेते हैं, तो इस अनुभूति से तो कोई वास्ता नहीं रह जाता, कुछ शब्द होते हैं, जो नारे बन जाते हैं, झंडे बन जाते हैं और उनके आसपास लोग इकट्ठे हो जाते हैं। ये लोग भी कोई एक-दूसरे के प्रति प्रेम से इकट्ठे होते हों तो गलती है। ये दूसरे भी किसी और के प्रति घृणा के कारण इकट्ठे होते हैं। दुनिया में जितने संगठन हैं, सब घृणा पर खड़े हुए हैं। हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा हैः अगर किसी को संगठित होना हो, तो या तो सचमुच किसी शत्रु को खोज लो या कोई झूठा शत्रु पैदा कर लो। बिना उसके इकट्ठे नहीं हो सकोगे।
मुसलमानों को इकट्ठा होना होता है तो वे कहते हैंः इस्लाम खतरे में है, हिंदू इस्लाम को नष्ट करना चाहते हैं। तो मुसलमान इकट्ठे हो जाते हैं। हिंदुओं को इकट्ठा होना हो तो वे कहते हैंः हिंदू खतरे में हैं, हिंदू धर्म खतरे में है, मुसलमान हमें दबाना चाहते हैं, ईसाई हमें लूट लेना चाहते हैं। वे इकट्ठे हो जाते हैं। अभी हिंदुस्तान पर हमला हो गया चीन का या पाकिस्तान का, तो सारे मुल्क में एक एकता पैदा हो गई और लोग कहने लगे कि मुल्क यह तो, मुल्क इकट्ठा हो गया, यूनिटी पैदा हो गई, हम इकट्ठे हो गए।
यह कोई यूनिटी नहीं है। यह सिर्फ सामने खड़े हुए दुश्मन के प्रति घृणा
है, जिसमें कोई भी इकट्ठा हो जाता है। घृणा में इकट्ठा हो जाना एकदम आसान है। कॉमन एनिमी, हम सब का एक दुश्मन हो, उसको नष्ट करने को हम इकट्ठे हो जाते हैं। ये घृणा के संगठन हैं सब। संगठन मात्र के केंद्र में कहीं घृणा होती है, कहीं शत्रुता होती है और इसीलिए हम इकट्ठे हो जाते हैं। धर्मों के जो संगठन हैं वे भी, चाहे वे कितनी ही प्रेम की बात करते हों, लेकिन उनका केंद्र घृणा है। और यही तो कारण है कि प्रेम की बात चलती है और धर्मों के संगठन एक-दूसरे की हत्या में संलग्न होते हैं, एक-दूसरे से लड़ते हैं। संगठन खड़ा होता है घृणा पर। संगठन का प्रेम से क्या संबंध? संगठन का धर्म से क्या संबंध? संगठन का सत्य से क्या संबंध? और क्या भीड़ की ताकत से कभी किसी ने सत्य को जाना है? सत्य कोई ऐसी बात तो नहीं है कि हम फौजें ले जाएं, मिलिटरी ले जाएं और हमला करें। सत्य कोई ऐसी बात तो नहीं है कि अकेले से नहीं होगा तो हम दस-पांच लोगों को लाठियां लेकर साथ ले जाएंगे, तब होगा। सत्य का अनुभव तो अकेले में होता है। इतने अकेले में कि न केवल भीड़ बाहर न हो, बल्कि चित्त के भीतर से भी सब मित्र विदा ले लें, सारी भीड़ चली जाए, भीतर कोई न रह जाए, सन्नाटा रह जाए, अकेले रह जाएं। उस टोटल लोनलीनेस में, उस एकदम भीतर के अकेलेपन में जानता है व्यक्ति अपनी आत्मा को, जानता है सत्य को, और उसी एकांत में, उसी तनहाई में, उसी अकेलेपन में जुड़ जाता है सारे विश्व की सत्ता से।
तो वहां तो धर्म जाना जाता है। हिंदू और मुसलमान कोई धर्म नहीं हैं। धर्म का तो कोई नाम भी नहीं हो सकता। धर्म तो एक अनुभव है, एक संगठना नहीं। इसलिए अगर इन सबको हम इकट्ठा भी कर लें, तो यह एक खिचड़ी होगी, यह एक हम्बग रिलीजन होगा। यह कोई, इससे कोई सच्चे धर्म के जन्म का कोई संबंध नहीं है।
लेकिन इधर सारी दुनिया में धर्मों के बीच झगड़ा देख कर कुछ समाज-सुधारकों ने यह कहना शुरू किया कि इनको हम इकट्ठा कर लें। उन समाज-सुधारकों को धर्म से कोई संबंध नहीं है, उनका संबंध केवल इतना है कि किसी भांति इनके आपस के झगड़े कम हो जाएं। तो हम इनको किसी भांति इकट्ठा कर लें। तो चार ईंटें इस मकान की, चार ईंटें उस मकान की, कुछ कुरान से, कुछ बाइबिल से, कुछ गीता से इकट्ठा कर लें और उसको जोड़-जाड़ कर...
कोई अर्थ नहीं है उस जोड़ने में, कोई भी अर्थ नहीं है। वस्तुतः अगर मनुष्य-जाति को जोड़ना है, तो हिंदू-मुसलमान और जैन को जोड़ने की जरूरत नहीं है। तीनों को विदा कर देने की जरूरत है। ये सब विदा कर दिए जाएं तो मनुष्य-जाति जुड़ेगी, और किसी भांति नहीं जुड़ सकती है, लाख उपाय किए जाएं। जब हम यह

स्वीकार कर लेते हैं कि हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, इन सबको जोड़ें, तो हम इनकी सच्चाई को स्वीकार कर लेते हैं और फिर उसको जोड़ना शुरू कर देते हैं। यह हमने बीमारी को तो स्वीकार कर लिया, हमने मान लिया, और फिर उसको जोड़ने की कोशिश में लगते हैं। नहीं, जरूरत तो इस बात की है कि सारी दीवालों को अस्वीकार कर दिया जाए जो मनुष्य को मनुष्य से विभाजित करती हैं। उन्हें जोड़ने की कोई जरूरत नहीं है, उनके जोड़ से कोई हित होने वाला नहीं है।
और जो मनुष्य ठीक-ठीक अर्थों में धार्मिक है, वह तो निश्चित ही न हिंदू हो सकता है, न मुसलमान हो सकता है, न जैन हो सकता है। जो आदमी धार्मिक है उसे हिंदू, जैन, मुसलमान होने की कहां सुविधा है? उसे किसी खंड के साथ एक होने की कहां सुविधा है? उसे किसी के विरोध में खड़े होने की कहां सुविधा है? उसका चित्त तो अविरोध को उपलब्ध होगा, उसके चित्त में तो प्रेम की धारा बहेगी, उसके लिए तो कोई पराया नहीं रह जाएगा, कोई अपना नहीं रह जाएगा, कोई दूसरा नहीं रह जाएगा। उसके लिए तो दो व्यक्तियों के बीच किसी तरह के शब्दों की, शास्त्रों की दीवाल नहीं रह जाएगी। उसके लिए तो कोई मंदिर और मस्जिद नहीं रह जाएगा। क्योंकि उसके लिए तो सारी पृथ्वी ही परमात्मा का मंदिर हो जाएगी। क्योंकि उसके लिए तो सभी के हृदय में उसी की ज्योति जलती दिखाई पड़ने लगेगी।
ये जो धर्मों में बंटे हुए लोग हैं, इन्होंने ही धर्म के जन्म में बाधा दी है। नास्तिकों ने नहीं धर्म को जगत में विकसित होने से रोका है। नास्तिकों ने कुछ भी नहीं किया आज तक। नास्तिकों का कोई संगठन भी नहीं है, यह भी आपको पता होना चाहिए। नास्तिकों का कोई आर्गनाइजेशन भी नहीं है, उनका कोई चर्च और मंदिर भी नहीं है, उनका कोई शास्त्र भी नहीं है, उनका कोई झंडा भी नहीं है। वे इकट्ठे होकर कुछ भी नहीं किए हैं आज तक। नास्तिकों के ऊपर आज तक कोई अपराध भी नहीं है कि उन्होंने आग लगाई हो, मकान जलाए हों, लोगों की हत्या की हो, लोगों को जलाया हो, यह कुछ भी नहीं है। नास्तिकों ने धर्म को नहीं कोई नुकसान पहुंचाया। नुकसान पहुंचाया है उन धार्मिकों ने जो हिंदू हैं, जो मुसलमान हैं, जो जैन हैं, जो ईसाई हैं। क्यों? उन्होंने ये विभाजन करके उस धर्म को आने से रोक दिया, जिसका कभी कोई विभाजन नहीं हो सकता है।
क्या आप सोचते हैं सत्य भी बहुत प्रकार के हो सकते हैं? क्या आप सोचते हैं आत्मा के संबंध में भी बहुत सत्य हो सकते हैं? परमात्मा के संबंध में भी बहुत सत्य हो सकते है? क्या आप सोचते हैं कि हिंदुओं का गणित अलग, मुसलमानों का गणित अलग होगा? होता था पहले, यहीं हिंदुस्तान में जैनियों का गणित अलग होता था, हिंदुओं का अलग होता था। कैसे पागलपन के दिन रहे होंगे! गणित भी अलग-अलग हो सकता है? केमिस्ट्री या फिजिक्स अलग-अलग हो सकती है? ईसाइयों की अलग, मुसलमानों की अलग?
नहीं; जब पदार्थ के संबंध में सत्य अलग-अलग नहीं हो सकते, तो परमात्मा
के संबंध में कैसे हो सकते हैं? जब पदार्थ तक के संबंध में सत्य अलग नहीं हो सकते, तो परमात्मा के संबंध में कैसे अलग हो सकते हैं? निश्चित ही हम पदार्थ के संबंध में तो सत्य की खोज को उपलब्ध हो गए हैं, लेकिन परमात्मा के संबंध में हम केवल विश्वास पर रुके हुए हैं, सत्य की खोज तक नहीं पहुंच पा रहे हैं। इसलिए यह विभाजन है, इसलिए यह भेद है, इसलिए ये संगठन हैं, इसलिए ये संप्रदाय हैं, इसलिए ये बंटे हुए मंदिर हैं। इन सबको जोड़ नहीं लेना है, इन सबको एक साथ ही विदा देनी है। और जिस दिन ये जमीन से चले जाएंगे, उस दिन धर्म के लिए सबसे बड़ा सूर्य उदय होगा। क्योंकि ये जब तक हैं, तब तक सत्य की निष्पक्ष खोज नहीं हो सकती। इन सबके पक्ष हैं, इन सबकी प्रिज्युडिस है। ये सभी चाहते हैं कि हमारा जो पक्ष है वही सत्य सिद्ध हो। और जब तक कोई यह चाहता है कि मेरा पक्ष सत्य सिद्ध हो, तब तक उसे सत्य से कोई प्रेम नहीं है। सत्य से तो प्रेम करने वाला यह कहता है कि मैं अपने पक्ष को छोड़ने को राजी हूं। सत्य कैसा भी हो, मैं अपने पक्ष को छोड़ने को राजी हूं और सत्य को अंगीकार करने को। लेकिन पक्षपाती आदमी कहता हैः मेरा पक्ष ही सत्य है। सत्य हो तो इसी रूप में हो, सत्य हो तो इसी भाषा में हो, सत्य हो तो इन्हीं शास्त्रों के ढांचे में हो।

पिछले महायुद्ध में, दूसरे महायुद्ध में फ्रांस हार रहा था जर्मनी से। तो फ्रांस के एक बहुत बड़े जनरल ने इंग्लैंड के एक बहुत बड़े जनरल से सलाह ली कि क्या मामला है? क्या भूल-चूक हो रही है? उस जनरल ने कहा कि मालूम होता है तुम युद्ध पर तो जाते हो, लेकिन भगवान से प्रार्थना नहीं करते हो। फ्रांसीसी जनरल ने कहा, प्रार्थना तो हम करते हैं, पता नहीं क्या भूल हो रही है कि हमारी प्रार्थना नहीं सुनी जाती, हम हारते चले जा रहे हैं। उस अंग्रेज जनरल ने कहा, किस भाषा में प्रार्थना करते हो? अंग्रेजी में कि फ्रेंच में? क्योंकि हम तो अंग्रेजी में करते हैं। और जहां तक हमारी समझ है, भगवान अंग्रेजी भाषा ही समझता है। तुम फ्रांसीसी में करते होओगे, इसीलिए हारते जा रहे हो।
इन संप्रदायों ने ढांचे बांध रखे हैं भगवान पर भीः वह कौन सी भाषा समझता है; किन शास्त्रों को समझता है, किन शास्त्रों को लिखता है, किनको नहीं लिखता; किस कौम के ऊपर उसकी विशेष कृपा है। इधर भारत के लोग कहते हैं कि उसकी यहीं विशेष कृपा है, और बाकी दुनिया पर उसकी कोई दृष्टि नहीं है। वह इसी भूमि में बार-बार अवतार लेता है, और कहीं अवतार नहीं लेता, यह बड़ी पवित्र भूमि है।
यह पागलपन, कोई भी दुनिया में कहीं भी रहता है, सभी को है कि जिस जमीन
पर वह है वह बड़ी पवित्र है। और इसका जमीन की पवित्रता से कोई संबंध नहीं, हमारे अहंकार की अपवित्रता से संबंध है इस बात का। क्योंकि जहां मैं पैदा हुआ हूं, वह जमीन कहीं अपवित्र हो सकती है? वह तो बिल्कुल पवित्र है, भगवान की विशिष्ट जमीन वही है।
बर्नार्ड शा ने एक बार कहा कि यह बात गलत है कि जमीन सूरज का चक्कर लगाती हो।
अब यह तो विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है। पहले तो लोग मानते थे कि सूरज जमीन का चक्कर लगाता है। लेकिन फिर विज्ञान ने सिद्ध कर दिया कि सूरज नहीं लगाता, जमीन ही चक्कर लगाती है। लेकिन बर्नार्ड शा ने घोषणा कर दी कि यह बात गलत है। जमीन चक्कर नहीं लगाती सूरज का, सूरज ही लगाता होगा।
किसी ने पूछा कि इसका कारण क्या है? वजह क्या है जो आप यह घोषणा करते हैं?
बर्नार्ड शा ने क्या कहा, पता है? उसने बड़ी गहरी मजाक की। उसने कहा कि इसलिए मैं यह कहता हूं कि जमीन सूरज का चक्कर नहीं लगाती होगी, क्योंकि मैं, बर्नार्ड शा, जमीन पर हूं। इसलिए सूरज को ही चक्कर लगाना चाहिए। यह असंभव है कि जमीन चक्कर लगाए! क्योंकि मैं, बर्नार्ड शा, जमीन पर हूं! बर्नार्ड शा जमीन पर है इसलिए कैसे जमीन सूरज का चक्कर लगा सकती है!
तो मैं जिस जमीन पर पैदा हुआ हूं, वह कहीं अपवित्र हो सकती है? नहीं;
वह पवित्र भूमि है। वहीं भगवान अवतार लेते रहे हैं, वही भूमि जगतगुरु है, वही भूमि सब कुछ है। बाकी सारी दुनिया कुछ भी नहीं है। ये सारे के सारे पागलपन अहंकार से पैदा होते हैं, किसी समझ से पैदा नहीं होते। यह हमारा अहंकार है। और इन धर्मों के नाम पर भी विभिन्न जातियों के अहंकार केंद्रित हो गए हैं। ये तो विदा होने चाहिए। धर्म का अहंकार से क्या संबंध है? कोई भी तो नहीं। और अगर कोई भी है तो वही जो एक शत्रु का संबंध होता है। जरूर धर्म का जन्म हो सकता है, लेकिन उसके लिए जाना पड़ेगा धर्मों को। रिलीजन आ सकता है, अगर रिलीजंस चले जाएं। और जो भी आदमी धार्मिक है, उसे सहायता करनी चाहिए कि ये चले जाएं, ये विदा हो जाएं, इनका जमीन पर कोई चिह्न न रह जाए। इनके चिह्न भी, इनके निशान भी दुखद हैं, दुर्भाग्यपूर्ण हैं।
इसलिए मैं तो नहीं कहता कि इनको जोड़-जाड़ लें। जोड़ने से तो कुछ हल नहीं होता, कोई हल नहीं होता। सत्य को देखें, खोजें; ये विलीन हो जाएंगे, ये विलीन हो जाने ही चाहिए।

पूछा है कि मैं ऐसा तो नहीं कहना चाहता हूं कि हमें उपनिषद या गीता नहीं पढ़नी चाहिए?

मैं क्यों कहूंगा कि गीता और उपनिषद नहीं पढ़नी चाहिए! मैं तो यह भी न कहूंगा कि जो ऐसी किताबें हैं जो वर्जित हैं, वे भी न पढ़नी चाहिए। मैं तो कहूंगा, वे भी पढ़नी चाहिए। पढ़ने से मेरा क्या विरोध हो सकता है? सीखने से मेरा क्या विरोध हो सकता है?
मेरा कहना तो केवल इतना है कि किताब की भांति पढ़नी चाहिए, ग्रंथ और शास्त्र की भांति नहीं। कोई सैक्रेड ग्रंथ, कोई पवित्र ग्रंथ की भांति नहीं पढ़नी चाहिए; किताब की भांति पढ़नी चाहिए। अनुभव हैं लोगों के, समझने चाहिए। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका अनुभव आपका अनुभव नहीं बन जाता है पढ़ने से। उनकी प्रतीति, उनका ज्ञान आपका ज्ञान नहीं बन जाता है पढ़ने से। यह ध्यान रहे तो पढ़ने में क्या बुराई है? जरूर पढ़नी चाहिए। हित है। मनुष्य-जाति की स्मृतियां हैं, उन्हें जरूर देखनी चाहिए। लेकिन अत्यंत निष्पक्ष भाव से।
एक हिंदू कुरान को थोड़े ही ठीक से पढ़ पाता है। एक मुसलमान गीता को थोड़े ही ठीक से पढ़ पाता है। नहीं पढ़ सकता! जब तक एक किताब किसी की नजर में पवित्र है, तब तक वह दूसरी किताबों को ठीक से कैसे पढ़ेगा? वे अपवित्र हो गईं।
एक मुसलमान खलीफा ने अलेक्जेंडेरिया पर हमला किया। वहां उस जमाने की सबसे बड़ी लाइब्रेरी थी। इतनी बड़ी लाइब्रेरी जमीन पर और कहीं नहीं थी। शायद उसके बाद भी इतनी बड़ी लाइब्रेरी फिर कोई नहीं बन सकी। बड़ी इतनी थी कि उसमें आग लगा दी तो छह महीने तक आग नहीं बुझाई जा सकी थी। छह महीने तक आग जली। उसमें करोड़ों ग्रंथ थे हस्तलिखित। सारी दुनिया से ग्रंथ इकट्ठे किए थे, अदभुत था वह संग्रहालय। लेकिन खलीफा उमर ने अलेक्जेंडेरिया जीता तो उसने पहला काम यह किया कि एक हाथ में मशाल लेकर और एक हाथ में कुरान लेकर वह लाइब्रेरी के दरवाजे पर पहुंच गया। और उसने लाइब्रेरी के अध्यक्ष को कहा कि मित्र, एक प्रश्न का उत्तर दे दो। यहां जो इतनी किताबें हैं, इन किताबों में क्या वही बात लिखी है जो कुरान में लिखी है? अगर वही बात लिखी है तो इतनी किताबों की कोई भी जरूरत नहीं है, कुरान काफी है। और यह भी हो सकता है कि तुम कहो कि इनमें ऐसी बातें हैं इन किताबों में जो कुरान में नहीं हैं, तब मैं कहूंगा कि तब तो इनकी कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि ये किताबें जरूर ही गलत होंगी। क्योंकि जो भी जानने जैसा है, उपयोगी है, वह कुरान में सब है। उसके अतिरिक्त कुछ भी और हितकर नहीं है। दोनों हालत में मैं इस लाइब्रेरी को जलाने के लिए आ गया हूं।
दो ही उत्तर हो सकते थे। दो ही उत्तर हो सकते थे कि या तो इन किताबों में वही है जो कुरान में है या इन किताबों में वह भी है जो कुरान में नहीं है। दोनों हालत में वह जलाने को तैयार हो गया और उसने आग लगा दी। यह आदमी कुरान को पवित्र मानता था, इसके लिए सारी किताबें अपवित्र हो गई थीं। और मेरा कहना यह है कि ऐसा अंधा आदमी कुरान को भी क्या समझ पाया होगा? ऐसा अंधा आदमी कुरान को भी नहीं समझ पाया होगा। अंधा आदमी तो कुछ भी नहीं समझ सकता।
तो जब भी किसी ग्रंथ के प्रति तुम अंधे हो, मैं अंधा हूं, तो फिर मैं उसे नहीं समझ पाऊंगा। अंधापन दो प्रकार का हो सकता हैः या तो तुम अंधी श्रद्धा से किसी ग्रंथ के पास जाओ और समझो कि यह भगवान की किताब है और इसमें जो कुछ लिखा है वह सत्य है; या अंधापन हो सकता है नास्तिक का, कि तुम किताब के प्रति घृणा से और द्वेष से भरे हुए जाओ।
नहीं; किताब के प्रति भी वैसे ही निष्पक्ष जाना चाहिए जैसे हम जीवन के प्रति जाते हैं। समझना चाहिए। जो मेरा कहना है वह यह नहीं है कि किताबें मत पढ़ो। मेरा कहना यह है कि किसी भी किताब से जो पढ़ लिया है, वह मेरे लिए सत्य नहीं हो सकता, आपके लिए सत्य नहीं हो सकता। सत्य की खोज तो स्वयं करनी होगी। और किताब के आधार पर जो सत्य की खोज करता है वह भी भटक जाएगा। वह भटक जाएगा इसलिए कि किताब जिसने लिखी है, जब तक ठीक उसके जैसी मेरी चेतना न हो, तब तक उस किताब को भी पूरी तरह समझा नहीं जा सकता।
कृष्ण की गीता पर कोई एक हजार टीकाएं लिखी गई हैं। अब या तो कृष्ण का दिमाग खराब रहा होगा कि उनके एक हजार अर्थ रहे हों गीता के कहने में, एक हजार अर्थ रहे हों, या तो उनका दिमाग खराब रहा हो और या फिर ये अर्थ लिखने

वालों के दिमाग से निकले हैं, कृष्ण के नहीं होंगे। एक हजार टीकाएं हैं! और टीकाएं बढ़ती ही चली जाती हैं। क्योंकि जिसके दिमाग में भी धर्म का फितूर सवार होता है वह गीता पर जरूर एक टीका लिख देता है, वे टीकाएं बढ़ती चली जाती हैं। ये टीकाएं किसके अर्थ हैं? ये कृष्ण के अर्थ हो सकते हैं? हजार अर्थ! ये लिखने वालों के अर्थ हैं।
तो जब आप गीता पढ़ेंगे तो इस ख्याल में मत रहना कि आपने कृष्ण की गीता पढ़ी, आप अपनी ही गीता पढ़ रहे हैं। अर्थ आपका होगा। शब्द कृष्ण के होंगे, अर्थ आपका होगा। और उस अर्थ को लेकर जब आप खोज में चले जाएंगे, आप कहीं भी नहीं पहुंचेंगे, अपने ही इर्द-गिर्द चक्कर काटेंगे, कहीं भी जा नहीं सकते हैं। क्योंकि अर्थ तो हमेशा अपना होता है।
मैं यहां बोल रहा हूं। तो मैं इस भ्रम में थोड़े ही हूं कि मैं जो बोल रहा हूं वही सब लोग सुन रहे होंगे। यहां जितने लोग हैं उतनी बातें सुनी जा रही हैं। बोलने वाला एक है, सुनने वाले बहुत हैं। जो सुनने वाले हैं वे अपने-अपने ढंग से सुन रहे हैं। यहां कोई हिंदू होगा तो एक ढंग से सुन रहा है, मुसलमान होगा तो दूसरे ढंग से सुन रहा है, ईसाई होगा तो तीसरे ढंग से सुन रहा है। बूढ़ा आदमी और ढंग से सुन रहा है, जवान आदमी और, बच्चा और, सब लोग अपने ढंग से सुन रहे हैं।
जब हम सुनते हैं तो हमारा अर्थ संयुक्त हो जाता है; जब हम पढ़ते हैं तो हमारा अर्थ संयुक्त हो जाता है। लेकिन हम कहते हैं कि यह कृष्ण का अर्थ है, यह राम का, यह बुद्ध का, यह महावीर का। और फिर इस अर्थ को, अपने ही अर्थ को, उनके ऊपर थोप कर हम खोज में लग जाते हैं। वह खोज बिल्कुल अंधी हो गई। समझने की शांति से, मौन से कोशिश करने की जरूरत तो है, लेकिन पकड़ लेने की जरूरत बिल्कुल भी नहीं है। जो पकड़ लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है।
तो मैंने जो कहा, गीता को पकड़ना मत, कुरान को पकड़ना मत। पढ़ने के लिए किसने मना किया है? लेकिन पाठ करने को मैं जरूर मना करता हूं। पढ़ने तक तो मुझे लगता है कि कोई बात है। लेकिन पाठ करने को जरूर मना करता हूं। क्योंकि जो मस्तिष्क किसी चीज को रिपीट करना सीख जाता है बार-बार, वह जड़ हो जाता है। उसकी चेतना खो जाती है, उसकी संवेदनशीलता, सेंसिटिविटी खो जाती है। क्योंकि एक ही बात को बार-बार दोहराने से मस्तिष्क में बोर्डम पैदा होती है, ऊब पैदा होती है। और धीरे-धीरे आदत का हिस्सा हो जाती है पुनरुक्ति। फिर उसमें कोई अर्थ भी नहीं रह जाता, फिर मशीन की तरह आदमी उसे रोज-रोज दोहराए चला जाता है।
तो पाठ जरूर खतरनाक है। तोतों के लिए तो ठीक है, मनुष्यों के लिए खतरनाक है। तोते पाठ करें, यह तो ठीक है; लेकिन आदमी पाठ करें, यह बिल्कुल ठीक नहीं है। किसी चीज को समझें, समझ लें, पूरी चेतना से समझें, समग्र ध्यान से समझें, ठीक है। लेकिन उसका रोज-रोज पाठ करने लगें, रटे हुए मशीन की तरह, यह खतरनाक है, इससे मस्तिष्क पर तो नुकसान पहुंचता है। कोई भी चीज को आप बार-बार दोहराएंगे तो मस्तिष्क की जो सचेतना है वह क्षीण होती है और एक तरह की तंद्रा उत्पन्न हो जाती है।
एक मां को अपने बच्चे को सुलाना होता है, वह कहने लगती हैः मुन्ना सो जा, मुन्ना सो जा, मुन्ना सो जा। वह दस-पांच दफा यह दोहराने लगती है, मुन्ना थोड़ी देर में सो जाता है। मां सोचती होगी कि उनके बहुत मधुर संगीत के कारण सो गया है, तो गलती है। एक ही चीज को बार-बार दोहराने से बोर्डम पैदा हो गई, मुन्ना जो हैं बोर हो गए, घबड़ा गए, ऊब गए। उस ऊब की वजह से वे सो गए, उनको जागने का कोई कारण नहीं रहा। जागने के लिए कुछ वजह होनी चाहिए। कोई वजह न रही, आपने बोर्डम पैदा कर दी, ऊब पैदा कर दी, घबड़ाहट पैदा कर दी। छोटा सा बच्चा है, वह घबड़ा कर सो गया। लेकिन मां यही सोचती होगी कि बहुत मधुर संगीत के कारण मुन्ना सो गए हैं।
कोई भी आदमी सो सकता है। धार्मिक सभाओं में लोग सोए रहते हैं, उसका कुल कारण इतना है, उन्हीं बातों को वे हजार दफे सुन लिए हैं, इसलिए नींद आनी स्वाभाविक है। इसमें कोई का कसूर नहीं है, धार्मिक सभाओं में सोने वाले लोगों का जरा भी कसूर नहीं है। वे बातें वे बहुत दफे सुन चुके हैं, राम की कथा बहुत दफे सुन चुके हैं, अब उनको पूरी तरह पता है।

एक फिल्म को आप एक दफा देखें, समझ में आता है। दूसरी दफा देखें, तीसरी दफा देखें, दस दफा देखें, फिर क्या होगा? आप बराबर पूरी नींद लेंगे उसी फिल्म में जिसे आप बहुत मजे से देखे थे पहली दफा, दसवीं दफा देखने पर आप नींद लेंगे। और अगर आपको हजार, पांच सौ दफा एक ही फिल्म दिखाई जाए, तो फिर आपको पागलखाने में भर्ती करना पड़ेगा, आपका इलाज करवाना पड़ेगा। इलाज करवाना पड़ेगा, दिमाग खराब हो जाएगा, क्योंकि मस्तिष्क इतनी ज्यादा ऊब नहीं सह सकता।
तो यह जो पाठ करने की वृत्ति है--कि रोज उठे हैं सुबह से और किसी किताब
का पाठ किए चले जा रहे हैं एक मुर्दा मशीन की भांति--यह खतरनाक है, यह मस्तिष्क के लिए हितकर नहीं है। पढ़िए, समझिए, लेकिन यह पाठ करने की बात बिल्कुल ही हितकर नहीं है। इससे आपके मस्तिष्क की चेतना खो जाएगी।
जो-जो कौमें चीजों को दोहराने की आदी हो जाती हैं, उनके जीवन में मौलिक चिंतन का जन्म असंभव हो जाता है, ओरिजिनल थिंकिंग बंद हो जाती है। आज दो-तीन हजार वर्ष से हम अपने मुल्क में कुछ भी मौलिक रूप से नहीं सोच पाए। हम टीका करते हैं पुरानी किताबों पर, पुरानी किताबों को बार-बार पढ़ते हैं। लेकिन हमारे मस्तिष्क ने वह ऊर्जा खो दी है, जिससे नवीन का जन्म होता है, मौलिक का जन्म होता है। वह हमने खो दिया, वह हमने खो दिया इस पाठ की वृत्ति के कारण। और अभी भी यह पाठ की वृत्ति जारी है।
तो मैं कहता हूं, पढ़ें, जरूर गीता पढ़ें, कुरान पढ़ें। और वही क्यों, दुनिया में और बहुत साहित्य है, वह सब पढ़ें। कहानियां हैं, उपन्यास हैं, वे भी पढ़ें। उन सब में भी मनुष्य-जाति की बहुत सी, बहुत सी अनुभूतियां और अनुभव इकट्ठे हैं। लेकिन पढ़ कर उनको याद करके इस भूल में न पड़ जाएं कि वे आपके अनुभव हैं। एक बात, वह इनफार्मेशन है, नॉलेज नहीं, इस बात को जानें। सूचना है, ज्ञान नहीं।
और दूसरी बात, उसको पुनरुक्त करने की प्रवृत्ति में न पड़ जाएं, अन्यथा आपका मस्तिष्क खुद के सोच-विचार को हमेशा के लिए खो देगा, हमेशा के लिए खो देगा। रिपीटीटिव माइंड जो है क्रिएटिव नहीं रह जाता, दोहराने वाला मन सृजनात्मक नहीं रह जाता, वह सारी सृजन की शक्ति खो देता है। किसी भी आदमी को कोई बात दोहराने के लिए कहो, उसकी सृजनात्मकता खत्म हो जाती है, उसकी क्रिएटिविटी खत्म हो जाती है।
चीन में वे आदमियों को सजाएं देते थे। तो चीन के लोग बड़े होशियार हैं, बहुत खतरनाक जघन्य अपराधी को वे फांसी की सजा नहीं देते थे आज से हजार साल पहले। क्योंकि वे कहते थे कि किसी को मार डालना कोई बहुत बड़ा कष्ट देना नहीं है। मर गया, एक सेकेंड में मर जाता है आदमी, तो यह कोई बड़ा कष्ट देना नहीं है। तो उसको जिंदा रखते थे और नई-नई तरकीबें निकालते थे उसको कष्ट देने की। उसमें एक तरकीब यह भी थी कि उस आदमी के पास एक ही बात को बार-बार दोहराना। कष्ट देने की तरकीब थी! एक ही बात को बार-बार दोहराना, सुबह से शाम तक एक ही बात बार-बार दोहराना। तो घबड़ाहट पैदा हो जाएगी। कोई भी ऐसी स्थिति पैदा करना जिसमें एक ही क्रम बार-बार दोहरता जाए।
उसे एक कोठरी में खड़ा कर देते थे, ऊपर से छेद कर देते थे, उस छेद में से पानी टपकाते थे उसकी कोठरी में--टप, टप, टप। अब यह मोनोटोनस चौबीस घंटे टप-टप उसकी खोपड़ी पर होता रहता था। तीन-चार दिन में आदमी पागल हो जाता था, चिल्लाने लगता था, हाथ-पैर ठोकने लगता था, दीवाल से सिर फोड़ने लगता था कि यह क्या कर रहे हैं? क्योंकि वह टप-टप जारी है चौबीस घंटे। राम-राम-राम-राम जैसा जपते हैं वैसे ही टप-टप-टप-टप जारी है।
वह सिर को खोखला कर देगा, वह मस्तिष्क को क्षीण कर देगा, वह मस्तिष्क
की सारी सोचने की क्षमता क्षीण कर देगा, वह मस्तिष्क को जड़ कर देगा। और जितना मस्तिष्क जड़ हो जाएगा उतना ही आपको लगेगा कि बड़ी शांति है, जैसे मरघट पर शांति होती है वैसी शांति लगेगी। क्योंकि बोध चाहिए अशांत होने के लिए भी, चिंतित होने के लिए भी मस्तिष्क चाहिए, अशांत होने के लिए भी मस्तिष्क चाहिए। अगर जड़ हो जाए मन तो न चिंतित होता है न अशांत। लेकिन जड़ता कोई शांति नहीं है, जड़ता तो मृत्यु है।
तो ये पाठ, पुनरुक्ति, एक-एक जाप, ये सारे रिपीटीटिव हैं, ये सब पुनर्वृत्यात्मक हैं, दोहराने वाली प्रक्रियाएं हैं। इनसे मस्तिष्क का

कोई विकास नहीं होता और न चेतना जागती है और न नये आरोहण करती है और न जीवन के नये शिखरों को जानने में समर्थ होती है, बस जड़ हो जाती है। जड़ता अगर शांति हो तो ये सब उपयोग किए जा सकते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या परमात्मा और सत्य सभी को मिल सकता है? क्योंकि सभी में तो बुद्धि अलग-अलग है। और एक दूसरा प्रश्न किसी ने पूछा है कि कुछ लोगों में तो बुद्धि बिल्कुल ही नहीं है, उनको भी परमात्मा मिल सकता है? और लोग साधारण हैं, कुछ लोग असाधारण हैं, कुछ बुद्धिमान हैं, कुछ कम बुद्धिमान हैं, तो क्या सभी को परमात्मा मिल सकता है?

निश्चित ही, सभी को परमात्मा मिल सकता है। क्यों? परमात्मा कोई ऐसी बात नहीं है जैसे काव्य, गणित, पेंटिंग या कुछ और। एक आदमी टेलेंटेड है, प्रतिभाशाली है, चित्र बनाता है; दूसरा आदमी प्रतिभाशाली है गणित में; तीसरा आदमी प्रतिभाशाली है काव्य में; चौथा आदमी विज्ञान में; पांचवां आदमी इंजीनियरिंग में; कोई और किसी दिशा में। ये सारी हमारी विशिष्ट-विशिष्ट प्रतिभाएं हैं। लेकिन परमात्मा कोई प्रतिभा की बात नहीं है, परमात्मा तो वैसा है--हमारा स्वरूप। जैसे हम सब श्वास लेते हैं और कोई यह नहीं कहता कि क्या सभी लोगों को श्वास लेना संभव है? बुद्धिमान भी, गैर-बुद्धिमान भी श्वास ले रहे हैं और बुद्धिमान भी श्वास ले रहे हैं, यह कैसे संभव है? और बुद्धिमान भी प्रेम कर रहे हैं और गैर-बुद्धिमान भी प्रेम कर रहे हैं, यह कैसे संभव है?
जैसे प्रेम सबके प्राणों का स्वर है, जैसे श्वास सबके जीवन का अंग है,
तो ये तो ऊपरी चीजें हैं, परमात्मा तो सबके जीवन का केंद्र है। हम उसे जानें या न जानें, लेकिन वह है। हम सबके भीतर जो जीवन है वही तो परमात्मा है। तो वह तो सबको उपलब्ध है, पहली बात। सवाल रह गयाः क्या उसे सभी जान सकते हैं?
मैं कहता हूं, उसे जान सकते हैं। कम से कम एक बात तो ऐसी रहने दें जिसमें कोई वर्ग न हो, जिसमें शूद्र और ब्राह्मण न हों, जिसमें चूजन फ्यू, कुछ चुने हुए लोग और कुछ दरिद्र न हों, कुछ संपत्तिशाली न हों और कोई गरीब न हों। कम से कम एक चीज तो क्लासलेस रहने दें। और सब जगह तो वर्ग हैं, क्लासेस हैं, कम से कम परमात्मा को तो वर्ग-विहीन, उसको तो कम से कम वर्ग-विहीन रहने दें। और मुझे ऐसा लगता है, कम से कम वही तो एक सत्य है जो वर्ग-विहीन है; जिसमें प्रतिभा का सवाल नहीं है बहुत; जिसमें आप बड़े इंजीनियर हैं, यह सवाल नहीं है; कि आप बड़े गणितज्ञ हैं; यह सवाल नहीं है।
नहीं, आप जीवित हैं और इस जीवन में डूबने को उत्सुक हैं, इस जीवन को जानने की प्यास है, इतना काफी है, इतना काफी है।
परमात्मा तो उपलब्ध है, प्यास चाहिए, तो अभी, इसी क्षण किसी को भी मिल जाए। परमात्मा कोई विशिष्ट प्रतिभा की बात नहीं है; सभी को उपलब्ध हो सकता है। बल्कि अक्सर तो, जो लोग किसी भांति की प्रतिभा के धनी होते हैं, उनको परमात्मा पाने में कठिनाई हो जाती है। क्योंकि वे अपनी प्रतिभा को ही अपना परमात्मा बना लेते हैं, क्योंकि वे अपनी प्रतिभा के इर्द-गिर्द ही जीने लगते हैं और उनके अहंकार की तुष्टि उस प्रतिभा के कारण ही होने लगती है। इसलिए अक्सर उनकी तो प्यास ही जीवन के मूल को खोजने की नहीं हो पाती; या होती भी है तो बहुत धीमी हो पाती है।
परमात्मा कोई विशिष्ट दिशा नहीं है, जीवन का आधार है; कोई विशिष्ट डायरेक्शन नहीं है, समस्त जीवन का आधार है। हम सब उसमें खड़े हैं। छोटी मछलियां हैं सागर में और बड़ी मछलियां हैं; और बीमार और स्वस्थ; और हो सकता है बुद्धिमान मछलियां होंगी और ईडियट मछलियां होंगी। सब तरह की मछलियां हैं, लेकिन सब सागर में हैं। सब उस सागर के पानी में जी रही हैं और सब उस सागर के पानी में जीने की अधिकारी हैं।
ऐसे ही हम सब जिसमें जी रहे हैं वही परमात्मा है। हम उसमें ही श्वास लेते, उसमें ही उठते-बैठते, सोते और जागते, उसमें ही जन्मते और उसमें ही मरते हैं। हम उसमें हैं। परमात्मा मेरे लिए कोई आकाश में बैठा हुआ व्यक्ति नहीं है, परमात्मा है टोटल एक्झिस्टेंस। यह जो सारा का सारा सब

कुछ है, यह सब कुछ का इकट्ठा जोड़ ही परमात्मा है, उसमें हम सब हैं। अब इस परमात्मा को हम क्या अनुभव कर सकते हैं सभी?
सभी अनुभव कर सकते हैं, प्रत्येक अनुभव कर सकता है। प्यास चाहिए! खोज
की दृष्टि चाहिए! और प्यास भी थोड़ी-बहुत मात्रा में सबके भीतर है। जीवन में इतना दुख है, इतनी अशांति है, इतनी पीड़ा है, क्यों? इसीलिए कि जीवन में हम जो पाने को हैं, वह हमें नहीं उपलब्ध होता है। और जो हमें उपलब्ध होता है, वह उपलब्ध होते से ही व्यर्थ हो जाता है, उससे कुछ उपलब्ध नहीं हो पाता।
परमात्मा की खोज चल रही है जाने-अनजाने। परमात्मा का अर्थ हैः वह तृप्ति का बिंदु जिसके आगे खोज बंद हो जाती है, जिसके आगे कोई खोज नहीं रह जाती, जिसके आगे कोई चाह नहीं रह जाती। वह चाह की अंतिम स्थिति जहां चाह समाप्त हो जाती है। उसकी तो हम सभी लोग खोज में हैं। उसको कोई परमात्मा कहता है, कोई कुछ और कहता होगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, नाम देने से कोई भेद नहीं पड़ता है। कोई आनंद कहता होगा, कोई मोक्ष कहता होगा, कोई जीवन कहता होगा, कोई सत्य कहता होगा, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, लेकिन हम एक ऐसी स्थिति की खोज में हैं, जहां फिर और कोई खोज न रह जाए। एक ऐसे बिंदु पर पहुंच जाते हैं, पहुंच जाना चाहते हैं, जहां फिर आगे कोई चाह न रह जाए। वही बिंदु तो परमात्मा है।
सबके भीतर खोज भी है, चाह भी है। अगर जीवन पर थोड़े से भी ठीक प्रयोग करने को कोई राजी हो, जीवन को समझने को, तो निश्चित ही कोई भी पहुंच सकता है, कोई भी! किसी मनुष्य में ऐसी अपात्रता नहीं है कि वह परमात्मा को न पा सके और कोई मनुष्य विशेष रूप से पात्र नहीं है कि वह पा ले।
तिब्बत में एक फकीर था, कोई नब्बे वर्ष का हो गया था। अनेक बार लोग आए
और उन्होंने प्रार्थना की कि अब तुम्हारा अंतिम समय आया जा रहा है जीवन का, तुमने जो जाना हो वह बता दो। लेकिन वह फकीर कहता था कि कोई पात्र मिले तो मैं बताऊं, कोई पात्र हो तो लाओ! और जिस आदमी को भी लाते थे उसी को वह अपात्र कह देता था कि यह तो अपात्र है। कोई कारण बता देता था, कुछ बात पूछता था और कह देता था कि यह अपात्र है। वह मरने को हुआ, उसने नीचे गांव में खबर भेजी कि जिसको भी अब जानना हो वह जल्दी आ जाए, क्योंकि अब मैं बहुत जल्दी मरने को हूं।

एक आदमी ने गांव में जाकर खबर की, कोई बीस-पच्चीस लोग आ गए। वे डरे हुए
थे मन में, क्योंकि वह तो अपात्र कह देगा। उसने आते से ही पहले व्यक्ति से पूछा कि तुम किसलिए परमात्मा को खोजना चाहते हो?
उसने कहा कि मेरी स्त्री मर गई है, मैं बहुत दुखी हूं, सोचता हूं शायद परमात्मा के मिलने से थोड़ी शांति मिल जाए।
दूसरे लोगों ने सोचा कि यह तो निश्चित अपात्र है, इसको परमात्मा से क्या मतलब? दूसरे से पूछा, उसने कहा कि मेरी नौकरी चली गई है और मैं बहुत परेशान हूं, तो सोचता हूं कि परमात्मा की दिशा में थोड़ा मन लगे तो चिंता कम हो जाए।
ऐसा एक-एक आदमी उत्तर देता गया और बाकी लोग सोचते गए कि यह तो अपात्र है, यह क्या बातें कह रहा है! आखिरी व्यक्ति ने कहा कि मुझे तो, न तो मेरी स्त्री मरी है, क्योंकि मेरा अभी विवाह ही नहीं हुआ। और न मेरी नौकरी छूटी है, क्योंकि मेरी नौकरी ही नहीं लगी।
तो तुम यहां किसलिए आए हो?
तो उसने कहा कि मैं तो, ये बीस-पच्चीस लोग जा रहे हैं तो किसलिए जा रहे हैं, इसी ख्याल से आ गया हूं।
यहां भी इसी तरह के सब लोग इकट्ठे हुए होंगे। कोई इतने लोग जा रहे हैं
तो उसने कहा कि मैंने सोचा कि चलो, मैं भी चला चलूं, क्या होता है वहां? क्या मामला है यह?
वे सभी अपात्र मालूम होते थे, लेकिन उस बूढ़े साधु ने कहा कि मित्रो, मैं तुम सबको स्वीकार करता हूं, और जो मुझे कहना है वह मैं तुमसे कहूंगा। पर वे सभी बोले कि हम अपात्र तो नहीं हैं?

उस फकीर ने कहा कि असल में मैं खुद अपात्र था इतने दिन तक, इसलिए अपने
को बचाने के लिए मैं कह देता था कि कोई पात्र नहीं है। मैं खुद ही नहीं जानता था। अब जब कि मुझे दिखाई पड़ा है, अब जब कि मैंने जाना है, अब जब कि मुझे प्रतीत हुआ है, अब जब कि मेरे सामने कोई अनुभव प्रकट हो गया है, तो अब मैं सभी से कह देना चाहता हूं। और तुम्हारी कोई कमजोरी बाधा न बनेगी। आदमी कमजोर है, अपात्र नहीं। तुम्हारी कोई कमजोरी बाधा न बनेगी; आदमी कमजोर है, अपात्र नहीं। अब मैं तुमसे कहूंगा। अब मैं तुम्हें बताऊंगा। अब मैं तुम्हें वह दे जाना चाहता हूं, छोड़ जाना चाहता हूं, जो मुझे अहसास हुआ है। हो सकता है, हो सकता है तुम में से किसी की बंद आंख के लिए खुलने का सहारा बने, तुम्हारी बंद आंख पर चोट पड़ जाए, आघात हो जाए। हो सकता है, वह मुझे पता नहीं, लेकिन अब मैं कह देना चाहता हूं, ये जो लोग मनुष्य में विभाजन करते रहे हैं कि यह पात्र है, यह अपात्र है, असल में वे खुद ही पात्र न रहे होंगे।
कोई विभाजन नहीं है। आदमी कमजोर जरूर है, हजार तरह की कमजोरियां हैं। लेकिन कितनी ही कमजोरियां हों, हर आदमी के भीतर चिनगारी मौजूद है। कमजोरियों ने राख ऊपर से ढांक दी होगी, लेकिन हवा का एक झोंका राख को ले जाएगा और चिनगारी वापस निकल आ सकती है। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसके भीतर राख इतनी इकट्ठी हो गई हो कि चिनगारी बिल्कुल समाप्त हो जाए। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो परमात्मा को पाने के लिए बिल्कुल ही अक्षम हो, अपात्र हो। प्रत्येक के भीतर वह ज्योति है, खोज हो सकती है।
और यह कौन पूछा है कि जिसके पास बुद्धि नहीं है क्या वह भी परमात्मा
को पा सकता है? अगर वे खुद अपने ही संबंध में पूछ रहे हैं, तब तो उनके पास काफी बुद्धि है। इतना पूछ सकते हैं, तो खोज भी हो सकती है। रह गई दूसरे के संबंध में पूछने की बात, तो दूसरे के संबंध में कभी नहीं पूछना चाहिए; क्योंकि दूसरे में किसी को भी कभी बुद्धि नहीं दिखाई पड़ती, अपने में ही दिखाई पड़ती है। हम सब कुछ इस भांति के बने हैं कि अपने में ही दिखाई पड़ती है।
एक अंतिम छोटी सी बात इस संबंध में कहूं, फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।
गांधी इंग्लैंड में थे। उनके साथ के अंतेवासियों में से कोई एक बर्नार्ड शा को मिलने गया और बर्नार्ड शा को उसने पूछा, गांधी हैं महात्मा, आप भी उनको महात्मा मानते हैं या नहीं? बर्नार्ड शा ने कहा, महात्मा जरूर मानता हूं, लेकिन नंबर दो। नंबर एक तो मैं हूं! और दो ही महात्मा हैं जमीन पर, एक मैं और एक यह गांधी। लेकिन गांधी हैं नंबर दो और मैं हूं नंबर एक! बस इतना ही फर्क है, और तो कोई ज्यादा फर्क नहीं है।
वे मित्र बहुत चिंतित हुए होंगे। उन्होंने गांधी को लौट कर कहा कि बर्नार्ड शा तो बहुत अहंकारी मालूम होता है। यह तो हद की बात कही, जो कि कोई भी नहीं कहता। कभी कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि इस तरह की बात कहेगा।
उसने कहा कि नंबर दो आप हैं और नंबर एक मैं हूं।
गांधी ने कहा, अहंकारी कहना कठिन है, आदमी सीधा और सरल मालूम होता है।
जो सच्ची-सच्ची बात उसके मन को लगी उसने कह दी है। सभी को ऐसा लगता है कि नंबर एक हम हैं, बाकी सब नंबर दो हैं। सभी को लगता है।
अरब में ऐसी कहावत है कि भगवान जब लोगों को बना कर दुनिया में भेजता है, एक आदमी को गढ़ कर जब धक्का देता है कि जाओ दुनिया में, तो जाते वक्त हाथ पकड़ लेता है और कान में कहता है कि एक बात तुम्हें बता दूंः मैंने बहुत लोग बनाए, लेकिन तुमसे अच्छा आदमी कोई भी नहीं बनाया। सभी से कह देता है। एक मजाक है जो चल रहा है और भगवान मजाक किए जा रहा है और आदमी समझ नहीं रहा है। वह हरेक से कह देता है कि तुमसे अच्छा आदमी मैंने बनाया ही नहीं।
तो अपने संबंध में पूछा हो तब तो ठीक, किसी दूसरे के संबंध में भूल कर
मत पूछना। क्योंकि हो सकता है दूसरा भी आपके संबंध में पूछना चाहता हो। न पूछ पा रहा हो, यह दूसरी बात है। यह कोई सवाल नहीं है, यह कोई भी सवाल नहीं है। जिसके मन में भी इतना सा भी प्रश्न उठता है कि मैं दुखी हूं, जिसके मन में इतना सा भी बोध होता है कि मुझे दुख से ऊपर उठना है, जिसके मन में इतना भी प्रश्न उठता है कि यह जीवन क्या है, उसके भीतर काफी बुद्धि है, वह काफी

खोज सकता है, काफी यात्रा कर सकता है। बुद्धि हम सब के भीतर सोई हुई भी है, थोड़ा श्रम करें, संकल्प करें तो वह जग भी सकती है, विकसित भी हो सकती है। अब कुछ और प्रश्न बच गए हैं, वह मैं कल दोपहर चर्चा करूंगा। अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो दो बातें रात्रि के ध्यान के संबंध में समझ लें।
रात्रि के ध्यान के संबंध में, रात्रि का ध्यान सोते समय करने के लिए है। सुबह का ध्यान जागने के बाद करने के लिए है। तो रात्रि का ध्यान ऐसा है कि उसे करें और करते-करते ही चुपचाप बाद में सो जाएं। बड़ी उपादेयता है उसकी कि अगर ठीक शांत और मौन स्थिति में सो जाएं तो जिस स्थिति में हम सोते हैं, रात भर उसकी प्रतिध्वनि निद्रा में हमारे साथ बनी रहती है। जब हम क्रोध में सो जाते हैं तो रात भर क्रोध हमारा पीछा करता है; और जब हम किसी वेग को दबा कर सो जाते हैं तो रात भर सपने में उस वेग को देखते हैं। दिन में कोई आदमी उपवास करके सो जाता है, तो खाने का चिंतन करते-करते सो जाता है तो रात भर भोजन ही भोजन और न मालूम कहां-कहां आमंत्रण और न मालूम क्या-क्या होता है। सोते क्षण हमारी चेतना जिस बिंदु पर होती है, करीब-करीब रात भर उसी बिंदु के आसपास भ्रमण करती है। और सुबह जब हम उठते हैं, तो उठते से जो पहला ख्याल होता है वह वही होता है अनिवार्यतः, जो रात को सोते वक्त अंतिम था। जो रात को सोते वक्त अंतिम होती है भावना, धारणा, स्थिति, करीब-करीब सोते वक्त की वह स्थिति जागते वक्त पहली स्थिति होती है। क्योंकि वहीं से चेतना अचेतना में खो जाती है, फिर जब वापस जागते वक्त चेतना लौटती है, तो उसी स्थिति को वापस पहली दफा पा लेती है जिसको उसने रात में अंतिम छोड़ा था।
तो रात को सोते वक्त, अगर हम ध्यान की स्थिति में ही धीरे-धीरे डूबते हुए सो जाएं, तो उसके व्यापक परिणाम होंगे। रात्रि पूरी की पूरी, निद्रा पूरी की पूरी ध्यान में परिवर्तित हो सकती है, हो जाती है।
तो ऐसे तो यह जब आप अपने बिस्तर पर सोएं, तब बिस्तर पर सोकर ही करने को है।
सबसे पहले तो शरीर को पूरी तरह शिथिल छोड़ देना है, रिलैक्स कर देना है। और शरीर के साथ एक बहुत मजा है, हम जो भी आज्ञा उसे दें, वह हमेशा मानने को तैयार है। हम हाथ से कहते हैंः उठो, तो हाथ उठ आता है। हम पैरों से कहते हैंः चलो, पैर चलने लगते हैं। हम पैरों से कहते हैंः खतरा है, दौड़ो, तो पैर दौड़ने लगते हैं। जब शरीर दौड़ने के लिए आज्ञा मानता है, चलने के लिए आज्ञा मानता है, तो क्या शरीर सोने के लिए आज्ञा नहीं मानेगा? जरूर मानेगा। हमने कभी आज्ञा दी नहीं है, इसलिए हमें पता नहीं। शरीर यह भी मान लेता है कि बिल्कुल शिथिल हो जाओ, तो शरीर बिल्कुल शिथिल भी हो जाता है। और शरीर इतना शिथिल हो सकता है कि जैसे बिल्कुल मिट गया, शून्य हो गया।
शरीर जब पूरी तरह शिथिल हो जाता है, तो शरीर की शिथिलता का परिणाम होता है कि श्वास अपने आप धीमी हो जाती है। जब हम दौड़ते हैं तो श्वास तेज हो जाती है; जब हम क्रोध में होते हैं तब भी श्वास तेज हो जाती है; जब कोई तीव्र वासना से भरता है तब भी श्वास तेज हो जाती है; जब शरीर को हम बिल्कुल शिथिल छोड़ देते हैं तो श्वास भी शिथिल होकर एकदम शांत हो जाती है, बहुत धीमी हो जाती है।
एक तरफ तो श्वास शरीर से जुड़ी है और दूसरी तरफ श्वास विचार से जुड़ी है। जब आपके विचार बहुत तीव्र चलते हैं, क्रोध में या वासना की किसी भी चित्त-स्थिति में, तो श्वास तेज हो जाती है। तो जब श्वास शांत होती है तो अपने आप विचार भी भीतर शांत हो जाते हैं। तो सबसे पहले तो शरीर को एकदम शिथिल छोड़ देना है, आज्ञा देनी है कि शिथिल हो जाओ, शिथिल हो जाओ। एक दो- चार-आठ दिन के प्रयोग से आप पाएंगे कि शरीर को इतना शिथिल किया जा सकता है कि कोई आपरेशन भी करे तो भी पता न चले, इतना शिथिल हो सकता है शरीर।
फिर दूसरे तल पर अपने आप श्वास शिथिल हो जाएगी, लेकिन फिर श्वास को भी शिथिल होने की आज्ञा देनी है। और जब श्वास को भी शिथिल होने की आज्ञा देंगे तो धीरे-धीरे पाएंगे कि श्वास भी इतनी शांत हो जाती है कि कुछ दिनों के प्रयोग के बाद यह समझ में नहीं आता कि श्वास चल रही है या नहीं चल रही है। चलती है, बहुत धीमी हो जाती है। जब श्वास बिल्कुल धीमी हो जाती है तो

विचार एकदम विरल हो जाते हैं, दूर-दूर हो जाते हैं; कभी आता है विचार, कभी नहीं आता, एकदम ठहरे से रह जाते हैं।
फिर तीसरे तल पर विचारों को भी आज्ञा देनी है कि शांत हो जाओ, शिथिल हो जाओ, मौन हो जाओ। जब शरीर पर सफलता मिलती है तो आपका आत्मविश्वास बढ़ जाता है। जब श्वास पर सफलता मिलती है तो और बढ़ जाता है। फिर आप विचार को भी आज्ञा देने में समर्थ हो जाते हैं कि ठहर जाओ, रुक जाओ, शांत हो जाओ।
शरीर शिथिल हो जाए, श्वास शांत हो जाए और विचार शून्य हो जाएं, तब क्या
रह जाता है? तब रह जाते हैं आप स्वयं। तब रह जाती है अकेली चेतना, अकेला बोध, अकेली अवेयरनेस। तो उस बोध को शांति से जगाए रखना है, सोने नहीं देना है। अक्सर संभावना होती है, हमारा शरीर शिथिल हुआ कि हम नींद में गए। क्योंकि हमारा शरीर कभी नींद में ही शिथिल नहीं होता। असल में नींद भी हम भूल गए हैं, करीब-करीब भूल गए हैं। मुश्किल से कोई आदमी ठीक से सोता है। नींद बिल्कुल खत्म हो गई है। सभ्यता ने जिन चीजों को नष्ट किया है उनमें नींद सबसे बहुमूल्य थी, उसको नष्ट कर दिया है सभ्यता ने।
अमरीका जैसे मुल्कों में तो तीन आदमियों में से एक आदमी बिना दवा के नहीं सो रहा है। अमरीका सबसे सभ्य मुल्क है इस वजह से। अमरीका में और सभ्यता आएगी तो फिर तीन में से तीन ही दवा लेकर सोएंगे। अभी हम बहुत असभ्य हैं, अभी हम में से कई लोग बिना दवा के सो जाते हैं। लेकिन सभ्यता की दौड़ में हम भी हैं, भगवान ने चाहा तो हम भी जल्दी सभ्य हो जाएंगे और हम भी दवा लेकर सोया करेंगे।
नींद खत्म हो गई है। इसलिए आपकी नींद तो पूरी होती नहीं है, तो जैसे ही शरीर शिथिल होता है, नींद में डूबने की संभावना है। इसलिए थोड़ा सचेत रहना है। तो सुबह मैंने जो आपसे कहा था, वह सचेतना का प्रयोग है, उसको जारी रखना है। शरीर को सुझाव देना हैः शिथिल हो जाओ; मन को, विचार को, सबको शिथिल कर देना है; लेकिन भीतर कोई भी आवाज सुनाई पड़ रही हो, उसके प्रति सचेत बने रहना है। वह सचेतना के लिए मेजरमेंट होगा, नाप होगा कि मैं अभी जागा हुआ हूं। भीतर जागते रहना है और सबको सुला देना है, शरीर को सुला देना है, प्राण को सुला देना है, विचार को सुला देना है, और खुद जागते रहना है। थोड़ी ही देर में जब ये सब सो जाते हैं तो एक अपूर्व शांति का और आनंद
का बोध होना शुरू होता है, एक अपूर्व जागरण अनुभव होता है। तो कोई पंद्रह-बीस मिनट, आधा घंटा, जितनी देर सुखद हो, उस प्रयोग को करें, फिर चुपचाप सो जाएं बिस्तर पर ही। तो उसी शांत-मौन स्थिति में रात बीत जाएगी। और अगर एक थोड़े दिन गहरा प्रयोग चला, तो आप नींद में भी जानेंगे कि कोई जागा हुआ है, सब सो जाएगा और कोई जागा रहेगा, कोई भीतर जागा रहेगा, कोई भीतर परिपूर्ण होश से भरा रहेगा। जब भीतर कोई जागा रहेगा तो स्वप्न विलीन हो जाएंगे, कोई स्वप्न मन पर नहीं रह जाएगा। और अगर रात पूरी की पूरी स्वप्न-शून्य हो जाए, तो दिन में इतनी शांति अनुभव होगी जिसकी कल्पना भी नहीं है। रात के स्वप्न चित्त को कितना उद्विग्न कर जाते हैं, उनका परिणाम पूरे दिन भर साथ रहता है। दिन भर एक भीतर कोई शीतल और कोई शांत केंद्र बना रहेगा, सब चलता रहेगा और भीतर कुछ शांत रहेगा।
तो इधर भी इस प्रयोग को अभी हम प्रयोग के लिए करेंगे। फिर तो आप लौट कर जहां सोने जाएंगे अभी, वहां उसको करेंगे।
यहां क्या सोना संभव हो सकेगा?
अगर लोग थोड़ी-थोड़ी दूर फैल जाएंगे तब तो आप लेट कर कर सकते हैं, अन्यथा फिर बैठ कर ही करना पड़ेगा। बैठ कर करने पर भी काफी दूर हो जाना जरूरी है, क्योंकि कुछ लोग बैठेंगे तो भी गिर जाएंगे।
तो इसलिए काफी दूर-दूर हो जाएं। जो सो सकते हों वे तो दूर हट कर कहीं
सो जाएं। सबसे सुखद तो यह होगा कि वे सोकर ही करें, ताकि जब वे कमरे पर करेंगे तो उन्हें ठीक-ठीक अनुभव हो जाए कि क्या करना है। लेकिन जिन लोगों को सोने में थोड़ी अड़चन हो, बैठने में थोड़ा अच्छा लगता हो, तो वे बैठें, लेकिन वे भी इतनी दूर बैठें, क्योंकि उनमें से कुछ लोग गिरेंगे, वे किसी के ऊपर गिर जाएंगे तो तकलीफ होगी। दूर-दूर हट जाएं!

रोम रोम रस पीजिए
पांचवां प्रवचन

धर्म है आत्म-स्मरण

ज्ञान मार्ग नहीं है। ज्ञान ही रोक लेता है, अटका लेता है। ज्ञान का बोझ मन को इतना भारी कर देता है कि फिर सत्य तक की यात्रा करनी कठिन हो जाती है। ज्ञान के तट से जिनकी नाव बंधी है, वे सत्य के सागर में यात्रा नहीं कर सकेंगे। इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल सुबह मैंने आपसे कही थीं। स्वभावतः, यदि ज्ञान मार्ग नहीं है, तो एक दूसरा विकल्प है जो सदियों
से प्रस्तुत किया गया है। वह दूसरा विकल्प हैः भक्ति का, कल्पना का। यदि ज्ञान नहीं है द्वार सत्य के लिए, तो फिर भक्ति है, समर्पण है, भावना है, कल्पना है। दूसरा विकल्प, दूसरा ऑल्टरनेटिव, ज्ञान के विरोध में मनुष्य के सामने प्रस्तुत किया गया है, वह है भक्ति का।
आज सुबह मैं आपसे कहना चाहूंगा, भक्ति भी मार्ग नहीं है। यदि ज्ञान मार्ग नहीं है, तो कल्पना तो और भी मार्ग नहीं हो सकती है। ज्ञान यदि द्वार नहीं है, तो स्वप्न तो और भी द्वार नहीं हो सकता है। ज्ञान है तर्क, भक्ति है स्वप्न; ज्ञान है विचार, भक्ति है कल्पना। मनुष्य का मन या तो तर्क करना जानता है। तर्क से विज्ञान का जन्म हुआ है। या मनुष्य का मन कल्पना करना जानता है, इमेजिनेशन करना जानता है। कल्पना से काव्य का जन्म हुआ है। लेकिन न तो काव्य धर्म है और न विज्ञान धर्म है।
मनुष्य के मन की क्षमता है उन स्वप्नों को देख लेने की, जो वास्तविक नहीं हैं। बल्कि मन जिन बातों को देखना चाहता है और नहीं देख पाता है, उनकी भी तृप्ति का उपाय उसके पास हैः स्वप्न में उन्हें देख लेता है, कल्पना में उन्हें देख लेता है। जिसे जीवन में नहीं उपलब्ध कर पाता, उसे सपने में पा लेता है। हम सभी सपने देखते हैं। और हम जानते हैं कि जो सूर्य के प्रकाश में दिन में उपलब्ध नहीं होता, वह रात्रि के अंधकार में और नींद की गोद में उपलब्ध हो जाता है। स्वप्न परिपूरक हैं, सब्स्टीट्यूट हैं। जिंदगी में यथार्थ में जो नहीं मिलता, स्वप्न उसे पूरा कर देते हैं।
तो जिस सत्य को ज्ञान से, विचार से नहीं खोजा जा सका, सोचा होगा कि उसे
हम स्वप्न से और कल्पना से और भावना से पा लेंगे। लेकिन मनुष्य का मन जो भी कल्पना करेगा, वह कल्पना मन की सृष्टि होगी, वह मेंटल क्रिएशन होगा। वह कल्पना सत्य होने को नहीं है। सत्य के लिए कल्पना करनी जरूरी नहीं है, बल्कि सब भांति की कल्पना छोड़ कर जो देखता है, वह सत्य को उपलब्ध होता है। और हमारा मन बहुत समर्थ है कल्पना करने में, बहुत समर्थ है; इतने दूर
तक समर्थ है कि जिसकी हम कल्पना करें उसे प्रत्यक्ष सामने भी खड़ा कर ले सकते हैं। जिस बात का सुझाव हमारे मन के भीतर बैठ जाए और हम उसके लिए चेष्टा करें, वह हमें प्रतीत भी होने लग सकता है।
एक छोटी सी घटना से मैं आज की बात प्रारंभ करूं।
एक विश्वविद्यालय में उस विश्वविद्यालय के सारे शोध के विद्यार्थी, सारे रिसर्च स्कॉलर इकट्ठे हुए थे। कोई सौ विद्यार्थी थे, वे जिस हॉल में बैठ कर विचार-विनिमय करते थे, तभी एक युवक भीतर आया, उसने टेबल पर आकर एक बहुत खूबसूरत बोतल रखी और कहा कि अगर पांच मिनट मुझे दे सकें, तो कृपा करें, मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूं। मैंने कोई सुगंध बनाई है, गुलाब की सुगंध है, और मैं जानना चाहता हूं कि यह कितनी तीव्रता से कमरे में यात्रा करती है और कितनी देर तक कमरे में टिकती है। तो मैं इस बोतल को खोलूंगा, जिस-जिस को सुगंध आनी शुरू हो जाए वह हाथ उठा दे। उसने बोतल खोली, वे सौ विद्यार्थी शोध के विद्यार्थी थे, विचारशील युवक थे, तर्कनिष्ठ थे, खोजी थे, विज्ञान के नियमों का अनुसरण करते थे। उसने बोतल खोली, वे सारे विद्यार्थी उत्सुक होकर प्रतीक्षा करते रहे, फिर एक व्यक्ति उठा और उसने कहा कि मुझे सुगंध आई। फिर दूसरा व्यक्ति उठा, फिर तीसरा और धीरे-धीरे बहुत से विद्यार्थी उठे और उन्होंने कहा, हमें सुगंध आई।
उस युवक ने बोतल बंद की और कहा, क्षमा करें, यह बोतल खाली है, इसमें कोई सुगंध नहीं है। मैं सुगंध पर प्रयोग नहीं कर रहा हूं, मैं सुझाव पर प्रयोग

कर रहा हूं, मैं सजेशन पर प्रयोग कर रहा हूं। बोतल तो खाली है और आप सारे लोग हैं विचारशील, तर्कनिष्ठ, विज्ञान की पद्धति से काम और खोज करने वाले, यह सुगंध आपको कैसे आई?
कल्पना और सुझाव संयुक्त हो गए, इमेजिनेशन और सजेशन मिल गए। कल्पना
थी युवकों के पास, सुझाव यहां से दे दिया गया, कल्पना और सुझाव संयुक्त हो गए, एक स्वप्न निर्मित हो गया सुगंध का। लेकिन वह स्वप्न बिल्कुल वास्तविक प्रतीत हुआ था, क्योंकि वे सोए हुए नहीं थे। सुगंध उन्होंने जानी थी, सुगंध को उन्होंने पहचाना था, सुगंध उन्होंने पाई थी। वे सोए हुए नहीं थे, वे छोटे बच्चे भी नहीं थे, वे किसी आदिवासी इलाके के रहने वाले अंधविश्वासी लोग भी नहीं थे, वे एक विश्वविद्यालय में शोध के विद्यार्थी थे।
कैसे यह हुआ?
अलेक्जेंडर ड्यूमा अपना मोहल्ला बदल लिया था। एक मोहल्ले में रहता था, उस आस-पास के लोग उससे परिचित हो गए थे, वे उसकी आदतों से परिचित हो गए थे। फिर उसने अपना मोहल्ला बदल लिया, वह नये मोहल्ले में गया। तो वहां तो उपद्रव हो गया। रात मोहल्ले के लोगों की नींद टूट गई, आधी रात, और लोगों ने देखा कि अलेक्जेंडर ड्यूमा के कमरे में बहुत जोर से दो व्यक्तियों में लड़ाई हो रही है, शायद तलवारें चल रही हैं, जोर की आवाजें निकल रही हैं। कोई मार रहा है, कोई मारा जा रहा है। वे घबड़ा गए, नया आदमी मोहल्ले में आया था और यह क्या हो रहा है? उन्होंने पुलिस को खबर कर दी। पुलिस इकट्ठी हो गई, दरवाजे जोर से धक्के देकर बामुश्किल खुलवाए गए। अलेक्जेंडर ड्यूमा अकेला कमरे के भीतर खड़ा हुआ था। उन्होंने कहा कि दूसरा आदमी कहां है? थोड़ी देर तो ड्यूमा चुपचाप खड़ा रहा। बड़ा साहित्यकार, नाटककार, विचारशील व्यक्ति था। फिर हंसने लगा और कहा, माफ करिए, दूसरा व्यक्ति वह आपको दिखाई नहीं पड़ेगा।
उन्होंने पूछा, क्यों?
उसने कहा, वह मेरे एक नये नाटक का पात्र है। उससे मैं जरा बातचीत कर रहा था। और जब भी मेरे पात्र निर्मित होते हैं तो मैं खुद भूल जाता हूं कि वे सच्चे हैं या झूठे, विवाद इतना बढ़ गया कि तलवार तक निकाल ली मैंने। कोई था नहीं यहां। झगड़ा हो गया, लेकिन कोई है नहीं।
वे लोग समझे कि या तो पागल है। लेकिन ड्यूमा तो बड़ा प्रसिद्ध, बड़ा विचारशील व्यक्ति था। ड्यूमा ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि पागल व्यक्ति, कवि और साहित्यकार अपने पात्रों को देख पाते हैं, मिल पाते हैं। टॉल्सटॉय जैसा योग्य और समझदार व्यक्ति एक लाइब्रेरी की सीढ़ियां चढ़ता था। संकरी थीं सीढ़ियां, उसके साथ उसके बगल में उसके एक उपन्यास में काम कर रही एक पात्रा, एक स्त्री साथ चल रही थी। वह कहीं थी नहीं, उसके मन में थी। लेकिन उसके साथ चल रही थी, वह उससे बात करता हुआ धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़ रहा था। दो के लायक जगह थी, ऊपर से कोई तीसरा व्यक्ति उतरता हुआ आया, तो कहीं स्त्री को धक्का न लग जाए, इसलिए टॉल्सटॉय हटा। सीढ़ियों पर जगह न थी, वह हटा और नीचे गिर गया और पैर तोड़ लिया।
उस दूसरे व्यक्ति ने पूछा, हम दो के लायक काफी जगह थी, आप हट कैसे गए? किसके लिए हटे?
टॉल्सटॉय ने कहा, दो नहीं, तीन थे। मेरी एक पात्र, एक स्त्री भी साथ चल रही थी। उस स्त्री को धक्का न लग जाए, इस कारण मैं हटा।
लेकिन उस दूसरे व्यक्ति ने कहा, मुझे तो यहां कोई भी दिखाई नहीं पड़ता, कोई स्त्री दिखाई नहीं पड़ती।
टॉल्सटॉय ने कहा, वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी।
लेकिन टॉल्सटॉय हटा, उस क्षण में उसे सहज ही परिपूर्णता से यह अनुभव हुआ कि कोई स्त्री साथ है। यह तो पैर टूट गया तब उसे बोध आया कि एक सपना देख रहा था।
मनुष्य की क्षमता बहुत है कल्पना करने की। हम सब भी कल्पना करते हैं,
हम सब भी अनुपस्थित मित्रों से बात करते हैं। इस कल्पना की शक्ति को विकसित किया जा सकता है। कुछ लोगों में सहज ही ज्यादा होती है। पुरुषों की बजाय स्त्रियों में ज्यादा होती है। युवकों की बजाय बच्चों में ज्यादा

होती है। सामान्यजनों की बजाय कवियों में, चित्रकारों में ज्यादा होती है। लेकिन अगर इसको ट्रेनिंग दी जाए, अगर इसको प्रशिक्षित किया जाए तब तो यह किसी में भी विकसित की जा सकती है। और जिनमें है उनकी इतनी दूर तक विकसित की जा सकती है कि कोई भी चीज जिसकी हम कल्पना करें, वह प्रतीत होने लगे, वह अनुभव में आने लगे, उसका साक्षात हो जाए।
भक्तों ने भगवान के जो दर्शन किए हैं, वे इस कल्पना से भिन्न नहीं हैं। और यह भी अकारण नहीं है कि अक्सर भक्त कवि भी होता है, यह भी आकस्मिक नहीं है, एक्सिडेंटल नहीं है। अक्सर ही भक्त कवि भी होता है, यह भी एक्सिडेंटल नहीं है, आकस्मिक नहीं है। कवि की क्षमता ज्यादा होती है कल्पना करने की। कुछ भटके हुए कवि भक्त हो जाते हैं, तो वे पात्र नहीं देखते, वे भगवान को भी देखने लगते हैं।
भगवान की हम जैसी कल्पना करें और अगर अपनी कल्पना को ठीक से प्रशिक्षित करें... ठीक से प्रशिक्षित करने की विधियां हैं, वही भक्ति-योग है। प्रशिक्षित करने की विधियां क्या हैं? निरंतर उसी मूर्ति का स्मरण, सोते-बैठते उसी प्रतिमा की धारणा, उठते-जागते उसी के रूप के साथ रहना और जीना, उसी का चिंतन, उसी का मनन। निरंतर-निरंतर जिस बात का भी हम चिंतन, मनन और विचार करते हैं, जिसकी आकांक्षा करते हैं, जिसकी प्रतीक्षा करते हैं, सोते-जागते अपने प्राणों में जिसके रूप को, आकार को बसाते हैं--किसी क्षण में वह आकार साकार बनना शुरू हो जाता है। वह प्रतिमा जीवंत मालूम पड़ने लगती है। वह जीवन हमने डाला है, हमारी कल्पना ने डाला है। धीरे-धीरे-धीरे- धीरे उस स्थिति में हम पहुंच जा सकते हैं कि यह वास्तविक जगत तो झूठा दिखाई पड़ने लगे और वह काल्पनिक प्रतिमा सत्य दिखाई पड़ने लगे।
निश्चित ही शांति मिलेगी इस बात से, एक तरह का सुख मिलेगा, क्योंकि एक तरह की मूर्च्छा हो जाएगी। वास्तविक जीवन तो हो जाएगा माया और जो माया जैसा स्वप्न है वह हो जाएगा सत्य। तो वास्तविक जीवन की सारी चिंताएं हो जाएंगी विलीन, सारे दुख हो जाएंगे क्षीण, सारा संताप आंखों से हो जाएगा ओझल और एक स्वप्न-जगत मनोकामना का, मनोसृष्टि का समक्ष हो जाएगा, उसमें हम जीने लगेंगे।
अभी अमेरिका में उन्होंने मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड पर बड़े प्रयोग किए हैं। मैस्कलीन मैक्सिको में पाई जाने वाली भांग जैसी एक बूटी है, जड़ी है। हजारों वर्ष से मैक्सिको के भक्तगण उस भांग को पीकर मस्त होते रहे थे और भगवान के दर्शन करते रहे थे। फिर अभी वैज्ञानिकों ने उस जड़ी की खोज-बीन की और उससे इंजेक्शन बना लिए। मैस्कलीन का इंजेक्शन लगा लेने पर छह घंटे के लिए आप भी भक्त हो जाएंगे; और छह घंटे जो आपको देखना हो, वही आप देख सकते हैं। अगर कोई क्रिश्चियन भक्त मैस्कलीन का इंजेक्शन ले लेगा तो क्राइस्ट से मुलाकात हो जाएगी। और अगर कोई कृष्ण का भक्त मैस्कलीन का इंजेक्शन ले लेगा तो कृष्ण से मुलाकात हो जाएगी।
अब ज्यादा मेहनत करने की जरूरत नहीं है, विज्ञान ने उपाय दे दिया, अब भगवान के दर्शन और आसान हैं। और अभी अमरीका के बड़े से बड़े लोग, अल्डुअस हक्सले से लेकर और दूसरे लोग भी मैस्कलीन का इंजेक्शन लगवा रहे हैं और भक्तों के जगत में प्रवेश कर रहे हैं। पुराने ढंग थे, उनमें वर्षों लग जाते थे। दस-पांच वर्ष लगते थे, तब कोई भगवान के दर्शन कर सकता था। अब जमाना बदल गया, अब कोई बैलगाड़ी से चलने का सवाल नहीं है। अब हम हवाई जहाजों से बड़ी तीव्र गति से उड़ सकते हैं, राकेट से चांद तक जा सकते हैं। तो अब भगवान के पास भी भक्त और जल्दी पहुंच सके, इसकी भी विज्ञान ने खोज कर ली है।
हमारी कल्पना को तीव्र करने के ड्रग्स खोज लिए गए हैं, जो कल्पना को इतनी तीव्रता दे देंगे कि जो वर्षों मेहनत करने से आप किसी प्रतिमा का साक्षात कर पाते, वह शीघ्र, अभी, यहीं कर ले सकते हैं। कल्पना तीव्र हो जाएगी, गतिमान हो जाएगी। और उस ड्रग के नशे के प्रभाव में विचार और तर्क की क्षमता क्षीण हो जाएगी। तर्क और विचार सो जाएगा तो कल्पना पूरी तरह, पूरी शक्ति से गतिमान हो जाती है।
इसलिए ये भक्तगण तर्क के और विचार के विरोध में हैं, क्योंकि तर्क और विचार जहां हो वहां कल्पना तीव्र नहीं हो सकती। इसलिए भक्तगण कहते हैं,

तर्क, विचार इससे कुछ न होगा। होगा समर्पण के भाव से, होगा भक्ति के भाव से, होगा भावना से। तर्क छोड़ो, विचार छोड़ो, इससे कुछ होने वाला नहीं है।
क्योंकि तर्क और विचार जिस मन में होते हैं, संदेह जिस मन में होता है, वह मन बहुत कल्पना में एकदम पागल की तरह नहीं जा सकता, रुकावट खड़ी हो जाती है।
इसलिए संदेह के विरोध में हैं भक्तगण, विचार के विरोध में हैं।
यह एक दूसरी धारा है, जिसने मनुष्य-जाति के बहुत हजारों वर्ष धर्म के आगमन में बाधा पैदा की है हजारों वर्षों से।
नहीं, कल्पना भी नहीं है द्वार। क्योंकि कल्पना कौन करेगा? मैं करूंगा! मेरी कल्पना मुझसे श्रेष्ठ नहीं हो सकती। कल्पना आप करेंगे! आपकी कल्पना आपसे बड़ी कैसे होगी? आपकी कल्पना आपके ऊपर कैसे जाएगी? आपकी कल्पना है आपका सृजन, आपके मन का सृजन, तो वह आपसे ऊपर नहीं जा सकता। इसलिए जब हिंदू भगवान की कल्पना करता है, तो वे भगवान हिंदू से मिलते- जुलते होते हैं, उनका नाक-नक्श हिंदू से मिलता-जुलता होता है। और जब नीग्रो करता है भगवान की कल्पना, तो वे नीग्रो से मिलते-जुलते भगवान होते हैं, उनके ओंठ मोटे होते हैं, बाल घुंघराले होते हैं। और जब चीनी करता है भगवान की कल्पना, तो उनका रंग पीला होता है और गाल की हड्डियां उभरी हुई होती हैं और नाक चपटी होती है। हम अपनी ही कल्पना में तो अपने भगवान को निर्मित कर लेंगे। हमारी ही कल्पना में तो हम जो भी बनाएंगे वह हम को अतिक्रमण नहीं कर सकता, वह हम से ऊपर नहीं जा सकता।
हम जिस बात को सुंदर समझते हैं उसको हम भगवान में जोड़ देंगे। हम जिस बात को प्रीतिकर समझते हैं उसको जोड़ देंगे। हम जिस रूप को चाहते हैं, प्रेम करते हैं, उसको जोड़ देंगे।
क्या आपको पता है, आज तक पुरुषों ने जितने भी भगवान बनाए हैं, उनको दाढ़ी-मूंछ नहीं उगती, पता है? क्योंकि पुरुष के मन में स्त्री सुंदर है, इसलिए सब भगवान स्त्री के रूप में ही उसने बना लिए हैं। न कृष्ण को दाढ़ी उगती, न मूंछ उगती, न महावीर को, न बुद्ध को, न राम को, किसी को नहीं उगती है। बड़ी हैरानी की बात है, यह क्यों नहीं उगती? पुरुष की जो कल्पना है सौंदर्य की वह स्त्री की प्रतिमा है। अगर स्त्रियों ने कभी भगवान बनाए तो उनको दाढ़ी-मूंछ जरूर उगेगी। उगनी जरूरी है, बिल्कुल उगनी जरूरी है।
न केवल पुरुष ने दाढ़ी और मूंछ से विहीन भगवान बनाए, लेकिन खुद की भी दाढ़ी-मूंछ इसीलिए काट डाली है। उसके मन में सौंदर्य की प्रतिमा दाढ़ी-मूंछ से रहित है, इसलिए खुद की भी उसने साफ कर दी है। लेकिन शायद उसे पता नहीं है कि स्त्री की प्रतिमा कुछ और होगी।
ये जो प्रतिमाएं हम बनाते हैं, ये हम बनाते हैं। ये प्रतिमाएं हमारे
मन का पूरा प्रतिफलन हैं, पूरा रिफ्लेक्शन हैं। तो हम अपने हिसाब से सब जोड़ देते हैं। और फिर इन प्रतिमाओं को बना कर इनकी हम पूजा करते हैं, प्रार्थनाएं बनाते हैं। और फिर अपने को इनमें मूर्च्छित करते हैं और सोचते हैं कि हम सत्य की या परमात्मा की खोज में जा रहे हैं।
कल्पना की यात्रा पर जा रहे हैं, सत्य की खोज में नहीं। कल्पना की यात्रा पर जितने दूर निकल जाएंगे, स्मरण रखें, सत्य से उतने ही दूर हो जाएंगे। क्योंकि कल्पना की यात्रा पर गया हुआ मन विवेक, जागरण, अवेयरनेस, इन सब में क्षीण हो जाता है। सिर्फ स्वप्न देख पाता है, सिर्फ स्वप्न देख पाता है।
स्वप्न में जरूर सुख उसे मिलता है। सुखद सपने हम भी देख लेते हैं तो हमें भी सुख मिलता है। भक्त बड़ा सुखद सपना देखता है भगवान से मिलने का, भगवान के निकट होने का। इस सुखद सपने में सुख मिलता हो, इसमें आश्चर्य नहीं है। लेकिन सपना चाहे सुखद ही हो तो भी सत्य नहीं हो जाता है। और इस सपने को साध-साध कर रखना होता है; क्योंकि सपने के तिरोहित हो जाने की हमेशा संभावना है। नींद टूट जाए, सपना तिरोहित हो जाएगा। तो भक्त सब भांति इसे सम्हालता है, सब तरफ से दीवाल बनाता है, सब संदेह को परे करता है, सब प्रकार की श्रद्धा मन में लाता है, सब तरह के विश्वास से अपने को भरता है, ताकि यह सपना कहीं क्षीण न हो जाए।
लेकिन इस काल्पनिक स्वप्न-जगत के निर्माण को मैं धर्म नहीं कहता हूं,
यह धर्म नहीं है। यह तो एक तरह का नशा है। इस नशे में बहुत सी चीजों से

सहयोग मिल सकता है। संगीत से सहयोग मिल सकता है। क्योंकि संगीत सुलाने में, मूर्च्छा लाने में अदभुत उपाय है। इसलिए भक्तगण संगीत का सहारा ले सकते हैं, लेते रहे हैं। गीत से, गान से, नृत्य से सहारा मिल सकता है। इसलिए भक्तगण उसका भी सहारा लेते रहे हैं। जो-जो चीजें हमारे चित्त को तंद्रा में ले जाएं, मूर्च्छा में ले जाएं, सम्मोहन में ले जाएं, एक तरह की हिप्नोसिस पैदा कर दें, उन सब का सहारा लिया जाता रहा है।
लखनऊ में वाजिद अली के दरबार में एक बार एक संगीतज्ञ आया। उस संगीतज्ञ ने कहा कि मैं बजाऊंगा तो सितार, लेकिन एक शर्त हैः मेरे सुनने वाले जो हों उनमें से किसी का सिर न हिले, सिर हिला तो मैं नहीं बजाऊंगा। वाजिद अली तो, आप जानते हैं, पागल था। ऐसे अक्सर ही नवाब पागल ही होते हैं। क्योंकि कोई समझदार आदमी कैसे नवाब होना पसंद करेगा? वह भी वाजिद अली भी पागल था। उसने कहा, ऐसा! बेफिक्र रहो, हिलने की बात का ख्याल भी मत करो। मैं घोषणा निकाले देता हूं कि अगर कोई सिर हिला तो सिर कटवा देंगे।
खबर कर दी गई गांव में कि जो लोग सुनने आएं, सचेत होकर आएं। अगर कोई सिर हिला तो कटवा दिया जाएगा। हजारों लोग आते उस बड़े संगीतज्ञ को सुनने, लेकिन फिर दो-चार सौ लोग ही आए। जो संयमी रहे होंगे, जिन्होंने सोचा होगा कि अपने सिर पर संयम रख सकते हैं, ऐसे व्रती और संयमी, तपस्वी वहां आए होंगे सुनने को, बाकी तो कोई आया नहीं। तीन-चार सौ लोग आए थे। उसने सितार बजाना शुरू किया होगा, कोई पंद्रह-बीस मिनट तक तो सभी थिर थे मूर्तियों की भांति, क्योंकि कोई अपना जीवन नहीं खोना चाहता था। घड़ी दो घड़ी बीतीं, रात गहरी होने लगी, धीरे-धीरे दो-चार सिर हिलने शुरू हो गए, फिर और दस-बारह सिर हिलने लगे। रात बीतते-बीतते कोई बीस लोग पकड़े गए जिन्होंने सिर हिलाए थे। वाजिद अली ने उनको पकड़वा कर इकट्ठा करवा लिया और उस संगीतज्ञ को पूछा, इनके सिर अलग करवा दें?
उस संगीतज्ञ ने कहा कि नहीं! लेकिन कल अब और कोई न आए, ये बीस लोग ही आएं, इनके सामने ही मैं बजाऊंगा। बस ये ही वे लोग हैं जिनके सामने बजाने का कोई आनंद हो सकता है।
वाजिद अली ने उन लोगों से पूछा कि तुम कितने पागल हो! मरने की बात तय थी, फिर भी तुमने सिर हिलाए?
उन लोगों ने कहा कि नहीं, जब तक हम थे तब तक हमने सिर नहीं हिलाए; और जब
हम खो गए, बेहोश हो गए, हमें कुछ पता न रहा, संगीत में बह गए, तब सिर हिले होंगे। हमने सिर नहीं हिलाए हैं, सिर हिले होंगे। क्योंकि जब सिर हिले तब हम मौजूद नहीं थे, जब तक हम मौजूद थे तब तक हमने सिर नहीं हिलाए थे। ऐसे हमारा कोई कसूर नहीं है, हमारा इसमें कोई हाथ ही नहीं है।
एक तंद्रा पैदा हो सकती है जहां स्वयं का विस्मरण हो जाए। संगीत में
हो सकती है, सेक्स में होती है, भक्ति में भी हो सकती है। इतना कोई अपने को किसी चीज में डुबा ले, जिसको भक्त कहते हैं तन्मयता, कोई इतना तन्मय हो जाए किसी चीज में कि खुद को भूल जाए, स्वयं का विस्मरण हो जाए, किसी भी चीज में कोई इतना तन्मय हो जाए कि स्वयं का विस्मरण हो जाए, सेल्फ फार्गेटफुलनेस पैदा हो जाए, तो बड़ा सुख मिलेगा। क्योंकि इस स्वयं की स्मृति के साथ ही सारा दुख जुड़ा है, सारी चिंता, सारी पीड़ा। इसीलिए दुनिया में बहुत तरह के उपाय प्रचलित हैं जहां व्यक्ति अपने को खो देना चाहता है।
एक आदमी राष्ट्र की सेवा में लग जाता है पागल की भांति, तो खुद को भूल जाता है, बहुत सुख मिलता है। एक आदमी समाज की सेवा में अपने को डुबा देता है और अपनी आइडेंटिटी कर लेता है समाज के साथ, अपने को भूल जाता है। एक आदमी इस्लाम की रक्षा के लिए पागल हो जाता है, एक आदमी हिंदू धर्म की रक्षा के लिए पागल हो जाता है। बस किसी चीज में अपने को भूलने का उपाय मिल जाए जिसमें मैं अपने को खो सकूं, तो जैसे ही मैं अपने को खो दूंगा, एक बहुत अदभुत नशा पैदा हो जाएगा, उस नशे में मुझे अपना स्मरण नहीं रहेगा। स्मरण नहीं रहेगा, तो दुख नहीं है, पीड़ा नहीं है।
भक्त भी आत्म-विस्मरण खोजता है, खोजता है किसी काल्पनिक भगवान में अपने को डुबा देना, किसी काल्पनिक भगवान के चरणों में अपने को खो देना, अपने को खो देना, अपने को डुबा देना, भुला देना। जब वह अपने को बिल्कुल भूल

जाता है और मिट जाता है, और सिर्फ भगवान ही रह जाते हैं उसकी कल्पना के, तब वह बड़े सुख का अनुभव करता है।
यह सुख एकदम झूठा है। आत्म-विस्मरण नहीं है धर्म; धर्म है परिपूर्ण रूप से आत्म-स्मरण, सेल्फ रिमेंबरिंग, सेल्फ फार्गेटफुलनेस नहीं। स्वयं को भूल नहीं जाना है, स्वयं को उसकी परिपूर्णता में जान लेना है। स्वयं को किसी में डुबा नहीं देना है, बल्कि स्वयं को उसकी समग्रता में पहचान लेना है। और ये तो बातें बिल्कुल ही विपरीत हैं। और ये तो दिशाएं बिल्कुल ही विरुद्ध हैं।
भक्त अपने को डुबाता है। धर्म तो अपनी खोज है। धर्म किसी में तन्मयता नहीं है, धर्म किसी में डूब जाना नहीं है, धर्म किसी के साथ एक हो जाना नहीं है। बल्कि समग्रता में जो भीतर है उसे जान लेना है, उसकी परिपूर्णता में पहचान लेना है, उसके प्रति पूरे बोध से भर जाना है। और जब कोई व्यक्ति पूरे रूप से स्वयं को जान लेता है, तो वह पाता है कि स्वयं और सर्व में कोई विरोध नहीं है, कोई भेद नहीं है, कोई दीवाल नहीं है। वे जुड़े हुए हैं, वे एक हैं। यह वह कल्पना से नहीं अनुभव करता।
भक्त यह कल्पना से अनुभव करता है कि मैं भगवान से एक हो जाऊं, एक हो जाऊं, इसकी चेष्टा करता है, चेष्टा करता है। अगर वह एक भी हो जाता है तो यह एकता एकदम काल्पनिक, इमेजिनरी होती है, बिल्कुल मिथ्या होती है।
धर्म की दिशा है स्वयं को पूरी तरह जान लेने में। जब कोई स्वयं को पूरी तरह जानता है तो स्वयं और सर्व में कोई फासला नहीं रह जाता, कोई भेद नहीं रह जाता, कोई डिस्टेंस नहीं रह जाता। वह पाता है कि जो स्वयं में है, वही, वही सब में है। वह स्वयं को खोता नहीं, लेकिन एक दिन पाता है कि स्वयं है ही नहीं। वह स्वयं को किसी में डुबाता नहीं, लेकिन खोज करते-करते पाता है कि स्वयं तो तिरोहित हो गया, रह गया है सर्व। मैं तो गया, रह गया है वह, रह गया परमात्मा। खोता नहीं, डुबाता नहीं, लेकिन एक दिन पाता है कि स्वयं तो है ही नहीं। और तब जो एकता और तब जो अनुभूति समग्र के साथ हो जाने की-- जैसा बूंद सागर में गिर कर जानती होगी, सागर हो गई, वैसा ही वह भी जानता है। लेकिन यह है जानना, यह कोई कल्पना नहीं है। और यह जानना तभी उपलब्ध होगा जब हम सारी कल्पनाओं को छोड़ देने को तैयार हों।
कल्पना भी छोड़ देनी पड़ती है, क्योंकि कल्पना है मेरी और मुझसे ऊपर नहीं ले जाएगी। और कल्पना है मेरी, इसलिए मैं डूब जाऊं, लेकिन मैं मिट नहीं सकूंगा। क्योंकि मेरी ही कल्पना मुझे कैसे मिटा सकती है? मैं बना ही रहूंगा, बना ही रहूंगा, मैं निरंतर बना रहूंगा। और भगवान के चरणों में सिर जरूर रखूंगा, लेकिन भगवान से मैं निरंतर बड़ा रहूंगा। मैं भी भगवान से बड़ा रहूंगा, मेरे पूरे अचेतन में मैं भगवान से बड़ा रहूंगा, क्योंकि वे भगवान मेरे बनाए हुए हैं।
एक भक्त को, एक बड़े भक्त को राम के मंदिर में ले जाया गया था। तो उन्होंने हाथ जोड़े, पैर पड़े। फिर उन्हें उसी गांव में कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। तो उन्होंने कहा कि मैं हाथ नहीं जोड़ूंगा। मैं तो उस भगवान को मानता हूं जो धनुर्धारी है, यह बांसुरी वाले भगवान को मैं नहीं मानता। तो अगर तुम भी हे कृष्ण, अगर चाहते हो कि मैं तुम्हारे पैर पर सिर रखूं, तो धनुष-बाण हाथ में ले लो।
तो यह भक्त भगवान को भी चूज करता है, चॉइस है इसकी। भगवान भी इसका निर्णय है कि कौन सा भगवान है और कौन सा भगवान नहीं है। यह चुनाव करने वाला कैसे मिटेगा? यह नहीं मिट सकता। जिसने चुनाव किया है, जिसका चुनाव किया है वह उससे बड़ा होता है। चुनाव करने वाला कल चाहे तो इनकार कर दे, कल धनुर्धारी को भी कह दे कि नहीं, अब तुम भी भगवान नहीं हो। तो धनुर्धारी क्या कर लेंगे? जिसने चुनाव किया है वह इनकार करने को हमेशा मौजूद है। और जिसने समर्पण किया है--जिसको हम कहते हैं सरेंडर, कि भक्त सरेंडर करता है, समर्पण करता है भगवान के चरणों में--जो सरेंडर करता है, समर्पण करता है, वह अपने समर्पण को वापस लेने को हमेशा मौजूद है। वह कल कह सकता है कि समर्पण वापस लिया। वह मैं नहीं मिट सकता है, चाहे उसे डुबाओ, चाहे उसे खोओ। थोड़ी- बहुत देर को मूर्च्छित हो सकता है, फिर वापस लौट आएगा। तो फिर उसकी पीड़ा लौट आएगी, फिर उसको डुबाओ।

जो नशे में आदमी की हालत होती है, शराब पी लेता है, थोड़ी देर को सब भूल जाता है। फिर जब होश में आता है, फिर चिंताएं वापस लौट आती हैं, दुख वापस लौट आते हैं। फिर शराब चाहिए, फिर रोज शराब चाहिए, फिर सतत शराब चाहिए, फिर बेहोश ही पड़े रहना चाहिए, फिर होश में जब भी आता है तभी दुख आना शुरू हो जाता है।
भगवान में भी कोई अपने को डुबा दे तो वह इनटॉक्सिकेंट जैसा ही परिणाम है। जैसे ही उस डूबने के बाहर आएगा, भजन-कीर्तन के बाहर निकलेगा, दुख शुरू हो जाएंगे, फिर दौड़ेगा मंदिर की तरफ। फिर वह धीरे-धीरे कहेगा, हम तो चौबीस घंटे ही अब भजन में रहेंगे, अब हम बिना भजन के एक क्षण भी नहीं रह सकते। क्योंकि जब भजन के बाहर होते हैं, दुख में होते हैं। पूजा में बड़ा आनंद मिलता है, प्रार्थना में बड़ा आनंद मिलता है। बाहर आते हैं, सब दुख है। बाहर दुख ही दुख है, पूजा में बड़ा आनंद है, प्रार्थना में बड़ा आनंद है।
अगर आनंद जिसे उपलब्ध होता है, उसे फिर सब जगह आनंद उपलब्ध होता है। लेकिन जिसे नशे का सुख मिलता है, उसे सिर्फ नशे में सुख मिलता है। अगर आनंद का झरना भीतर फूट पड़ेगा, तो मंदिर में भी आनंद होगा, मस्जिद में भी, सड़क पर भी, दुकान पर भी, सारे जीवन में; क्योंकि वह आनंद कोई नशा नहीं है, वह भीतर फूटता हुआ झरना है। लेकिन अगर आनंद कहीं मिलता हो और कहीं न मिलता हो, तो जान लेना कि वह आनंद नहीं है, वह मूर्च्छा में मिला हुआ सुख है।
जीवन है अविच्छिन्न प्रवाह, वह कंटिन्युटी है। अगर मेरे भीतर प्रेम
है तो यह असंभव है कि मैं एक जगह जाऊं तो वहां मुझसे प्रेम बहे और दूसरी जगह जाऊं तो मुझसे प्रेम न बहे। अगर मुझ में आनंद है तो यह असंभव है कि मैं यहां बैठूं तो आनंदित रहूं और यहां से बाहर हट जाऊं तो आनंद चला जाए। अगर आनंद मेरे भीतर है, मेरा स्वभाव बना है, मेरे स्वभाव का विकास हुआ है, तो मैं जहां हूं वहां श्वास की भांति, हृदय की धड़कन की भांति मेरे साथ है। लेकिन हम आनंद को जानते ही नहीं, हम केवल सुख को जानते हैं, सुख जो कि
एक मूर्च्छा है। तो कहीं मिलता है, फिर कहीं नहीं मिलता; किसी के साथ मिलता है, फिर किसी के साथ नहीं मिलता।
मैं किसी को प्रेम करता हूं, वह मेरे पास होता है तो मुझे सुख मिलता है। क्यों? उतनी देर को मैं अपने को भूलने में समर्थ हो जाता हूं, उतनी देर को मैं उसके साथ एक हो जाता हूं। एक दूसरा आदमी है जो मुझे घृणा करता है, उसके पास बैठता हूं तो दुख मिलता है। क्योंकि जो मुझे घृणा करता है उससे एक होना मुश्किल हो जाता है। उसकी घृणा दीवाल की तरह खड़ी हो जाती है, वह मुझे एक नहीं होने देती, डूबने नहीं देती, भूलने नहीं देती। इसलिए दुश्मन के पास दुख मिलता है और मित्र के पास सुख मिलता है। क्योंकि मित्र एक नशे का काम करता है, दुश्मन नशा नहीं हो सकता। फिर यही प्रवृत्ति आगे बढ़ जाती है तो भगवान के चरणों में सुख मिलने लगता है, फिर भगवान के सान्निध्य में सुख मिलने लगता है, उनके सत्संग में सुख मिलने लगता है।
कोई यह सुख नहीं है। यह सिर्फ डूबने से, भूलने से आई हुई तंद्रा से भूला हुआ दुख है, आनंद नहीं।
धर्म की खोज तो भूलने की नहीं, जागने की है। तो कल्पना भी छोड़नी पड़ेगी। और जहां ज्ञान न हो, कल्पना न हो, वहां क्या होगा?
उसकी बात मैं कल करूंगा कि जहां ज्ञान नहीं, जहां कल्पना नहीं, वहां क्या हो सकता है। वहां होगा कोई विस्फोट, वहां होगी कोई क्रांति, वहां कोई बुझी आग जल उठेगी, वहां कोई अंधियारे कमरे में दीया जल उठेगा, वहां कुछ होगा।
लेकिन दो चीजें छोड़नी जरूरी हैंः उधार ज्ञान छोड़ना जरूरी है, मन के सपने और कल्पनाएं छोड़नी जरूरी हैं। सत्य की खोज में, स्वयं की खोज में ये दो त्याग करने जरूरी हैं, ये दो निषेध बिल्कुल जरूरी हैं। ये दो नकार जो करने में समर्थ नहीं हो पाता, वह सत्य को नहीं खोज पाएगा। और अगर खोज भी लेगा तो वह सत्य घर का ही बनाया हुआ होगा, होम मेड। वह खुद का ही बनाया हुआ होगा, वह सत्य नहीं होगा। वह अपना ही सृजन होगा। हम ही उसके मालिक और क्रिएटर होंगे, हम ही उसके स्रष्टा होंगे। वह हमारे हाथ का खिलौना होगा। वैसा सत्य मुक्त नहीं कर सकता है जो मेरा बनाया हुआ हो। सत्य तो वह मुक्त करेगा जो है अनादि और अनंत। और जब मैं अपने को उसके रास्ते से हटा लूंगा,

तो ही वह मेरे भीतर प्रवेश कर सकेगा। और हम उसके रास्ते में दो भांति खड़े हुए हैं--या तो अपना ज्ञान और शास्त्र लेकर खड़े हुए हैं, या अपनी कल्पना और भक्ति लेकर खड़े हुए हैं। बस ये दो तरह के लोग हैं जो खड़े हुए हैं उसके लिए दरवाजे पर रोके हुए--या तो अपनी भक्ति से, या अपने ज्ञान से। दोनों ही हालतों में दीवाल खड़ी हो जाती है। दोनों ही जाने चाहिए।
आसान होता है यह कि हम शास्त्र छोड़ दें तो भक्ति की तरफ आ जाएं। एक एक्सट्रीम से दूसरी एक्सट्रीम पर आना हमेशा आसान होता है। एक अति से दूसरी अति पर आना हमेशा आसान होता है। लेकिन सवाल है बीच में रुक जाने का। सवाल एक अति से दूसरी अति पर आने का नहीं है।
कनफ्यूशियस एक गांव में गया था। उस गांव के बाहर ही था कि गांव के कुछ मित्र उसे मिले और उन्होंने कहा कि हमारे गांव में आए हो तो हम बड़ा स्वागत करते हैं और हम प्रार्थना करते हैं, हमारे गांव में भी एक बहुत बड़ा ज्ञानी है, क्या आप उससे मिलोगे?
कनफ्यूशियस ने कहा, उस ज्ञानी के संबंध में कोई खास बात हो तो बताओ, तो फिर मैं सोचूं कि मिलना चाहिए कि नहीं।
तो उन गांव के लोगों ने कहा कि बड़ा है वह ज्ञानी, एक काम को करने के पहले कम से कम तीन बार सोचता है, विचार करता है।
कनफ्यूशियस ने कहा कि मैं न मिलूंगा।
उन्होंने पूछा, क्यों?
कनफ्यूशियस ने कहा, एक बार सोचना कम होता है, तीन बार सोचना ज्यादा हो गया। दो बार काफी है, पर्याप्त है। कनफ्यूशियस ने कहा, एक बार सोचना कम होता है, तीन बार सोचना ज्यादा हो गया, एक अति से दूसरी अति पर चले गए। दो बार सोचना काफी है, बीच में रुकना काफी है। कनफ्यूशियस ने कहा कि जो बीच में खड़ा हो पाता है, वही ज्ञानी है, वही जानता है, वही जान सकेगा, वही खोजता है, वही खोज सकेगा।
बुद्ध के पास एक राजकुमार दीक्षित हो गया था, भिक्षु हो गया। जब राजकुमार था तब भी वह साधारण राजकुमार नहीं था, तब भी भोग की जो अंतिम चरम स्थिति हो सकती है वह उसने जानी थी। वह कभी मखमल के गद्दों के नीचे नहीं उतरा था। रास्ते पर भी चलता था तो कालीन बिछा दिए जाते थे। सारे राज्य की सुंदरतम स्त्रियां उसने इकट्ठी कर रखी थीं। सब भांति के नशे, सब भांति के भोग का आयोजन कर रखा था। वह सीढ़ियां चढ़ता था तो सीढ़ियों के किनारे सहारा लेने के लिए कोई लकड़ी या संगमरमर की चीज नहीं लगाई गई थी। नग्न स्त्रियों को सीढ़ियों के किनारे खड़ा कर लेता था, उनके कंधों पर हाथ रख कर ऊपर चढ़ता था। फिर वह हो गया भिक्षु।
आप कहेंगे कि ऐसा आदमी भिक्षु कैसे हो गया? और मैं कहूंगा, ऐसा ही आदमी अक्सर भिक्षु हो जाता है। एक अति से दूसरी अति पर जाना बिल्कुल आसान है। मन घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता है, एक कोने से दूसरे कोने, बीच में कभी नहीं ठहरता। इसलिए जो भोगी हैं वे अक्सर योगी हो जाते हैं। यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है, एक बीमारी से दूसरी बीमारी पर चले जाते हैं। बीच में रुकना, बीच में बड़ा कठिन है, बहुत आरडुअस है। क्योंकि मन कहता है कि इससे ऊब गए, अब वहां चलो। और मन हमेशा एंटी-थीसिस में सोचता है। इससे ऊब गए, तो इसके विरोध में चलो, शायद वहां कुछ मिलेगा।
तो यह जो भोगी राजकुमार था, बहुत ऊब गया होगा। अति से कोई भी ऊब जाता है, अति भोग से कोई भी ऊब जाता है। अति भोजन से भी कोई ऊब जाता है तो फिर उपवास करने लगता है लंबे-लंबे। वह अति भोजन से ऊबा हुआ आदमी घबड़ा गया, अति भोजन की पीड़ा से घबड़ा गया, अति भोजन की बीमारियों ने परेशान कर दिया। तो अब वह कहता है, हम उपवास करेंगे, उपवास ही धर्म है। पहले अति भोजन धर्म था, अब उपवास धर्म है, लेकिन सम्यक भोजन कभी भी धर्म नहीं बन पाता। या तो भूखे रहेंगे, यह धर्म है; या इतना खा लेंगे कि जीना मुश्किल हो जाए और मरना आसान, वह धर्म है; लेकिन बीच में रुकना कभी धर्म नहीं है।
वह भोगी राजकुमार योगी हो गया। बुद्ध के पास आया और कहा कि मैं भिक्षु होना चाहता हूं।
बुद्ध के शिष्य आनंद ने बुद्ध से पूछा कि यह तो अति भोगी है, यह कैसा,
इस तरफ एकदम?

बुद्ध ने कहा, मन ऐसे ही चलता है। अब उस अति से ऊब गया तो उसके विरोध में जा रहा है। अब उससे ऊब गया तो उसकी शत्रुता करेगा। अभी स्त्रियों के पीछे गया था, अब ब्रह्मचर्य का व्रत लेगा, अब स्त्रियों से भागेगा, जहां स्त्री दिखेगी वहीं से जंगल की तरफ भागेगा। अभी स्त्रियां जहां दिखती थीं उसी तरफ भागता था, अब स्त्री जहां भी दिखेगी उससे उलटा भागेगा। अब इसके मन में वह अति आ गई है, अब यह दूसरी अति पर जा रहा है।
बुद्ध ने उसे दीक्षा दे दी। और यही हुआ, दीक्षा देने के बाद उसने दूसरी अति शुरू कर दी। वह स्त्रियों को देखना बंद कर दिया, स्त्रियों को देखते ही से आंख बंद कर लेता था। उसने धन को छूना बंद कर दिया। उसने वस्त्र छोड़ दिए, वह नग्न हो गया। छाया होती, धूप होती, तेज गर्मी होती, तो वह छाया में न बैठता, धूप में जाकर बैठता। जब गहरी सर्दी होती, तो वह कमरे में न सोता, बाहर सोता। जब सारे भिक्षु भिक्षा मांगने जाते, तो दूसरे भिक्षु राजपथ पर चलते, वह सड़क के किनारे जहां कांटे होते वहां चलता। सब भांति वह उलटा हो गया।
तीन महीने में सूख कर हड्डी हो गया, आंखें बाहर निकल आईं, पैरों में छाले पड़ गए और खून बहने लगा।
बुद्ध उसके पास गए और उससे कहा कि मेरे मित्र, एक बात मुझे पूछनी है। मैंने सुना है कि तुम जब राजकुमार थे तो तुम वीणा बजाने में बहुत कुशल थे।
क्या मैं तुमसे पूछूं कि जब तार बहुत ढीले होते हैं तो संगीत उठता है या नहीं?
उस युवक ने कहा कि नहीं, तार ढीले हों तो संगीत कैसे उठेगा? उन पर चोट
ही नहीं हो पाती।
और, बुद्ध ने पूछा, तार बहुत कसे हों तो संगीत उठता कि नहीं?
तो उस भिक्षु ने कहा कि नहीं, तब भी नहीं। तब तार टूट जाते हैं, संगीत नहीं उठता।
तो बुद्ध ने कहा, संगीत कब उठता है?
उस युवक ने कहा, संगीत तब उठता है जब तार न तो ढीले होते हैं, न कसे होते हैं। एक ऐसी भी जगह है तारों की जब न तो कहा जा सकता है कि वे ढीले हैं, न कहा जा सकता है कि कसे हैं, तब उठता है संगीत।
तो बुद्ध ने कहा, मैं जाता हूं, यही कहने आया था, स्मरण रखनाः जो वीणा में नियम है, वही जीवन में भी। जीवन में भी संगीत तभी उठता है जब तार न तो ढीले होते हैं और न कसे। और एक ऐसा बिंदु जीवन में भी है जहां दोनों अतियां नहीं होतीं और मध्य होता है, वहीं मध्य से संगीत उठता है।
मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं, न तो तर्क और शास्त्र और ज्ञान की अति और न अतर्क, विश्वास, कल्पना, भक्ति और समर्पण की अति, दोनों से सत्य का संगीत नहीं उठता है। उठता है मध्य से, वहां बीच में ठहर जाने से। वह बीच में ठहर जाना क्या है, उसकी बात मैं कल करूंगा। अभी की थोड़ी सी बातें कहीं, इन पर विचार करेंगे, सोचेंगे। कल्पना की जो हमारे भीतर संभावना है, उसको समझेंगे। अगर वह समझ में आ जाए तो उसका छूट जाना कठिन नहीं है। परमात्मा की कोई कल्पना नहीं करनी है, अगर परमात्मा को जानना हो। परमात्मा का कोई सपना नहीं देखना है, अगर सच में ही परमात्मा के प्रति जागना हो। जो परमात्मा की कल्पना करेगा, उसका परमात्मा अपना होगा, परमात्मा नहीं। जो सत्य की कल्पना करेगा, वह कल्पना उसकी अपनी होगी, सत्य नहीं। सत्य तक पहुंचने के लिए छोड़ देनी होंगी सारी कल्पनाएं, सारी धारणाएं। सारे स्वप्न, सारे हमारे निर्मित विचार और कंसेप्ट्स छोड़ देने होंगे, विदा कर देने होंगे। परमात्मा की सारी मूर्तियां विदा कर देनी होंगी। रह जाएगा खाली मन, खाली चित्त। उस खाली चित्त में कुछ हो सकता है।
ज्ञान और कल्पना से जो मुक्त है, वहां कुछ हो सकता है, वहां कुछ निश्चित हो सकता है। वहीं है बिंदु, वहीं है वह मध्य बिंदु जहां कोई घटना घट सकती है।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े दूर-दूर हट जाएं, कोई किसी
को छूता हुआ न हो। दो बातें ध्यान के संबंध में आपसे कह दूं, फिर ध्यान के लिए बैठें।

परंपरा से ध्यान और साधना को एक श्रम, एक प्रयत्न, एक इफर्ट, एक अभ्यास समझा गया है। हम भी उन्हीं बातों को सब सुनते रहे हैं। तो जब हम ध्यान के लिए बैठते हैं तो हमारे मन में एक प्रयास, एक इफर्ट की भावना होती है कि हम ध्यान कर रहे हैं, हम ध्यान करें, ठीक से करें। इस तरह के भाव तनाव पैदा करते हैं, टेंशन पैदा करते हैं। और इस तरह के भावों के कारण ध्यान होना असंभव हो जाता है, क्योंकि ध्यान के लिए चाहिए तनाव से शून्य चित्त जिसमें कोई तनाव न हो। लेकिन जब भी आप कुछ करने के ख्याल से भरते हैं तो तनाव पैदा हो जाता है। साधना को, ध्यान को हम बड़ा गुरुतर, बड़ा गंभीर कार्य समझते हैं। उससे भी तनाव पैदा हो जाता है।
नहीं; तो मैं निवेदन करूंगा, ध्यान को उस भांति लें जैसे कोई खेल को लेता है। ध्यान को बहुत गंभीरता से, बहुत कठोरता से, बहुत प्रयास से न लें। ऐसे लें जैसे अपनी मौज में बैठे हैं, सरलता से, शांति से, बिना तनाव के। कोई बहुत बड़ा काम नहीं कर रहे हैं।
धार्मिकों ने ऐसा भाव फैला रखा है कि कोई आंख बंद करके बैठा है तो बहुत भारी काम कर रहा है। इससे अहंकार की तृप्ति होती है कि मैं बड़ा भारी काम कर रहा हूं, देखो आधे घंटे तक रीढ़ को सीधा किए हुए बैठा हूं। कोई उलटा खड़ा हो जाता है सिर के बल तो वह कहता है, मैं बहुत बड़ा काम कर रहा हूं, देखो मैं शीर्षासन कर रहा हूं।
सर्कस नहीं है धर्म कोई कि आप बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। और सर्कसी चित्त नहीं होना चाहिए। कुछ खास काम नहीं कर रहे हैं, मौज में बैठे हैं, शांति से बैठे हैं, आनंद से बैठे हैं, हलके-फुलके होकर बैठे हैं। कोई बहुत सीरियसली नहीं, बहुत हलके मन से, बहुत सरलता से--जैसे छोटे-छोटे बच्चे खेलते रहते हैं वैसे।
तो साधना को, ध्यान को अति गंभीरता के भार से नहीं लेंगे, बहुत मौज से बैठ जाएंगे। तो तनाव नहीं आएगा। नहीं तो तनाव आ जाता है। कुछ कर नहीं रहे हैं, थोड़ी देर को कुछ भी नहीं कर रहे हैं, न करने की स्थिति में बैठे हुए हैं। फिर आवाजें सुनाई पड़ेंगी, तो उन आवाजों को अप्रतिरोध से, नॉन-रेसिस्टेंस से सुनना है। कोई विरोध नहीं करना है उनका कि यह कौआ क्यों बोल रहा है? यह बच्चा क्यों रोने लगा? यह कोई आदमी क्यों खांसा? नहीं, कुछ भी नहीं। जो हो रहा है, अपने भीतर से निकल जाने देना। आएगा, गूंजेगा, निकल जाएगा। मौन से, शांति से उसे देखते रहना है।
हजारों वर्ष से यह भी सिखाया गया है कि ध्यान में कुछ सुनाई नहीं पड़ना चाहिए, तभी ध्यान है। कुछ पता नहीं चलना चाहिए आस-पास का, तभी ध्यान है। वे सब एकाग्रताएं हैं, मूर्च्छाएं हैं; मूर्च्छित हो जाएंगे तो कुछ
भी पता नहीं चलेगा। लेकिन जब जाग्रत होंगे तो और ज्यादा पता चलेगा। मूर्च्छित हो जाएंगे तो कुछ भी पता नहीं चलेगा। कुछ भी होता रहे, मकान में आग लग जाए, यहां कोई कुछ भी उपद्रव हो जाए, कोई बम गिरा दे, तो पता नहीं चलेगा, मूर्च्छित होंगे तो, सोए होंगे तो। लेकिन जब भीतर पूरी तरह जागे होंगे तो एक सूई भी गिरेगी तो उसकी आवाज भी पता चलेगी। जितना चित्त शांत होगा, जितना चित्त जाग्रत होगा, उतना ही सेंसिटिव हो जाएगा, उतना ही संवेदनशील हो जाएगा। सब सुनाई पड़ेगा, एक पत्ता भी हिलेगा तो उसकी खड़क सुनाई पड़ेगी, हवा चलेगी तो पता चलेगा।
तो यह मन में ख्याल न रखें कि अरे यह सब पता चल रहा है! यह पता चलना चाहिए। और जितने आप जागरूक होंगे, उतनी ही छोटी-छोटी ध्वनियां--अभी कोई छोटे झींगुर बोल रहे होंगे, अभी पता नहीं चल रहे, लेकिन जब शांत बैठेंगे तो वे भी पता चलेंगे। धीरे-धीरे चारों तरफ ध्वनियों का एक संगीत गूंजने लगेगा। उस संगीत में खो नहीं जाना है, उस संगीत में डूब नहीं जाना है। उस संगीत के प्रति जागे रहना है, होश से भरे रहना है। अगर डूब गए तो वह तन्मयता हो गई, वह एक तरह की भक्ति हो गई, वह एक तरह का सम्मोहन हो गया।
लेकिन अगर नहीं डूबे, जागे रहे, अवेयर रहे, तो वह ध्यान हुआ।
तो अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।
शरीर को बिल्कुल शांति से शिथिल छोड़ दें, कोई तनाव शरीर पर न रखें।

रोम रोम रस पीजिए
छठवां प्रवचन

आध्यात्मिक विकास में चरित्र का स्थान

किसी मित्र ने पूछा हैः वैयक्तिक आध्यात्मिक विकास में चरित्र का कोई स्थान है या नहीं? किसी और ने भी पूछा है कि ज्ञान छोड़ देना पड़ेगा, भक्ति छोड़ देनी पड़ेगी, तब भी नैतिकता को तो पकड़ना होगा, आचरण को तो पकड़ना होगा! एक और मित्र ने भी, नीति और धर्म का क्या संबंध है, इस संबंध में पूछा है।

सबसे पहले इसी प्रश्न को मैं ले लेता हूं।
अब तक ऐसी ही धारणा रही है कि नैतिक हुए बिना धार्मिक नहीं हुआ जा सकता है। नैतिक जीवन को साधा जाए, मॉरेलिटी को, तो ही कोई धार्मिक हो सकता है। नीति धर्म की पहली सीढ़ी है, ऐसी धारणा रही है।
मेरे देखे, बात बिल्कुल उलटी है। नैतिक होने से तो कोई धार्मिक नहीं होता, लेकिन जो धार्मिक हो जाता है वह जरूर नैतिक हो जाता है। आचरण केंद्र नहीं है जीवन का, केंद्र तो है अंतरात्मा, अंतस। तो जिसका अंतःकरण परिवर्तित हो जाता है, उसका आचरण तो निश्चित ही बदल जाता है। लेकिन आचरण कोई बदल ले और सोचे कि इससे अंतःकरण बदल जाएगा, तो भूल हो जाती है।
आचरण तो वस्त्रों की भांति है, जो ऊपर से पहना जा सकता है, उससे आत्मा
के बदलने का कोई संबंध नहीं है। आचरण तो ऊपर से ओढ़ा जा सकता है। नैतिक आचरण ओढ़ा हुआ आचरण होता है। उसे ओढ़ने की हजार विधियां हैं। लेकिन वस्त्रों से ज्यादा गहरा वह कभी नहीं हो पाता है। अंतरात्मा तक उसकी कभी पहुंच नहीं हो पाती। बल्कि जितना-जितना हम ऊपर से आचरण को ओढ़ लेते हैं, अंतस में ठीक उससे विरोधी वृत्तियों को हम दबाते चले जाते हैं और जीवन में एक सहजता, एकरसता और संगीत पैदा होने की बजाय एक द्वंद्व, एक कांफ्लिक्ट पैदा हो जाता है। अंतर्द्वंद्व से भर जाता है व्यक्ति। भीतर होती है हिंसा, आचरण में अहिंसा को ओढ़ लेता है। भीतर होती है घृणा, ऊपर प्रेम की मुस्कुराहट को सीख लेता है। भीतर होता है क्रोध, ऊपर से क्षमा के शब्द अभ्यास कर लेता है। ऐसे बाहर से अपने को सजा लेता है, और भीतर? भीतर होती है ठीक विपरीत स्थिति। ऊपर होता है ब्रह्मचर्य, भीतर होता है सेक्स, भीतर होती है कामवासना। क्यों? क्योंकि भीतर का तो कोई परिवर्तन नहीं हुआ, आचरण को बदल लिया। आचरण की बदलाहट का क्या अर्थ होगा?
आचरण की बदलाहट का अर्थ होगाः दमन, सप्रेशन। क्या करेंगे हम? भीतर है क्रोध और शिक्षाएं कहती हैं क्रोध करना बुरा है, तो फिर हम क्रोध न करने की कोशिश करेंगे, यही करेंगे। क्रोध को दबाएंगे, न निकलने देंगे; क्रोध से लड़ेंगे, न उसको अपने ऊपर प्रभावी होने देंगे। तो क्या होगा? क्रोध की शक्तियां भीतर दमित हो जाएंगी। लेकिन नष्ट नहीं होंगी। और तब क्रोध नये- नये रास्तों से निकलने की कोशिश करेगा, नये-नये मार्ग खोजेगा। ये मार्ग पहले मार्ग से भी ज्यादा विकृत होंगे। पहला मार्ग तो फिर भी स्वाभाविक था, ये मार्ग अप्राकृतिक होंगे। और क्रोध रास्ते खोजेगा निकलने के। अगर कोई रास्ते न देंगे तो स्वप्न में निकलेगा, जिसे दिन में दबाएंगे वह फिर रात सपनों में सामने खड़ा हो जाएगा।
अच्छे लोग बुरे सपने देखते हैं। जिनको हम सच्चरित्र कहते हैं वे दुश्चरित्रता के सपने देखते हैं। देखेंगे ही! क्योंकि दिन भर जब तक वे जागे हुए हैं, तब तक तो सम्हाले रखेंगे, दबाए रखेंगे, लेकिन जब सो जाएंगे तब? तब जो दबाया था वह निकलना शुरू हो जाएगा।
ऋषि-मुनियों की हम कथाएं पढ़ते हैं, कि उनको सताने के लिए, डिगाने के लिए अप्सराएं आकाश से उतरा करती थीं। क्या आप सोचते हैं, भगवान ने कोई ऐसा डिपार्टमेंट, कोई मिनिस्टरी खोल रखी होगी कि ऋषि-मुनियों को सताए, अप्सराएं भेजे? क्या पागलपन की बात है! लेकिन पुरानी नैतिकता कोई और व्याख्या नहीं खोज सकती थी इसलिए उसने कहा कि ऋषि-मुनियों को सताने के लिए इंद्र अप्सराओं को भेज देता है। लेकिन किसको क्या पड़ी है किसी ऋषि-मुनि को

सताने की? और इंद्र के जिम्मे यह काम, यह पोर्टफोलियो काहे को सौंपा जाता है कि वह यह धंधा करे? और यह धंधा चल रहा है।
नहीं; कहीं से कोई अप्सराएं कभी नहीं आई हैं। लेकिन जिनको हम ऋषि-मुनि कहते हैं, उन्होंने अगर अपनी कामवासना को बहुत तीव्रता से दबाया हो, भीतर दमन किया हो, दिन-रात चौबीस घंटे, वर्षों तक उसके ऊपर चढ़ कर बैठे रहे हों अपनी वासना के, तो किन्हीं भी कमजोर क्षणों में वह वासना वापस लौट सकती है। और दबाई हुई वासना इतनी तीव्र हो जाती है कि अप्सराएं बिल्कुल सजीव मालूम पड़ सकती हैं। ये अप्सराएं कहीं और से नहीं, खुद के अचेतन मन, खुद के अनकांशस माइंड से आती हैं।
अगर आप उन रास्तों से निकलते होते जहां ऋषि-मुनियों को अप्सराएं सता रही हैं, तो आपको कोई अप्सराएं दिखाई न पड़तीं। वे सिर्फ उन्हीं को दिखाई पड़ रही थीं। वे कहीं और से नहीं, भीतर से आई थीं।
आजकल के ऋषि-मुनियों को अप्सराएं बहुत कम सताती हैं, क्योंकि आजकल के ऋषि-मुनि उतना सप्रेशन नहीं करते, उतना दमन नहीं करते। उनको अगर कोई सताता भी होगा तो पास-पड़ोस की स्त्रियां सताती होंगी, कोई आकाश की अप्सराएं सताने नहीं आतीं। दमन उतना ज्यादा नहीं है अब। जितना दमन होगा उतना वेग मिल जाता है वासनाओं को।
हम ऋषि-मुनियों की कथाएं पढ़ते हैं कि वे क्रोध में आ जाते थे तो अभिशाप दे देते थे।
कोई ऋषि और मुनि अभिशाप देगा? जन्मों-जन्मों तक के लिए किसी को दुख पहुंचाना चाहेगा? यह दबाया हुआ क्रोध है जो अभिशाप बन जाता है। बहुत दिन तक दबाया गया, जब फूटेगा तो पूरी ताकत से फूटेगा। आप भी किसी पर क्रोधित हो जाते हैं तो जन्मों-जन्मों के लिए उसको कष्ट नहीं देना चाहेंगे। लेकिन ऋषि-मुनि देना चाहते थे। क्या बात रही होगी?
दबाया होगा जीवन भर क्रोध को, क्रोध हो गया होगा इकट्ठा, कनडेंस्ड, सघन हो गया होगा चित्त के भीतर। और जब किसी पर टूट पड़ा होगा तो फिर छोटा- मोटा कष्ट देने से वह राजी नहीं हो सकता, वह तो जन्मों-जन्मों तक दुख देने की आकांक्षा करेगा, नरकों में सड़ाने की आकांक्षा करेगा। यह दबे हुए क्रोध का परिणाम है।
नैतिक पुरुष करता है दमन। और दमन से मनुष्य टूट जाता है खंड-खंडों में। और जो मनुष्य जितने खंडों में टूट जाता है उतने ही दुख में पड़ जाता है। स्वाभाविक, जब हम अपने क्रोध को गाली देने लगते हैं, अपनी वासना का दमन और निंदा करने लगते हैं, तो हम कर क्या रहे हैं? हम किससे लड़ रहे हैं? हम खुद अपने से लड़ रहे हैं। मतलब हम अपने को दो हिस्सों में तोड़ रहे हैं, एक हिस्से को कह रहे हैं बुरा और एक को कह रहे हैं अच्छा। जो अच्छा है उसे बुरे के ऊपर उसकी छाती पर बिठालने की कोशिश कर रहे हैं। कौन कर रहा है यह कोशिश और किसके लिए कर रहा है?
जैसे मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाने लगूं, तो कोई जीतेगा? मेरे ही दोनों हाथ हैं, दोनों में मेरी ही शक्ति लग रही है, तो कैसे कोई हाथ जीत सकता है? हां, यह हो सकता है, एक हाथ ऊपर हो जाए, दूसरा नीचे हो जाए। और यह भी ज्यादा देर नहीं रह सकता, क्योंकि ताकत तो दोनों के पीछे मेरी है। और कोई हाथ कभी जीत तो सकता नहीं है, क्योंकि दोनों हाथ मेरे हैं और दोनों के पीछे मेरी ताकत है। जीतेगा तो कोई भी नहीं, हारेगा कोई भी नहीं। एक बात हो जाएगी--दोनों को लड़ाने में मैं टूट जाऊंगा, मेरी शक्ति नष्ट हो जाएगी। क्रोध से लड़ रहे हैं, क्रोध किसकी शक्ति है? सेक्स से लड़ रहे हैं, सेक्स किसकी शक्ति है? आपकी! लड़ कौन रहा है? आप! अपनी ही शक्ति को दो तरफ से विभाजित करके लड़ाई चला रहे हैं, इससे क्या होगा? इससे तो क्षीणता होगी! इससे आप बलवान थोड़े ही होंगे, कमजोर होंगे! इससे आप विकसित थोड़े ही होंगे, टूटेंगे और खंडित होंगे।
नैतिकता तो एक दमन और द्वंद्व पर खड़ी होती है। धर्म बड़ी और बात है। धर्म द्वंद्व और संघर्ष नहीं है। धर्म तो समस्त जीवन की शक्तियों का सम्यक बोध है।
और यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति क्रोध को ठीक से समझ लेता है, उसका क्रोध बिना प्रयास किए क्षमा बन जाता है। और जो व्यक्ति अपनी काम

की वासना को सम्यकरूपेण समझ लेता है, जान लेता है, पहचान लेता है, खोज लेता है, उसकी काम की शक्ति ही ब्रह्मचर्य बन जाती है। ब्रह्मचर्य काम का विरोध नहीं है, काम का ही परिवर्तित, काम का ही परिवर्तित रूप है, उसका ही ट्रांसफार्मेशन है।
नैतिकता सिखाती हैः विरोध। धर्म सिखाता हैः सम-परिवर्तन। धर्म सिखाता हैः ट्रांसफार्मेशन। धर्म है जीवन की शक्तियों का परिवर्तन। जीवन में धर्म की दृष्टि से कुछ भी बुरा नहीं है। ठीक से प्रयुक्त शक्तियां हैं और गलत ढंग से प्रयुक्त शक्तियां हैं। कोई शक्ति बुरी नहीं है, धर्म की दृष्टि से। पूरे जीवन में जो कुछ भी है, कुछ भी बुरा नहीं है। अगर हम सोए हुए हैं, तो जो शक्तियां हैं उनका दुरुपयोग होना निश्चित है। और अगर हम जागे हुए हैं, तो जो शक्तियां हैं उनका सदुपयोग होना निश्चित है। सवाल यह नहीं है कि आपके भीतर कौन सी चीज बुरी है, सवाल केवल इतना है कि आप सोए हुए आदमी हैं या जागे हुए आदमी हैं।
धर्म की दृष्टि में प्रश्न सोने और जागने का है। धर्म की दृष्टि में, क्रोध बुरा है और क्षमा अच्छी है, और सेक्स बुरा है और ब्रह्मचर्य अच्छा है, ऐसा कोई भाव नहीं है। क्योंकि धर्म तो समग्र शक्तियों का स्वीकार है। और शक्ति क्या कभी कोई बुरी होती है? शक्ति तो होती है तटस्थ, शक्ति न तो बुरी होती है और न अच्छी होती है। अगर व्यक्ति सोया हो तो शक्ति खतरनाक हो जाती है, क्योंकि नींद में हम उसका जो भी उपयोग करेंगे वह गलत होगा। जाग जाएं तो शक्ति साथी हो जाती है, क्योंकि जागने पर जो भी उपयोग हम करेंगे उसका वह सम्यक होगा, वह ठीक होगा।
तो मैं आपको कहूंगा, नैतिकता ने सिखाया है कंडेमनेशन, नैतिकता ने सिखाई है निंदा कुछ शक्तियों की और कुछ शक्तियों की प्रशंसा; और इन दोनों के बीच द्वंद्व खड़ा कर दिया है और हर मनुष्य को पीड़ित कर दिया है।
दुनिया में मनुष्य-जाति के भीतर थोड़े से लोग ही सुगंध को उपलब्ध हो सके, उसका सारा जिम्मा नैतिकता पर है। क्योंकि जो लोग अंतर्द्वंद्व से भर जाते हैं, उनके जीवन में सुगंध कभी पैदा ही नहीं हो सकती। वे तो अपने भीतर लड़ते हैं, घुलते हैं, नष्ट होते हैं, दुखी होते हैं, पीड़ित होते हैं, चिंतित होते हैं और टूटते हैं। नैतिकता की इस शिक्षा ने, जो कहती है आचरण को ठीक कर लो, सारे जीवन को विकृत और विषाक्त कर दिया है। सबसे बड़ा पायजन, सबसे बड़ा जहर नैतिकता की यह शिक्षा हुई है, जो कहती है आचरण को बदल लो।
धर्म यह नहीं कहता कि आचरण को बदल लो। धर्म कहता हैः अंतस को जगाओ। और अंतस जैसे ही जागता है, आचरण अपने आप बदलता है, उसे बदलना नहीं पड़ता है। जैसे बैलगाड़ी चलती है तो उसके चाक के निशान पीछे बन जाते हैं, उनको बनाना नहीं पड़ता है। वैसे ही जब अंतःकरण जागता है तो पीछे से नैतिकता के चिह्न अपने आप आने शुरू हो जाते हैं। नैतिकता बाइ-प्रोडक्ट है। नैतिकता वैसे ही है जैसे कोई गेहूं को बोता है तो भूसा अपने आप पैदा हो जाता है। कोई भूसे को पैदा करने के लिए बोना नहीं पड़ता; गेहूं पैदा होते हैं, उनके साथ भूसा भी पैदा हो जाता है। नैतिकता भूसे की भांति है, धर्म गेहूं की भांति। जब भीतर अंतःकरण जागता है तो नैतिकता अपने आप चली आती है। नैतिकता तो छाया है। और स्मरण रखें, छाया को कभी भी सीधा नहीं लाया जा सकता है। हम आपको तो निमंत्रित कर सकते हैं, आप आएंगे तो आपकी छाया भी आ जाएगी। लेकिन आपसे कहें कि तुम्हारी तो हमें कोई फिक्र नहीं, हम आपकी छाया को निमंत्रित करते हैं। तो अगर आप नहीं आए तो फिर छाया भी नहीं आएगी। छाया तो आपके पीछे आती है।
नीति है छाया धर्म की, धर्म आता है तो नीति आती है। लेकिन हजारों साल
से हम नीति को लाने की कोशिश कर रहे हैं। वह नीति अब तक नहीं आ पाई है; कभी नहीं आएगी। वह बात ही गलत है, निमंत्रण गलत दे दिया गया है। छाया को निमंत्रण कभी नहीं दिया जाता। उसको निमंत्रण देने का कोई अर्थ ही नहीं है, वह धोखा है, आत्मवंचना है।
परिणाम यह हुआ है कि नीति तो नहीं आ पाई--धर्म तो आया ही नहीं, नीति भी नहीं आ पाई--आया है पाखंड। नीति के नाम से आया है अभिनय, आई है एक्टिंग। हम किसी भांति कोशिश करके नैतिक दिखाने की कोशिश करते रहते हैं। और यह कोशिश करने में जो केंद्र है वह कोई बड़ी शुभ स्थिति नहीं है, वह केंद्र है

अहंकार। नैतिक मनुष्य के अहंकार को तृप्ति देता है समाज, इसलिए वह नैतिक होने की कोशिश करता, दिखलाता रहता है। लोग कहते हैं, बहुत सज्जन हैं, बहुत भले हैं, संत पुरुष हैं, साधु हैं, फलां हैं, ढिकां हैं। बचपन से ही उसके अहंकार को हम सजाना शुरू कर देते हैं कि यह आदमी बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है। उसके आस-पास अहंकार के एक बल, पोषण मिलने लगता है। अब वह बुरा होने का साहस खो देता है, क्योंकि बुरा होने का मतलब अहंकार को चोट पहुंचेगी। लोग क्या कहेंगे? तो लोग क्या कहेंगे, यह हमारी सारी नीति का आधार बना हुआ है। यह आधार बिल्कुल झूठा है। इसीलिए दुनिया में नीतियां अलग-अलग हैं। धर्म तो अलग-अलग नहीं हो सकता है। क्योंकि अलग-अलग जगह लोग अलग-अलग बातों की प्रशंसा करते हैं, इसलिए अलग-अलग जगह के नैतिक लोग अलग-अलग ढंग के होते हैं। हिंदुस्तान में जिस बात की प्रशंसा की जाती है उस भांति का नैतिक व्यक्ति होता है, चीन में उस भांति का, तिब्बत में तीसरी भांति का। यह जो नैतिक पुरुष का भेद है सारी दुनिया में, यह जो सज्जन और अच्छा आदमी है, इसका जो भेद है, यह क्यों है? लोग क्या कहेंगे, इस पर इसका सब निर्भर है, सारी बात इस पर टिकी हुई है, आधार इस पर है।
धार्मिक मनुष्य यह कभी नहीं सोचता कि लोग क्या कहेंगे। धार्मिक मनुष्य तो देखता है कि उसकी आत्मा क्या कहती है। वह आदमी तो कमजोर है, गुलाम है, जो यह सोचता है कि लोग क्या कहेंगे। वह आदमी तो परतंत्र है। धार्मिक चित्त तो देखता है कि मेरे प्राण क्या कहते हैं! यह सारी दुनिया कुछ कहे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
नैतिक व्यक्ति जिसको हम कहते हैं वह तो कमजोर आदमी होता है। धार्मिक व्यक्ति बहुत शक्तिशाली बात है।
यह जो हमने नैतिकता का एक आवरण खड़ा किया हुआ है, इसकी कुछ उपादेयता समाज को रही है। समाज के सामने कुछ प्रश्न रहे हैं, समाज के सामने कुछ समस्याएं रही हैं, उनको उसे हल करना है। उसने तीन तलों पर उसको हल करने की कोशिश की है। प्राथमिक तल पर उसने अदालतें बिठाई हैं, कानून बनाया है। कोई चोरी न कर सके, झूठ न बोल सके, कोई किसी की संपत्ति न ले जा सके, कोई किसी की हत्या न कर सके, उसने अदालतें और कानून बनाए हैं।
लेकिन थोड़े ही दिन में समाज को यह समझ में आ गया कि जो बहुत होशियार लोग हैं अदालत को धोखा दे सकते हैं। अदालत के चक्कर में, जो कम होशियार लोग हैं वे फंस जाते हैं; जो होशियार लोग हैं वे तो खुद मजिस्ट्रेट हो जाते हैं। तो अदालत क्या करेगी? आखिर अदालत तो आदमी के हाथ में छोड़नी पड़ेगी! तो जो आदमी होशियार हैं वे चोरों का फैसला करने लगते हैं, जो कम होशियार हैं वे चोरी में फंस जाते हैं और सजा भोगते हैं। दुनिया में दो तरह के चोर हैं-- एक होशियार चोर, वे जेल के बाहर रहते हैं; और कम होशियार चोर, वे जेल के भीतर रहते हैं। बहुत जल्दी समाज को पता चल गया होगा कि यह तो कठिन है, यह तो बात हल नहीं होती दिखती।
तो फिर एक-एक व्यक्ति के भीतर अंतःकरण, कांशियंस पैदा करने की कोशिश
की गई--कि भीतर एक रुकावट पैदा करो कि उसका हृदय कहने लगे कि तुम यह गलत करते हो, मत करो। तो छोटे बच्चे के मन में हमने भरने की कोशिश की--चोरी बुरी है, झूठ बोलना बुरा है, यह बुरा है, वह बुरा है। उसे भय दिया, सब तरह के प्रलोभन, भय, उसको हमने सिखाया, उसके अचेतन मन में हमने कुछ धारणाएं बिठा दीं। जब वह चोरी करने जाए तो उसके भीतर से कोई कहने लगे कि चोरी करना बुरा है। एक भय उसको भीतर से रोकने के लिए। बाहर अदालत है रोकने के लिए; भीतर भी हमने एक अंतःकरण की शिक्षा दी है जो रोके।
लेकिन इतना भी काफी नहीं है, क्योंकि अगर अंतःकरण के खिलाफ कोई दो- चार-दस दफा प्रयोग करता चला जाए तो फिर वह आवाज क्षीण हो जाती है और फिर वह आवाज बोलना बंद हो जाती है। तो तीसरी व्यवस्था हमने यह की है कि परलोक का भय है और नरक जाने का, और स्वर्ग का प्रलोभन है; और परमात्मा ऊपर बिठाया हुआ है। नीचे पुलिस का आदमी है, ऊपर परमात्मा। वह सुप्रीम कांस्टेबल की तरह उसको बिठाया हुआ है। वह ऊपर से सबको देख रहा है, निर्णय करेगा, मरने पर सजा देगा, नरक में भेजेगा, जो अच्छे लोग होंगे उनको पुरस्कार देगा।
ऐसी तीन तलों पर हमने व्यवस्था की है, समाज का जीवन किसी भांति चल सके इसलिए। इसका धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। और यह हमें करना इसलिए पड़ा है

कि हम मनुष्य को अब तक धार्मिक बनाने में सफल नहीं हो पाए, इसलिए नीति की व्यवस्था करनी पड़ी है। नीति की व्यवस्था धार्मिक व्यवस्था नहीं, धर्म के असफल होने के कारण करनी पड़ी है। सब्स्टीट्यूट है यह, यह पूरक है, किसी भांति इससे काम चला रहे हैं। जिस दिन धार्मिक मनुष्य का जन्म हो सकेगा उस दिन नीति की कोई भी जरूरत नहीं रह जाएगी। नीति की जरूरत है अधार्मिक मनुष्य के लिए, मजबूरी है, नीति एक मजबूरी है समाज के सामने। उसकी किसी तरह व्यवस्था कर ली है। लेकिन जो उसको ही धर्म समझ लेते होंगे, वे गलती में पड़ जाते हैं।
नीति नहीं है धर्म। धर्म तो बात ही और है, दिशा ही और है। नीति है आचरण
की व्यवस्था, धर्म है प्राणों का परिवर्तन। आचरण हैं वस्त्र की भांति, ओढ़े जा सकते हैं, बदले जा सकते हैं। इसलिए आज जो सज्जन है, कल दुर्जन हो सकता है; आज जो संत है, कल पापी हो सकता है। लेकिन जो आज धार्मिक है वह कल अधार्मिक नहीं हो सकता। यह असंभावना है कि जो धार्मिक है वह अधार्मिक हो जाए। क्योंकि धर्म में तो बदल जाते हैं प्राण; और नीति में बदलते हैं केवल वस्त्र, कल फिर बदले जा सकते हैं, आत्मा नहीं ट्रांसफार्म होती है।
यह जो ख्याल है कि नैतिकता साधे बिना धर्म नहीं सधेगा, गलत है। उचित
और सही दृष्टि तो यह है कि धर्म साधे बिना नैतिकता नहीं सधेगी। धर्म आना चाहिए जीवन में। धर्म की दृष्टि खंड-खंड करने की दृष्टि नहीं है। धर्म यह नहीं कहता कि यह बुरा है, इसे छोड़ दो। धर्म तो कहता है कि जीवन में जो कुछ है, उस सब में कुछ निहित अभिप्राय है। जीवन की जो भी शक्ति है उसमें कुछ निहित अभिप्राय है, कोई अर्थ है। उस अर्थ को खोजना है, उस अर्थ को पाना है, उस अर्थ को उघाड़ना है।
जैसे बीज है, तो बीज तो बिल्कुल व्यर्थ मालूम होता है, उसमें तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता कि क्या है। लेकिन उसे हम बो दें, तो उसमें से अंकुर निकल आता है। और तब हमें पता चलता है कि वह जो ठोस कंकड़ के जैसा दिखाई पड़ने वाला बीज था, वह भी अपने भीतर प्राणों को और शक्ति को छिपाए था। उसमें से अंकुर आया, उसमें से पत्ते आए, वह बड़ा हुआ, आकाश को छूने वाला पौधा बन गया, वृक्ष बन गया, उसमें फल आए, फूल आए, उसमें सुगंध आई, उसमें आनंद की थिरक आई, उसमें संगीत आया, उसमें सब कुछ आया। और एक बीज था, उस बीज में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था।
मनुष्य को बीज की तरह शक्तियां मिली हुई हैं। जो उन पर ठीक से श्रम करता है, जो उनको समझता है, उनके बोध को उपलब्ध होता है, वह उन बीजों को धीरे-धीरे वृक्षों में परिणत कर लेता है, और वे बीज फूल बन जाते हैं, सुगंध बन जाते हैं। जीवन में कुछ भी बुरा नहीं है। बीज की तरह जो पड़ा है वह व्यर्थ दिखाई पड़ता है, उससे हम छुटकारा पाना चाहेंगे तो गलती हो जाएगी। अगर किसी आदमी के भीतर से उसकी सारी शक्तियां, जिनको नैतिकता कहती है कि गलत हैं, छीन ली जाएं, तो आदमी बिल्कुल ही, बिल्कुल ही निःसत्व हो जाएगा, इंपोटेंट हो जाएगा, उसके भीतर कुछ भी नहीं बचेगा।
अगर हम क्रोध को छीन लें बिल्कुल, सेक्स को बिल्कुल छीन लें, क्या बचेगा आदमी के पास? आदमी बिल्कुल जड़ हो जाएगा, उसके भीतर कोई गति नहीं रह जाएगी।
नहीं; सेक्स को छीनना नहीं है और न क्रोध को छीन लेना है, परिवर्तित करना है। क्रोध को विकसित करना है, उसके बीज को वृक्ष तक ले जाना है। और तब क्रोध के भीतर से ही क्षमा के फूल लगते हैं। और तब सेक्स के बीज से ही विकसित होता है ब्रह्मचर्य। और तब घृणा की शक्ति ही प्रेम बन जाती है। ये विरोधी चीजें नहीं हैं, ये एक ही अविकसित चित्त का विकसित रूप है। कोई आदमी अपने घर में खाद लाकर रख ले, तो दुर्गंध पैदा हो जाएगी, घर में रहना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन उसी खाद को कोई बगिया में डालता है, तो वही खाद थोड़े दिनों में फूलों की यात्रा बन कर सुगंध से भर उठती है, सुगंध फैला देती है। खाद की दुर्गंध ही सुगंध बन जाती है फूलों से यात्रा करके। और कोई खाद को ही रख ले तो जीना मुश्किल हो जाए और कोई फूलों को घर में उगा ले तो जीने में एक अर्थ आ जाता है।
हमारे भीतर भी शक्तियां उपलब्ध हैं। कुछ लोग उन्हें खाद की भांति ही रखे रहते हैं और दुर्गंध से भर जाते हैं। इससे वे नाराज अगर शक्तियों पर

होने लगें तो गलती हो जाएगी, यह नाराजगी शक्तियों पर करनी ठीक नहीं है। जानना चाहिए कि मुझे कुछ मिला था जिसको मैंने विकसित नहीं किया और खाद की तरह घर में रखे हुए हूं, तो गंदगी तो फैलेगी, दुर्गंध फैलेगी। मुझे उस शक्ति को बोना चाहिए था, बगिया बनानी चाहिए थी जीवन की, उसमें फूल आते और सुगंध आती।
बहुत लोग यह सोच लेते हैं कि जीवन जैसा मिला है, बस वहीं बात समाप्त हो गई। नहीं; जीवन तो मिला है बीज की भांति, वहां से यात्रा शुरू होती है, समाप्त नहीं। कोई मनुष्य पैदा होने के साथ पैदा नहीं हो जाता, केवल पैदा होने के साथ पैदा होने की शुरुआत होती है। हम जिसको जन्मदिन कहते हैं वह जन्म का दिन नहीं है, क्योंकि आदमी तो मरते तक जन्मता रहता है, कांस्टेंट बर्थ होती रहती है। जिस दिन मर जाता है उसी दिन जन्मना बंद होता है, नहीं तो जन्मता ही रहता है। तो निरंतर पैदा होता रहता है, रोज-रोज पैदा होता रहता है। लेकिन हां, कुछ दुर्भाग्य ऐसा है कि बहुत से लोग जन्म के साथ ही उनका जन्मना बंद हो जाता है, वे वहीं रुक जाते हैं, वहीं ठहर जाते हैं, वे उसको ही जीवन समझ लेते हैं।
वह जीवन नहीं है, वह तो केवल बीज-रूप था। अभी उसमें से कुछ होना चाहिए था, वह नहीं हो पाया, इसलिए सब दुर्गंध हो जाती है। फिर इस दुर्गंध से हम लड़ते हैं। हम कहते हैंः क्रोध नहीं होना चाहिए। हम कहते हैंः सेक्स नहीं होना चाहिए। हम कहते हैंः यह नहीं... । और इस लड़ाई में हम और टूटते हैं और गंदे होते चले जाते हैं।
संघर्ष इस भांति का नहीं है, द्वंद्व इस भांति का नहीं है। जीवन की शक्तियों का समग्र स्वीकार होना चाहिए और एक-एक शक्ति में खोजना चाहिए कि कौन सा रहस्य छिपा है। परमात्मा ने जो भी दिया है वह व्यर्थ नहीं हो सकता और न बुरा हो सकता है। हम जानने में भूल कर रहे होंगे, हम पहचानने में भूल कर रहे होंगे, हम चीजों की शक्तियों के अर्थ को न जान पा रहे होंगे, इसलिए सारी गड़बड़ हो रही है। जीवन में तो जो कुछ है सब शुभ और सुंदर को छिपाए हुए है। हम कुछ भूल कर रहे होंगे। और एक ही हमारी भूल है कि हम सोए हुए हैं। जागना चाहिए, अपनी जीवन की सारी शक्तियों के प्रति जागना चाहिए। उस जागरण से वे शक्तियां बदलनी शुरू हो जाएंगी।
कभी आपने कोई प्रयोग किया है किसी शक्ति के प्रति जागने का? निंदा की होगी, लड़े होंगे, लेकिन जागे कभी नहीं होंगे। कभी क्रोध के प्रति जागने का प्रयोग किया है कि यह क्रोध क्या है? लेकिन शत्रु होकर बैठे हैं क्रोध के कि क्रोध के हम शत्रु हैं, क्रोध शत्रु है, इसको मिटाओ।
यह कैसे संभव है कि शत्रु आपके भीतर दिया गया हो? क्या प्रकृति और परमात्मा आपको परेशान करना चाहते हैं? नहीं लेकिन, नैतिक शिक्षा ने बड़ी गड़बड़ कर दी है, उसने सिखा दिया है यह शत्रु है। मैं आपसे कहता हूं, जीवन में सब कुछ मित्र है, शत्रु कोई भी नहीं। इस क्रोध के प्रति कभी जागे हैं? कभी इसको पहचानने की कोशिश की है--यह क्या है? यह ऊर्जा, यह शक्ति क्या है? अगर जागे होते तो हैरान हो जाते।
मेरे एक मित्र को बहुत क्रोध आता था। वे मुझसे पूछने आए कि इससे मैं कैसे मुक्त होऊं? इससे कैसे इस झंझट से छुटकारा पाऊं?
मैंने कहा, तब तुम कहीं और जाओ। क्योंकि मैं तो इसको झंझट मानता नहीं
और न शत्रु मानता हूं, तुम गलत जगह आ गए हो। मैं तो मानता हूं इसे मित्र। तो मेरे सामने सवाल यह नहीं है कि क्रोध नाम के शत्रु से कैसे मुक्त हो जाओ, मेरे सामने सवाल यह है कि क्रोध नाम के मित्र के साथ पूरी मैत्री कैसे बन जाए। तो अगर मैत्री सीखनी हो तो ठीक आ गए और अगर शत्रुता सीखनी हो तो कहीं और जाओ।
वे बोले, कैसे इसके प्रति मित्र बनें? क्या करें?
मैंने उनको कहा, इसके प्रति जागें, जब भी क्रोध आए तो एक मौका समझें इसको, एक शुभ अवसर समझें कि भीतर एक शक्ति जगी है, मैं इसको देखूं कि यह क्या है? द्वार बंद कर लें, शांत बैठ जाएं, क्रोध के ऊपर मेडिटेशन करें, क्रोध के ऊपर ध्यान करें पूरी तरह--जैसे हम सुबह पक्षियों को सुनते हैं, ध्वनियों को सुनते हैं। शांत बैठ जाएं, क्रोध की पगध्वनियों को सुनें कि

यह क्रोध कहां-कहां चित्त के किस-किस कोने में जा रहा है और क्या कर रहा है? अदभुत शक्ति जगी है भीतर, यह क्या कर रही है? यह क्या होना चाहती है? वे कुछ दिनों बाद आए और उन्होंने कहा, यह तो बड़ी हैरानी की बात है! जैसे ही मैं जागता हूं, क्रोध शांत हो जाता है। आंख बंद करता हूं, क्रोध कहीं मिलता नहीं।
तो मैंने कहा, ठीक से जागते रहें, धीरे-धीरे पाएंगे कि क्रोध नहीं है।
और जिस दिन पाएंगे कि क्रोध नहीं है, उसी दिन अचानक एक दूसरी शक्ति का आविर्भाव जीवन में होगा और अचानक पाने लगेंगे कि जगह-जगह क्षमा और प्रेम प्रकट होने लगा है। जब भीतर परिपूर्ण जागरण से क्रोध शांत और तिरोहित हो जाता है, तो वह शक्ति जो क्रोध की थी अब कहां जाएगी? अब क्रोध का द्वार बंद हो गया, वह शक्ति अब कहां जाएगी? वह वापस लौटेगी। क्रोध की वापस लौटती हुई शक्ति क्षमा बन जाती है।
जीवन भर हम कामवासना में जीते हैं। लड़ते हैं जरूर उससे, लेकिन समझते शायद ही हों कभी। उसे भी जानना और समझना है, उसके प्रति भी होश से भरना है, वह भी मेडिटेशन बन जानी चाहिए, वह भी ध्यान बन जाना चाहिए।
तो जैसे-जैसे जागेंगे वैसे-वैसे पाएंगे कि विरोध का तो कोई कारण नहीं है, बड़ी सृजन की ऊर्जा छिपी है काम की वासना में, बड़ी क्रिएटिव फोर्सेस छिपी हैं। नहीं तो परमात्मा सेक्स को सृजन का केंद्र कैसे बनाता? सारा जीवन तो सेक्स से विकसित होता है। पौधे, पक्षी, मनुष्य, सब तो उससे पैदा होते हैं। और मूढ़ है वह आदमी जो उससे लड़ रहा है। जिससे सारा जीवन निकलता है उससे कोई लड़ सकता है? उससे कोई कैसे लड़ सकता है और कैसे कोई जीत सकता है? पागल है वह आदमी, विक्षिप्त हो जाएगा।
दुनिया के पागलखानों में जितने पागल बंद हैं, उनमें से नब्बे प्रतिशत
वे लोग हैं जो सेक्स से लड़े हैं। और दुनिया में धीरे-धीरे पागल बढ़ते जा रहे हैं, क्योंकि सेक्स के साथ लड़ाई बढ़ती जा रही है। जितना आदमी सभ्य और सुसंस्कृत होता है उतना सेक्स से लड़ने लगता है। और जितना लड़ने लगता है उतनी विक्षिप्तता और मैडनेस बढ़ने लगती है। क्योंकि जीवन के केंद्र से कोई लड़ सकता है? जीवन के केंद्र को समझा जा सकता है, लड़ा नहीं जा सकता। जीवन के केंद्र को शत्रु नहीं बनाया जा सकता; मित्र बनाया जा सकता है। और जब वह जीवन का केंद्र मित्र बन जाता है तो अदभुत शक्ति मिल जाती है यात्रा को, जीवन एक पुलक और आनंद से भर जाता है। जिन तथाकथित संन्यासियों को, ब्रह्मचारियों को हम मानते रहे हैं, पूजते रहे हैं, उनके जीवन में न संगीत है और न सौंदर्य है; उनके जीवन में न प्रेम है, न आनंद की पुलक है, न थिरक है। हो नहीं सकती, क्योंकि जीवन के मूल बिंदु से तो वे विरोध में गए हैं, वे तो मृत्यु की तरफ गए हैं जीवन से।
तो मैं नहीं कहता कि सेक्स से लड़ें, उसके शत्रु हो जाएं। सबसे बड़ा दुर्भाग्य जो मनुष्य-जाति के ऊपर पड़ा है वह यही कि सेक्स के संबंध में एक दुर्भावना हजारों साल से चली आ रही है। उस दुर्भावना ने सारे जीवन को कुरूप कर दिया है, सारे जीवन की नस-नस में जहर पहुंचा दिया है। नहीं, लड़ने की बात नहीं है; जानने, पहचानने, समझने, बोध से भरने की बात है। जितने बोध से भरेंगे उतना ही पाएंगे कि काम की शक्ति, सेक्स की ऊर्जा नई दिशाओं में गतिमान हो गई है। नये सृजन की उसने शक्तियां ले ली हैं, उससे नया सृजन होने लगेगा, नई क्रिएटिविटी पैदा होने लगेगी, जीवन सृजनात्मक हो जाएगा। और जो आदमी सेक्स से लड़ेगा उसका जीवन डिस्ट्रक्टिव हो जाएगा, विध्वंसात्मक हो जाएगा।
यह दुनिया में जो इतनी लड़ाइयां हो रही हैं, इतने युद्ध हो रहे हैं, इनके पीछे राजनैतिक कारण उतने नहीं हैं, आर्थिक कारण उतने नहीं हैं। इनके पीछे सबसे बुनियादी कारण यह है कि मनुष्य, जीवन के भीतर जो क्रिएटिव फोर्स है, उसके विरोध में खड़ा है। ऐसा मनुष्य विध्वंसात्मक हो जाएगा, डिस्ट्रक्टिव हो जाएगा। ऐसा मनुष्य लड़ाइयां लड़ेगा, ऐसा मनुष्य हत्या करेगा, ऐसा मनुष्य हिंसा करेगा; क्योंकि उसके भीतर की सारी सृजनात्मक शक्ति बेकार पड़ी है और वह लड़ने के लिए उत्सुक होता जा रहा है। जितना सेक्स का सप्रेशन हुआ है, उतने ही युद्ध बढ़ते चले गए हैं। और यह हो सकता है कि

पूरी मनुष्य-जाति एक आने वाले युद्ध में अपने को पूरी तरह समाप्त कर ले, वह अंतिम चरम स्थिति होगी विनाश की।
इधर पांच हजार वर्षों में बुनियादी से बुनियादी जो भूल हो गई है आदमी से--और वह नैतिक सिद्धांतों और चर्चाओं के कारण हो गई है--वह हो गई है सेक्स के संबंध में शत्रुता। और मैं मानता हूं कि जो सेक्स का शत्रु है, वह परमात्मा का ही शत्रु है। क्योंकि परमात्मा तो सेक्स के द्वारा सारे जीवन को विकसित कर रहा है। उसने तो सेक्स को बिंदु चुना है, केंद्र चुना है, जिसके आधार पर सारे जीवन की लीला है। वह आदमी कैसे धार्मिक हो सकता है जो सेक्स के विरोध में खड़ा है? वह तो परमात्मा के ही विरोध में खड़ा है। वह परमात्मा से ज्यादा समझदार अपने को समझ रहा है। परमात्मा से ज्यादा होशियारी उसके पास है। परमात्मा से ज्यादा पवित्र वह है। परमात्मा तो पक्का सिनर मालूम होता है उसको, क्योंकि सेक्स सब उसी का खेल है। परमात्मा तो पापी है, यह पुण्यात्मा है जो सेक्स के विरोध में खड़ा हो गया है।
नहीं, सेक्स के प्रति वही भाव होना चाहिए जो जीवन के अत्यंत, अत्यंत पवित्रतम जो भाव हैं वे सेक्स के प्रति होने चाहिए। जो हमारे भीतर जो भी पवित्रतम भावनाएं हैं वे सेक्स के प्रति होनी चाहिए, क्योंकि सेक्स है जीवन का केंद्र, उसी से जीवन बनता, विकसित होता है।
लेकिन हम अजीब लोग हैं! हम कहते हैं कि मां-बाप के प्रति तो आदर होना चाहिए। और सेक्स के प्रति अनादर सिखाते हैं। बड़ी गड़बड़ बात है। यह कैसे हो सकता है? जिन लोगों का सेक्स के प्रति अनादर है उनका मां-बाप के प्रति आदर कैसे हो सकता है? यह झूठी बात है। सेक्स के प्रति अनादर है तो मां-बाप के प्रति आदर कैसे हो सकता है? लेकिन हम मां-बाप के प्रति आदर सिखाना चाहते हैं और सेक्स के प्रति बचपन से अनादर सिखाते हैं। यह मां-बाप के प्रति आदर झूठा होगा, बिल्कुल झूठा होगा, यह टूट जाएगा।
जिस दिन सेक्स के प्रति आदर का समभाव पैदा होगा, उस दिन ही मां-बाप के प्रति भी आदर हो सकता है। नहीं तो नहीं हो सकता। कैसे होगा? हो कैसे सकता है? अगर सेक्स अनादृत है, तो मां-बाप सेक्स के द्वारा ही तो जन्म दिए, मां- बाप भी अनादृत हो गए।
एक घर में मैं मेहमान था। उस घर की गृहिणी ने मुझसे कहा कि अपने पति को मैं परमात्मा की तरह मानना चाहती हूं, आदर देना चाहती हूं, प्रेम करती हूं उन्हें, लेकिन दिन-रात कलह हो जाती है। और सब आदर मेरा ऊपर-ऊपर है, भीतर न मालूम किसी गहरे तल पर मेरे मन में मेरे पति के प्रति कोई आदर नहीं है। क्या कारण है?
मैंने उसको कहा, यह नहीं हो सकेगा आदर। क्योंकि बचपन से बच्चों को, बच्चियों को हम सेक्स के विरोध में पालते हैं। उनके मन में निंदा का भाव सेक्स के प्रति भरते हैं।
एक बच्ची बीस वर्ष की हो जाएगी और फिर विवाहित होगी। बीस वर्ष तक उसने सेक्स के प्रति निंदा जानी होगी, फिर उसका विवाह होगा और यह पति पहला आदमी होगा जो उसे वासना के जीवन में दीक्षित करेगा। इसके प्रति आदर कैसे हो सकता है? यह आदमी पाप में ले जाने वाला आदमी है, नरक में ले जाने वाला आदमी है। इसके प्रति आदर कैसे हो सकता है? और पति का भी आदर पत्नी के प्रति कैसे हो सकता है?
झूठा है पति और पत्नी का आदर, जब तक कि सेक्स के प्रति आदर का भाव न हो। मां-बाप के प्रति आदर झूठा होगा। असल में सेक्स के प्रति आदर का भाव न हो, तो जीवन के प्रति हमारे मन में कोई समभाव नहीं हो सकता।
लेकिन बड़े मजे की बात है, सेक्स के प्रति जितना अनादर है, उतना ही उसमें रस पैदा होता जाता है। असल में जिस चीज के हम विरोध में खड़े हो जाते हैं, उसमें आकर्षण पैदा हो जाता है।
अगर हम यहां दरवाजे पर एक तख्ती टांग दें और लिख दें कि यहां झांकना मना है। तो क्या आप समझते हैं आप में से इतने संयमी लोग होंगे कोई जो बिना झांके निकल जाएं?
नहीं; इतना तपस्वी कोई भी नहीं होगा। और अगर कोई किसी तरह हिम्मत करके निकल भी गया, तो फिर रात भर सपने देखेगा उसी तख्ती के--कि पता नहीं उसके भीतर क्या था? उसे देख ही लेते!

निषेध आकर्षण पैदा कर देता है। निंदा निषेध पैदा कर देती है। एक दुष्टचक्र, एक विसियस सर्कल पैदा हो जाता है। सेक्स की निंदा से सेक्स के प्रति रस पैदा हो जाता है। रस से चोरी-छिपे रास्तों से हम उस तरफ जाने लगते हैं। द्वार सब जगह बंद पाते हैं, तो आंख बंद करके सपनों में वहां जाने लगते हैं। सारा जीवन उसी केंद्र पर घूमने लगता है।
सेक्स के प्रति अनादर ने हमारी शक्ति के नब्बे प्रतिशत हिस्से को सेक्स के आस-पास घुमाना शुरू कर दिया है। हमारे सपने, हमारे विचार, हमारी कल्पनाएं उसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। और आपकी तो कम घूमती हैं, जिसको आप साधु समझते हैं उसकी और भी ज्यादा घूमती हैं। वह और भी बड़े निषेध में खड़ा हुआ है। उसने तख्ती पर न झांकने का तय कर लिया है। बस, उसका तो चित्त बहुत निषेध से भर गया, वह बहुत कष्ट में है। मुझे साधु-संन्यासी एकांत में मिलते हैं। सबके सामने मिलते हैं तो वे आत्मा-परमात्मा की बातें पूछते हैं, जब अकेले में मिलते हैं तो वे कहते हैं, यह सेक्स बहुत परेशान कर रहा है। अकेले में मुझसे आज तक किसी साधु ने आत्मा की बात नहीं की है, आज तक। अकेले में तो वे सेक्स की ही बात करते हैं। वे कहते हैं, यह बहुत तकलीफ दे रहा है। वह देगा ही तकलीफ, स्वाभाविक है, वह तकलीफ देगा। आपकी आत्मा- परमात्मा की बातों से कोई वह तकलीफ मिटना बंद थोड़े ही हो जाएगी। उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। जिसकी निंदा की है, जिसके विरोध में लड़ गए हैं, जिसके शत्रु होकर खड़े हो गए हैं, वह शक्ति कहां जाएगी? वह भीतर घाव की तरह खड़ी हो जाएगी।
नहीं, जीवन में किसी शक्ति के विरोध में खड़ा होने वाला आदमी कभी भी जीवन के संगीत को उपलब्ध नहीं होता, सत्य को उपलब्ध नहीं होता। जीवन की सभी शक्तियों को जगाना है। जीवन की सभी शक्तियों को जानना है, पहचानना है, मित्रता साधनी है। उन्हीं मित्रों को तो साथ लेकर बड़ी यात्रा की जा सकती है परमात्मा की। जो उन्हीं से लड़ जाएगा वह तो यहीं लड़ाई में रुक जाएगा, वह आगे नहीं जा सकेगा।
जीवन एक इकाई है, उसमें कोई शत्रु नहीं है भीतर आपका, सब आपके साथी और मित्र हैं। उन सब के संगीत को खोजना है, उनकी हार्मनी खोजनी है। धर्म उनकी हार्मनी खोजता है जीवन की शक्तियों की और नीति उनके साथ द्वंद्व खोजती है, विरोध खोजती है। इसलिए नीति तो सामाजिक सुविधा है, समाज की जरूरत है। धर्म सामाजिक सुविधा नहीं, धर्म एक आंतरिक संगीत को उपलब्ध करने की खोज है। इसलिए समाज को धर्म से कोई मतलब नहीं है, समाज को नीति से मतलब है। आप नैतिक हो जाएं, बस काफी है।
इसलिए तो सारी दुनिया में सेक्युलर स्टेट खड़े हो रहे हैं। वे कहते हैं, धर्म से हमें कोई मतलब नहीं, हम धर्मनिरपेक्ष हैं। लेकिन नीति से हमें मतलब है, बस नीति सध जाए, काफी है। कोई हमें मतलब नहीं धर्म से। राज्य को, समाज को धर्म से कोई मतलब नहीं, मतलब है नीति से। बस नीति सध जाए, सब ठीक है।
नीति समाज की सुविधा है, धर्म व्यक्ति के प्राणों की प्यास है। लेकिन रहस्यपूर्ण मजा यह है कि अगर व्यक्ति के जीवन में धर्म आ जाए तो नीति अपने आप आ जाती है। और वही नीति होती है सच्ची, वही नीति होती है असली फूलों की तरह। और जो नीति बिना धर्म के आती है वह कागजी फूलों की भांति होती है, जो बाजार से खरीद लाए गए हैं।
बाजार से खरीदे गए फूलों में एक फायदा जरूर होता है, सस्ते मिल जाते हैं। दूसरा फायदा यह होता है, वे कभी मुरझाते नहीं, वे हमेशा वैसे के वैसे बने रहते हैं। असली फूल श्रम मांगते हैं, असली फूल कुम्हलाते भी हैं। असली फूलों में लेकिन सुगंध भी होती है, असली फूलों में जीवन भी होता है।
तो असली फूल की खोज तो आंतरिक परिवर्तन से होती है और नकली फूल तो ऊपर
से साध लिए जा सकते हैं।
नहीं, नैतिकता कोई जीवन का आधार नहीं है और न धर्म का। लेकिन धर्म जरूर नैतिकता का प्राण है। उससे जो पैदा होता है वह बात ही और है, बात ही और है।
बुद्ध एक गांव के पास से निकलते थे। कुछ लोग आए और उन्होंने बुद्ध को गालियां दीं, अपमान किया। बुद्ध ने खड़े होकर सुना और फिर कहा कि मित्रो,

तुम्हारी बात पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं, मुझे दूसरे गांव थोड़े जल्दी पहुंचना है।
उन लोगों ने कहा, हमने कोई क्या ये बातें कही हैं? हमने कोई आपका स्वागत-समारोह किया है यह? ये तो हमने गालियां दी हैं और सीधी और स्पष्ट! क्या आपकी समझ में नहीं पड़ीं? क्या इनसे भी तीखी और साफ गालियां हो सकती हैं जो हमने दी हैं?
बुद्ध ने कहा, तुमने गालियां दीं, यह तो ठीक, लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। इधर कुछ दिनों से, कोई कितनी ही गालियां दे, मैं उनको लेने में असमर्थ हो गया हूं, मैं उनको ले नहीं पाता। तो तुमने दिया, यह तो ठीक, लेकिन जब तक मैं न लूं तब तक मतलब ही कुछ हल नहीं होता। पिछले गांव में कुछ लोग फूल लाए थे, मिठाइयां लाए थे। मेरा पेट भरा था, मैंने उनसे कहा कि नहीं ले सकूंगा, वे फूल और मिठाइयां वापस ले गए। अब उन्होंने क्या किया होगा? तो उनमें से किसी एक आदमी ने कहा, घर में जाकर बच्चों को मिठाइयां बांट दी होंगी।
तो बुद्ध ने कहा, अब तुम क्या करोगे? तुम गालियां लेकर आए और मैं लेता नहीं हूं, अब तुम किसको बांटोगे? कहां ले जाओगे? तुम्हें दस साल पहले आना चाहिए था, तब मैं गालियां लेता था, अब मैं लेने में असमर्थ हो गया हूं। और ऐसा नहीं कहता हूं कि मैं नहीं लेना चाहता हूं। नहीं, मैं लेने में असमर्थ ही हो गया हूं। क्योंकि जैसे-जैसे मैं भीतर के प्रति जागा, तो मुझे दिखाई पड़ने लगा--क्या लेना चाहिए और क्या नहीं लेना चाहिए। अब गालियां मैं नहीं लेता हूं। ये सीधे मेरी... मुझे दिखाई पड़ता है कि इनको लेने का कोई मतलब नहीं, वैसे ही जैसे कोई आदमी रास्ते पर निकलता है, कांटे पड़े होते हैं तो उन पर पैर नहीं रखता, दूसरी तरफ पैर रखता है। उसको दिखाई पड़ता है कि कांटे पड़े हैं, इसलिए उन पर पैर नहीं रखता। तुम गालियां लाए हो, मुझे दिखाई पड़ता है, ये कांटे हैं, इसलिए मैं नहीं लेता हूं। मैं अपने रास्ते जाता हूं, मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है।
यह आदमी, जिसको दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है, वह गालियां नहीं लेता। इसके लिए उसे चेष्टा नहीं करनी पड़ती है कि मैं गालियां नहीं लूंगा या कोई गालियां देगा तो मैं राम-राम जप कर अपने मन को समझाऊंगा, ऐसी कोई चेष्टा नहीं करनी होती। बस उसे दिखाई पड़ता है, वह गालियां नहीं लेता। उसे दिखाई पड़ता है, वह क्रोध नहीं करता। क्योंकि क्रोध में वह पाता है कि मेरी ही शक्ति क्षीण होती है, मैं ही टूटता और खंडित होता हूं, मैं ही दुखी होता हूं। और जिसको दिखाई पड़ने लगता है वह अपने को दुखी नहीं करना चाहता। सीधी और सरल बात है, इसमें कोई बहुत कठिन गणित नहीं है, सीधा गणित है--दो और दो चार जैसा गणित है। कैसे हम अपने भीतर जाग जाएं, यह सवाल है। कैसे हम अपने आचरण को बदल लें, यह सवाल नहीं। उसी के लिए हम तीन दिन से प्रयास करते हैं समझने का कि कैसे हमारे भीतर जागरण आ जाए, उसकी मैं सुबह बात करूंगा।

एकाध और छोटा प्रश्न है वह ले लेता हूं, फिर रात को प्रश्न को लेंगे।
पूछा है... ध्यान से संबंधित है, इसलिए उसको दो मिनट समझ लेना उचित होगा... मित्र ने पूछा है कि मुझे तो ध्यान में भी ऐसा लगा कि यह भी सजेशन है, ऑटो-सजेशन है, यह भी एक तरह का आत्म-सम्मोहन है। और मैंने तो सुबह कहा कि आत्म-सम्मोहन ठीक नहीं है, कल भी कहा था कि आत्म-सम्मोहन में पड़ जाना ठीक नहीं है। लेकिन ये भी तो सजेशंस हैं, ये भी तो सुझाव हैं ध्यान के, इस संबंध में पूछा है।

निश्चित ही ये भी सजेशन हैं। लेकिन सजेशन दो प्रकार के होते हैं, सुझाव दो प्रकार के होते हैं। एक तो आत्म-सम्मोहन होता है जिसे हम कहें पाजिटिव हिप्नोसिस, जिसमें हम किसी चीज के लिए कल्पना करना शुरू करते हैं और किसी चीज का आकार बनाते हैं और किसी आकार के प्रति अपने को मोहित करते हैं। दूसरा होता है निगेटिव हिप्नोसिस, जिसमें हम कोई आकार नहीं बनाते, बल्कि बने हुए आकारों को गिरा देते हैं, सब आकार गिरा देते हैं; और जब सब आकार गिर जाते हैं तो हम अकेले ही बच जाते हैं।

हम सारे लोग सम्मोहित हैं। इसलिए ध्यान में जिस सम्मोहन का प्रयोग हम करते हैं वह हिप्नोसिस न होकर डी-हिप्नोसिस है। हम सम्मोहित हैं। हमारा दुख, हमारी चिंता, हमारी अशांति एक तरह का सम्मोहन ही है जिसमें हमने अपने आपको डुबा रखा है। इसको तोड़ना है, पीछे लौटना है। तो यह सम्मोहित जो अवस्था है इसे तोड़ना होगा।
जैसे एक आदमी को एक कांटा लग जाए, तो उस कांटे को निकालने के लिए वह दूसरा कांटा ले आए। कोई उससे कहे कि आप यह क्या पागलपन कर रहे हो? एक कांटा वैसे ही लगा है, अब आप दूसरा और ला रहे हो! यह दूसरा भी तो कांटा ही है। वह कहेगा, निश्चित ही दूसरा भी कांटा है, लेकिन पहले को इससे मुझे निकालना है। वह पहले कांटे को दूसरे कांटे से निकालेगा।
गलती तो तब होगी जब दूसरे कांटे को वह पहले कांटे के घाव में रख ले, तो फिर गलती हो जाएगी। लेकिन अगर वह दूसरे कांटे को भी पहले कांटे के साथ फेंक दे तो फिर कोई गलती नहीं है।
तो जब तक आप अशांत हैं, तब तक ध्यान के प्रयोग का मतलब है। जिस दिन आप शांत हो जाएंगे उस दिन ध्यान का प्रयोग तो फेंक देना है, उसको कोई ढोए थोड़े ही फिरना है। ध्यान का प्रयोग तो कांटे की तरह फेंक दिया जाएगा उसी दिन जिस दिन आप शांत हो जाएंगे, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती है।
तो ध्यान की पूर्णता मैं कहता हूं उस दिन है जिस दिन ध्यान व्यर्थ हो जाए, उसकी कोई जरूरत न रह जाए। उस दिन चित्त हो गया शांत, कांटा निकल गया। तो दूसरे कांटे को भी फेंक देंगे, उसकी कोई जरूरत नहीं है।
वह केवल हमारे चित्त की जो अशांति है... और वह अशांति हमने एक तरह से सुझाव दे-दे कर अपने भीतर खड़ी कर रखी है, उसको हम विसर्जित कर देंगे। हम कोई नई कल्पना और भावना खड़ी नहीं कर रहे हैं ध्यान में। जब सारी अशांति और चित्त के विचार शून्य हो जाएंगे, उस शून्य में जिसे हम जानेंगे वह हमारे सुझाव से आया हुआ कोई रूप नहीं है। उस शून्य में तो हम उसे जानेंगे जो हमारे भीतर है, जिसके लिए हम कोई भी कल्पना नहीं कर रहे हैं, कोई भी कामना नहीं कर रहे हैं, कोई रूप नहीं बना रहे हैं। हम तो, चित्त पर जो लहरें आ गई हैं, उनको विसर्जित कर रहे हैं। वे लहरें सम्मोहन के द्वारा ही आई हैं, वे लहरें सम्मोहन के द्वारा ही विसर्जित हो जाएंगी। जो बच रहेगा स्वरूप, स्वयं की सत्ता, वह हमारा अनुभव बनेगी। वह अनुभव सम्मोहन से नहीं आ रहा है। जैसे मैं आप तक आऊं और फिर मुझे लौटना हो तो उसी रास्ते से मुझे वापस लौटना पड़ेगा।
यह वापस लौटना है, ध्यान अशांति से वापस लौटना है। ध्यान से आत्मसाक्षात नहीं होगा, ध्यान से तो केवल अशांति विसर्जित हो जाएगी। तब जो शेष रह जाएगा, उस शून्य क्षण में जो जाना जाएगा, वह होगा आत्मसाक्षात, वह होगा सत्यसाक्षात।
हम सत्य के लिए कोई सम्मोहन नहीं कर रहे हैं, सत्य के लिए कोई विचार नहीं कर रहे हैं, सत्य की कोई कल्पना नहीं कर रहे हैं, सत्य की कोई धारणा नहीं बना रहे हैं। चित्त की जितनी भी धारणाएं बन गई हैं, उनको डी-कंडीशंड कर रहे हैं, उनको डी-हिप्नोटाइज कर रहे हैं, उनको विदा कर रहे हैं, उनको शून्य कर रहे हैं। वे जब विदा हो जाएंगी और चित्त शुद्ध और निर्दोष शेष रह जाएगा, उस समय वह जो जानेगा, वह कोई हमारी कल्पना, हमारा सुझाव नहीं है, वह तो वही है जो है। उसके संबंध में कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा।
कुछ और प्रश्न बच रहे हैं, उनके संबंध में रात और कल दोपहर आपसे बात करूंगा।
यह बैठक पूरी हुई।

रोम रोम रस पीजिए
सातवां प्रवचन

दूसरे पर श्रद्धा आत्म-अश्रद्धा की घोषणा है

एक मित्र ने पूछा हैः सत्संग क्या है? कैसे किया जाए?

अब तक सत्संग के केंद्र में सदगुरु, कोई संत, कोई महात्मा रहा है; सत्संग के केंद्र में गुरु रहा है; कहीं जहां सत्य मिल सके वहां जाना चाहिए, ऐसा भाव रहा है। लेकिन मेरी दृष्टि में, सत्संग के केंद्र में गुरु नहीं, वरन शिष्य ही है। यह सवाल नहीं है कि किससे आप सीखने जाएं, सवाल यही है कि क्या आपमें सीखने की क्षमता विकसित हुई? यह बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि आप कहां जाएं, यह महत्वपूर्ण है कि आपके भीतर सीखने का दृष्टिकोण, एटिट्यूड ऑफ लर्निंग है या नहीं?
यदि आपके भीतर सीखने की क्षमता है, तो सारा जीवन ही सत्संग हो जाता है। उठना-बैठना, पक्षी और पौधे भी सत्संग बन जाते हैं, सामान्य मनुष्य भी सत्संग बन जाते हैं। लेकिन सीखने की दृष्टि न हो और आप स्वयं परमात्मा के साथ भी निवास करें, तो भी स्मरण रखें, सत्संग नहीं होगा।
सत्संग किसी और पर नहीं, आपके होने पर निर्भर है, आपके जीवन के ढंग पर। खुली हुई आंख होनी चाहिए तो पूरा जीवन ही सत्संग है, पूरा जीवन एक शिक्षण है। जन्म से लेकर मृत्यु तक अबाध चारों तरफ जो जीवन का सागर है, वही, वही बहुत-बहुत अर्थों में, बहुत-बहुत रूपों में, बहुत सी दिशाओं से उपस्थित होता है; और अगर हमारे भीतर द्वार हो, हृदय खुला हो, तो सब भांति उसकी लहरें हमारे जीवन को कुछ दे जाती हैं।
लेकिन मैं तो यह देखता हूं कि सत्संग का यही ख्याल है कि किसी गुरु के पास जाकर आप बैठें और उससे सीखें। इस धारणा के कारण सीखने वाला तो कम महत्वपूर्ण हो गया और सिखाने वाला बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। सारी गुरुडम इसी बात से पैदा हुई है। और वे जो गुरु हैं वे भी यही सिखाते हैं कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं होगा, इसलिए आओ और हमें गुरु बनाओ। जब कि सचाई यह है कि जिस आदमी को सत्य का अनुभव हुआ हो, उसे तो ख्याल भी न होगा कि वह आपका गुरु बन जाए। और अगर आप उससे कहें भी तो उसे हैरानी ही होगी। क्योंकि गुरु बनने की जो दौड़ है, वह कोई सत्य का साक्षात किसी को हुआ हो, किसी के जीवन में प्रकाश उतरा हो, उसके चित्त में नहीं हो सकती है।
यह गुरु होने की दौड़ भी अधिकार की और शक्ति पाने की दौड़ है। और इसीलिए
तो एक गुरु दूसरे गुरु के विरोध में खड़ा है। एक गुरु अपना घेरा बनाए हुए है, दूसरा गुरु अपना घेरा बनाए हुए है। और वे गुरु यह भी समझाते हैं कि हम ही सदगुरु हैं, और किसी के पास मत जाना, और सब मिथ्या गुरु हैं।
यह सारा का सारा एक व्यवसाय और धंधा बन गया। और इस धंधे के केंद्र पर मनुष्य-जाति को बहुत हानि झेलनी पड़ी है।
तो मैं उस केंद्र को ही बदल देने के लिए उत्सुक हूं। गुरु महत्वपूर्ण नहीं है सत्संग में, सत्संग में महत्वपूर्ण हैं आप, आपकी सीखने और देखने की दृष्टि, आपका खुला हुआ मन। और तब फिर किसी व्यक्ति का सवाल नहीं है, जीवन में जहां भी आप हैं, सब तरफ सीखने को बहुत है।
एक मुसलमान फकीर मरने को था। किसी ने उससे पूछा मरते वक्त कि तुमने किससे सीखा ज्ञान?
उसने कहा, बड़ा कठिन है। किस-किस के नाम लूं? जीवन में एक भी क्षण ऐसा नहीं बीता जब मैंने किसी से कुछ न सीखा हो। एक बार रास्ते से निकलता था, एक छोटा सा बच्चा हाथ में दीया जलाए हुए कहीं जा रहा था। मैंने उस बच्चे से पूछा कि क्या बेटे तुम बता सकते हो कि दीये में जो ज्योति है यह कहां से आई है? मैंने सोचा था कि छोटा बच्चा है, चकित होकर रह जाएगा, उत्तर न दे पाएगा। लेकिन उस बच्चे ने क्या किया? उसने फूंक मार दी और दीये को बुझा दिया और मुझसे कहा कि अब तुम ही बताओ कि ज्योति कहां चली गई है? मैंने उस बच्चे के पैर पड़ लिए, मुझे एक गुरु मिल गया था। और मैंने जाना कि छोटे से बच्चे के प्रति भी यह भाव लेना कि वह छोटा है, गलत है। वहां भी कुछ

रहस्यपूर्ण मौजूद हुआ है, वहां भी कुछ जन्मा है। केवल उम्र में पीछे होने से उसे छोटा मान लेना भूल है। मेरे पास कोई उत्तर न था। तब मैंने जाना कि जो मैंने पूछा था वह बड़ा अज्ञानपूर्ण था। और तब मैंने जाना कि जहां तक उस प्रश्न के उत्तर का संबंध है, मैं भी उतना ही बच्चा हूं जितना वह बच्चा है। मेरे बुजुर्ग होने का भ्रम टूट गया। और यह भ्रम टूट जाना एक अदभुत शिक्षा थी जो एक छोटे से बच्चे ने मुझे दी थी, वह मेरा गुरु हो गया था।
और एक बार, उस फकीर ने कहा कि मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। और एक औरत भागी हुई आई, उसके कपड़े अस्तव्यस्त थे, उसने बुर्का न ओढ़ रखा था। उसने आकर मुझसे पूछा कि क्या आपने किसी आदमी को यहां से निकलते देखा है? तो मैंने उससे कहा कि बदतमीज औरत, पहले अपने कपड़े ठीक कर और फिर मुझसे कुछ पूछ। उस स्त्री ने कहा, माफ करें, मैं तो समझी कि आप परमात्मा के दीवाने और प्यारे हैं। मेरा प्रेमी इस रास्ते से निकलने वाला है, मैं उसको खोजने निकली हूं, वर्षों के बाद इधर से वह आने को है। तो मैं तो उसके प्रेम में इतनी दीवानी हो गई कि वस्त्रों की कौन कहे, मुझे अपनी देह की भी कोई सुध नहीं! लेकिन तुम परमात्मा के प्रेम में इतने भी दीवाने न हो सके कि दूसरे के वस्त्र तुम्हें दिखाई न पड़ें!
उस फकीर ने कहा, मैंने उसके पैर पड़ लिए और मैंने कहा, तेरा प्रेम मुझसे ज्यादा गहरा है। और मैं सोचता था कि मैं परमात्मा का प्रेमी हूं, तूने बता दिया कि नहीं हूं। जिसे अभी दूसरों के वस्त्र भी दिखाई पड़ते हैं, वह क्या परमात्मा का प्रेमी होगा? जो प्रेम में इतना भी नहीं, इतना भी नहीं डूब पाया जितना कि एक सामान्य स्त्री अपने प्रेमी के ख्याल में डूब जाती है! तो वह स्त्री मेरी गुरु हो गई।
और उस फकीर ने कहा, एक बार एक गांव में मैं आधी रात भटका हुआ पहुंचा। गांव के सारे लोग सो गए थे, सिर्फ एक आदमी एक मकान के पास, दीवाल के पास बैठा हुआ मुझे मिला। मेरे मन में ख्याल हुआ कि हो न हो यह कोई चोर होना चाहिए। इतनी रात किसी दूसरे के मकान की दीवाल से यह कौन टिका है? मेरे मन में यही ख्याल उठा कि कोई चोर होना चाहिए। लेकिन उस आदमी ने मुझसे पूछा, राहगीर, भटक गए हो? चलो, कृपा करो, मेरे घर में ठहर जाओ, अब तो रात बहुत गहरी हो गई और सरायों के दरवाजे भी बंद हो चुके हैं। वह मुझे अपने घर ले गया और मुझे सुला कर उसने कहा कि मैं जाऊं, रात्रि में ही मेरा व्यवसाय चलता है। तो मैंने पूछा, क्या है तुम्हारा व्यवसाय? उसने कहा कि परमात्मा के एक फकीर से झूठ न बोल सकूंगा, मैं एक गरीब चोर हूं।
वह चोर चला गया। और उस फकीर ने कहा कि मैं बहुत हैरान रह गया, इतनी सचाई तो मैं भी नहीं बोल सकता था। मेरे मन में भी कितनी बार चोरी के ख्याल नहीं उठे! और मेरे मन में भी कौन-कौन सी बुराइयां नहीं पाली हैं! लेकिन मैंने कभी किसी को नहीं कहीं। इतना सरल तो मैं भी न था जितना वह चोर था। और रात जब पूरी बीत गई तो वह चोर वापस लौटा, धीरे-धीरे कदमों से घर के भीतर प्रवेश किया ताकि मेरी नींद न खुल जाए। मैंने उससे पूछा, कुछ मिला? कुछ लाए? उस चोर ने कहा, नहीं, आज तो नहीं, लेकिन कल फिर कोशिश करेंगे। वह खुश था, निराश नहीं था।
फिर तीस दिन मैं उसके घर में मेहमान रहा और वह तीस दिन ही घर के बाहर रोज रात को गया और हर रोज खाली हाथ लौटा और सुबह जब मैंने उससे पूछा कि कुछ मिला? तो उसने कहा, नहीं, आज तो नहीं, लेकिन कल जरूर मिलेगा, कल फिर कोशिश करेंगे। फिर महीने भर के बाद मैं चला आया। और जब मैं परमात्मा की खोज में गहरा डूबने लगा और परमात्मा का मुझे कोई कोर-किनारा न मिलता था और मैं थक जाता था और हताश हो जाता था और सोचने लगता था कि छोड़ दूं इस दौड़ को, खोज को, तब मुझे उस चोर का ख्याल आता था जो रोज खाली हाथ लौटा, लेकिन कभी निराश न हुआ और उसने कहा कि कल फिर कोशिश करेंगे। और उसी चोर के बार-बार ख्याल ने मुझे निराश होने से बचाया। जिस दिन, जिस दिन मुझे परमात्मा की ज्योति मिली, उस दिन मैंने अपने हाथ जोड़े और उस चोर के लिए प्रणाम किया, अगर वह उस रात मुझे न मिला होता तो शायद मैं कभी का निराश हो गया था।

ऐसे उस फकीर ने बहुत सी बातें कहीं जिनसे उसने सीखा था।

जिंदगी चारों तरफ बहुत बड़ी शिक्षा है। जिंदगी चारों तरफ बहुत बड़ा सत्य है। जिंदगी चारों तरफ रोज-रोज खड़ी है द्वार पर। हमारी आंखें बंद हैं और हम पूछते हैंः सत्संग करने कहां जाएं? और हम पूछते हैंः किसके चरण पकड़ें, किसको गुरु बनाएं? और जिंदगी चारों तरफ खड़ी है सब कुछ लुटा देने को, सब कुछ खोल देने को, और उसके प्रति हमारी आंखें बंद हैं और हृदय बंद है। तो मैं नहीं कहता कि सत्संग करने कहीं जाएं। वैसा हृदय बनाएं अपना कि चौबीस घंटे सत्संग हो जाए। जिंदगी में सब कुछ ऐसा है कि जिससे सीखा जा सके, पाया जा सके, जाना जा सके। कोई दृष्टि खुल जाए, कोई अंतर्दृष्टि खुल जाए। लेकिन ये सत्संग करने वाले लोग, जो कहीं और खोजने चले जाते हैं, ये कभी
न पा सकेंगे, कभी न पा सकेंगे, इनके पास बंद आंखें थीं। अन्यथा ये जीवन से ही पा लेते। और बंद आंखें लेकर ये कहीं भी चले जाएं, क्या फर्क पड़ेगा? कहीं भी जाएं, कहीं भी खोजें, कुछ भी इन्हें नहीं मिलेगा। क्योंकि जो द्वार खुले चाहिए वे द्वार तो बंद हैं।
तो मैं नहीं कहता कि सत्संग करने कहीं जाएं। मैं तो यह कहता हूं कि वह दृष्टि बनाएं खुली हुई जो सीख सकती है। अपने बच्चे से सीखें, अपने नौकर से, अपने घर के बाहर खड़े हुए भिखारी से, चारों तरफ... दरख्तों से, पौधों से... जो सीख सकते हैं, जो जान सकते हैं, वे कहीं से भी जान लेते हैं। एक दरख्त से सूखा गिरा हुआ पत्ता भी दृष्टि को खोल सकता है; आंख खुल सकती है। लेकिन उसकी तैयारी चाहिए। और इस तैयारी में गुरु का कोई भी मूल्य नहीं है, इस तैयारी में हमेशा उसका मूल्य है जो खोज पर निकला है।
तो मैं नहीं कहता कि गुरु जरूरी है ज्ञान के लिए। मैं कहता हूं, सीखने
की क्षमता जरूरी है। आध्यात्मिक जीवन में गुरु नहीं होते, केवल शिष्य होते हैं। गुरु नहीं होते, टीचर्स नहीं होते, केवल डिसाइपल्स होते हैं। और जहां गुरु भी होते हों, समझना कि वहां धंधा होता होगा धर्म के नाम पर। लेकिन आज तो हालतें उलटी हो गई हैं। शिष्य तो कोई भी नहीं है, गुरु करीब-करीब सभी हैं।
एक युवक एक आश्रम में पहुंचा था। उसने आश्रम के प्रधान से जाकर कहा, मैं भी इस आश्रम में आया हूं सीखने, सत्संग करने, सत्य की खोज करने, साधना करने।
तो उस गुरु ने कहा, उस प्रधान ने कहा, हमारे आश्रम में दो तरह के लोग हैंः एक तो शिष्य हैं सीखने वाले और एक गुरुजन हैं सिखाने वाले। लेकिन शिष्य होना बहुत कठिन है, सीखना बड़ी तपश्चर्या है, सीखना बड़ा श्रम है, बहुत कठिनाई होगी। क्या तुम शिष्य बनना चाहते हो? उसने सारी कठिनाइयां बताईं कि ये-ये कठिनाइयां हैं।
उस युवक ने कहा कि नहीं, ये तो बहुत ज्यादा कठिनाइयां हैं। अब कृपा करके यह बताइए कि गुरु होने के लिए क्या-क्या करना पड़ता है?
उस प्रधान ने कहा, गुरु होने के लिए कोई विशेष काम नहीं करना पड़ता, गुरु बनने की तरकीब आनी चाहिए, तो कोई भी गुरु बन सकता है। बोलना आना चाहिए, समझाना आना चाहिए, तो कोई भी गुरु बन सकता है।
वह युवक बोला, तो फिर मुझे गुरु ही बना लीजिए। बोलना भी मुझे आता है, समझाना भी मुझे आता है।
वह गया था सत्य की खोज में, लेकिन गुरु बन गया। अक्सर लोग सत्य की खोज में जाते हैं सत्संग करने और धीरे-धीरे दूसरों को सत्संग करवाने लगते हैं और यह भूल ही जाते हैं कि वे सत्संग करने आए थे। असल में सीखने की तो कोई दृष्टि नहीं है, सीखने के लिए जो सरल खुला हुआ हृदय चाहिए वह नहीं है।
उसी के लिए हम इधर तीन दिनों में कुछ विचार करते हैं कि कैसे सरल हृदय
हो जाए। ज्ञान से भरा हुआ हृदय सरल नहीं होगा, वह मैंने पहले दिन कहा। कल्पना से भरा हुआ हृदय भी सरल नहीं होगा, वह मैंने आज सुबह आपसे कहा। कल और कुछ बात करूंगा कि सरल हृदय पूरी तरह कैसे हो जाए।
सरल हृदय हो जाए तो सारा जीवन सत्संग है, सारा जीवन शास्त्र है, सारा जीवन गुरु है। और सब शास्त्र तो मनुष्य के बनाए हुए हैं, लेकिन यह जीवन तो परमात्मा का ही बनाया हुआ है। और सब बातें तो मनुष्य की रची हुई हैं, लेकिन ये पौधे, ये पक्षी, ये पहाड़, ये पर्वत, ये मनुष्य, यह सब कुछ, ये चारों तरफ जो

फैला है यह, यह तो परमात्मा का ही है। और जो इससे न सीख सकेगा, जो परमात्मा के शास्त्र से न सीख सकेगा, वह और कहां सीख सकेगा?
परमात्मा के इस शास्त्र के प्रति अपने हृदय को खोलें। वही खोल सकेगा
जो मनुष्य के शास्त्रों को विदा दे देता है। वही परमात्मा के इस शास्त्र के प्रति अपने मन को खोल पाता है। और वह खोल ले तो सब जगह सत्संग है।

एक मित्र ने पूछा है कि चेतना का तो स्वभाव है तर्क करना, कल्पना करना। शून्य होना तो चेतना का कोई स्वभाव नहीं है। तो आप जो यह कहते हैं कि चित्त शून्य हो जाए, यह तो बड़ी गैर-कुदरती, बड़ी अस्वाभाविक, अननेचुरल बात कहते हैं।

जिन्होंने समुद्र को तूफान में देखा हो, उन्हें ख्याल करना भी मुश्किल होगा कि तूफान समुद्र का स्वभाव नहीं है और ऐसे वक्त भी होते हैं जब तूफान नहीं होता और समुद्र होता है। समुद्र में उठी हुई लहरें समुद्र का स्वभाव नहीं हैं, समुद्र बिना लहरों के भी होता है।
मन पर उठे हुए विचार और कल्पनाएं, समुद्र पर उठी हुई लहरों की भांति हैं। और स्मरण रहेः लहर तो समुद्र है, लेकिन समुद्र लहर नहीं है। लहर में भी समुद्र है, लेकिन समुद्र लहर ही नहीं है, समुद्र बिना लहर के भी होता है। हालांकि लहर कभी बिना समुद्र के नहीं होती। ऐसी कभी कोई लहर देखी है जो बिना समुद्र के हो? लेकिन ऐसा समुद्र तो देखा जा सकता है जो बिना लहर के हो।
विचार और तर्क बिना मन के नहीं हो सकते हैं, लेकिन मन बिना विचार और तर्क के हो सकता है। और अगर थोड़ी खोज-बीन करेंगे तो बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है, कोई शून्य हो जाने की भी जरूरत नहीं है कि तभी यह पता चले कि चेतना शून्य होती है। अगर अभी और यहीं थोड़ा सा समझ लाएंगे तो दिखाई पड़ जाएगा। दो विचार मन में होते हैं, दो विचारों के बीच में मन में कोई खाली जगह होती है कि नहीं? जैसे मैंने कहा, राम आया। तो राम और आया शब्द के बीच में क्या है? खाली जगह है या नहीं? अगर दो शब्दों और दो विचारों के बीच में खाली जगह न हो तो एक विचार दूसरे विचार पर चढ़ जाएगा, पहचानना भी मुश्किल हो जाएगा कि कौन सा विचार कौन सा है। दो विचारों के बीच में इंटरवल है, गैप है। दो शब्दों के बीच में गैप है। वह गैप क्या है? वह खाली जगह में कौन है? उस खाली जगह में चेतना नहीं है? एक विचार चला जाता है, फिर दूसरा आता है। तो बीच में जो थोड़ी सी खाली जगह है, वहां कौन है? वहां चेतना नहीं है? वहां भी चेतना है। विचार आते हैं और चले जाते हैं, विचार चेतना नहीं हैं। जिस पर विचार आते हैं और जाते हैं वह है चेतना। विचार धुएं की तरह चेतना पर आते हैं और निकल जाते हैं, पीछे चेतना है। एक विचार जाता है, दूसरा आता है, बीच में जो खाली जगह है वहां चेतना है, वहां शून्य है।
तो जब कोई शांत होने की दिशा पर यात्रा करता है, तो धीरे-धीरे विचारों
के बीच का स्थान, बीच का अंतराल बड़ा होता जाता है, गैप बड़ा होता जाता है। उसी गैप से, उसी खाली जगह से पता चलता है कि भीतर कोई शून्य भी है, कोई सागर भी है जहां कोई लहर नहीं। धीरे-धीरे एक जगह आती है कि सारे विचार शांत हो जाते हैं, सारी लहरें शांत हो जाती हैं। तब उस सागर का पूरा अनुभव होता है जो लहरों में दबा था और दिखाई नहीं पड़ता था। लहरें तो उथले में हैं, सागर बहुत गहरे में है। लहरें ढांक लेती हैं सागर को और नीचे उसकी गहराई का कोई पता नहीं चलता। उस गहराई का पता तो शून्य में ही चलता है, जब सब लहरें¬चाहे तर्क की, चाहे कल्पना की, चाहे कोई और¬जब सभी लहरें शांत हो जाती हैं।
लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि जो शून्य हो जाएगा वह विचार ही न कर सकेगा।
यह भी किसी ने प्रश्न पूछा है कि शून्य हो जाएंगे तब तो बड़ी मुश्किल
हो जाएगी, फिर तो विचार ही न कर सकेंगे!
नहीं; शून्य हो जाएंगे तभी ठीक से विचार कर सकेंगे। तभी ठीक से विचार
कर सकेंगे जब शून्य हो जाएंगे। लेकिन उस विचार की फिर कोई लहर न बनेगी, वह विचार हो जाएगी अंतर्दृष्टि, वह विचार हो जाएगी इनसाइट।

जैसे कोई अंधा आदमी हो, अंधे आदमी को सवाल उठे कि अब सभा समाप्त हो गई, बैठक समाप्त हो गई, अब जाना है। तो उसे विचार उठेगा कि अब जाना है, किस रास्ते से जाऊं? कहां है दरवाजा? कौन सा दरवाजा? किस रास्ते से जाऊं? ये सारे विचार उसके भीतर उठेंगे। हम उससे अगर कहें कि अगर तुम्हारी आंखें ठीक हो जाएं, तब भी तुम उठोगे और दरवाजे से निकल जाओगे, लेकिन तब तुम्हारे भीतर विचार नहीं उठेगा। आंख वाला आदमी उठता है और दरवाजे से निकल जाता है। वह यह सोचता नहीं कि यह दरवाजा है, निकलने की जगह है, इसमें से मुझे निकलना है, ऐसा कुछ विचार नहीं करता। देखता है, दरवाजा दिखता है और निकल जाता है। अगर कोई ख्याल दिलाए तो ही उसे ख्याल आएगा कि हां, यह दरवाजा था और मैं इससे निकला, नहीं तो इसका ख्याल भी नहीं आएगा और वह निकल जाएगा।
विचार तो नहीं पैदा होगा, लेकिन एक दृष्टि, एक अंतर्दृष्टि होगी और वह काम कर जाएगी। जैसे-जैसे व्यक्ति का चित्त शांत होता जाता है, उसकी अंतर्दृष्टि प्रखर और स्पष्ट होती चली जाती है। उसके सामने भी समस्याएं आती हैं, लेकिन समस्याओं पर वह उस भांति सिर धुन कर विचार नहीं करता है जैसा हम करते हैं।
हमें क्यों विचार करना पड़ता है इस भांति? हमें इसलिए विचार करना पड़ता
है कि हमें दिखाई नहीं पड़ता। विचार करना पड़ता है इसलिए कि आंख नहीं है। आंख होगी तो विचार नहीं होगा, सीधा दिखाई पड़ेगा समस्याओं के बीच से कि कैसे निकल जाऊं। वह होगी अंतर्दृष्टि। चित्त शांत और शून्य होता है तो जीवन में आ जाती है अंतर्दृष्टि। वह कोई अंतर्दृष्टि विचार से छोटी चीज नहीं है, विचार से बहुत बड़ी चीज है। अंतर्दृष्टि हमेशा विवेकपूर्ण होती है, विचार हमेशा विवेकपूर्ण नहीं होता। विचार से भूलें होती हैं, अंतर्दृष्टि से कभी भूलें नहीं होतीं। क्योंकि विचार के सामने ऑल्टरनेटिव होते हैं, चॉइस होती है, दो विकल्प होते हैं, दस विकल्प होते हैं¬कौन सा चुनूं? एक चुनता है, दूसरे छोड़ देता है। अंतर्दृष्टि के सामने विकल्प नहीं होते, एक ही विकल्प होता है; कोई चॉइस नहीं होती, कोई चुनाव नहीं होता, बस एक ही बात होती है। भूल का कोई सवाल नहीं होता। अंतर्दृष्टि से कभी भूलें नहीं होतीं।
लेकिन शून्य चित्त आदमी कोई विचारहीन नहीं हो जाता है, बल्कि इतना विचारपूर्ण हो जाता है कि उसके भीतर दो विचार नहीं होते, बस एक ही होता है। और एक जहां होता है वहां कोई नाद पैदा नहीं होता, कोई संघर्ष पैदा नहीं होता, कोई लहरें नहीं बनती हैं। जहां बहुत होते हैं, वहां उपद्रव हो जाता है, तूफान हो जाता है। हमारा चित्त, जिसको हम कहते हैं कि विचार कर रहा है, विचार कम कर रहा है, विक्षिप्त ज्यादा है, पागल ज्यादा है।
कभी अपने चित्त को घड़ी आधा घड़ी के लिए एकांत में जाकर देखें। एक कागज
रख लें और मन में जो चलता हो उसको लिख डालें ईमानदारी से, कुछ भी न छोड़ें जो भी मन में चलता हो। फिर आधा घंटे बाद उस कागज को आप किसी को दिखाने को राजी होंगे?
मैं नहीं समझता हूं कि आप राजी होंगे। आप कहेंगे कि नहीं, यह मैं किसी
को नहीं दिखाना चाहता। क्योंकि अगर लोगों ने देख लिया तो मुझे पकड़ेंगे और एकदम पागलखाने ले जाएंगे और मेरा इलाज करवाने लगेंगे कि इनका दिमाग खराब हो गया। यह क्या चल रहा है इनके दिमाग के भीतर?

कभी दस मिनट लिख कर देखेंः क्या चल रहा है आपके दिमाग के भीतर। जिसको
आप कहते हैं विचार! तो आप पाएंगे कि कोई पागल भीतर मौजूद है, असंगत बातें सोच रहा है, व्यर्थ की बातें सोच रहा है, जिनमें एक-दूसरे से कोई संबंध भी नहीं है वह भी सोच रहा है। कभी भगवान की बात भी सोच रहा है, कभी दुकान की बात भी सोच रहा है, कभी सामने जो कुत्ता भौंक रहा है उसकी बात भी सोच रहा है। कभी बीमारी भी, कभी कुछ, कभी कुछ; और यह सब इतना ज्यादा असंगत, बेमेल इकट्ठा हो जाता है कि भीतर करीब-करीब मालूम होता है कि कोई पागल है। इस पागल को हम छिपाए रखते हैं। ऊपर से शांत चेहरा बनाए रखते हैं, भीतर इस पागल को छिपाए रखते हैं। वह तो मौके, बेमौके कभी-कभी यह पागल बाहर निकल आता है। घाटा लग जाए, कोई प्रियजन मर जाए, यह पागल बाहर निकल आता है। देर नहीं लगती इसके निकलने में, वह तो भीतर मौजूद है।

विलियम जेम्स नाम का बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक एक दफा पागलखाने गया। पागलखाने में उसने तरह-तरह के पागल देखे। मैं आपसे भी निवेदन करूंगा, कभी- कभी पागलखाना देखने जाना चाहिए। क्योंकि पागलों को देख कर आपको अपनी स्थिति का पता चलेगा¬कि मैं कहां हूं और कितनी दूर हूं इनसे?
विलियम जेम्स गया। वहां से लौटा तो एकदम उदास होकर लौटा। गया तो बहुत प्रसन्न था, बड़ी उत्सुकता से पागलों को देखने, वहां से लौटा उदास। उस रात सो नहीं सका। दूसरे दिन उसके मित्रों ने कहा कि तुम कल से लौटे हो तो बड़े उदास हो, बात क्या है?
विलियम जेम्स ने कहा कि अब शायद जीवन में मैं कभी प्रसन्न न हो सकूंगा।
उन्होंने कहा, क्यों? ऐसी क्या बात हो गई? ऐसा क्या हो गया?
विलियम जेम्स ने कहा कि उन पागलों को देख कर एक बात मेरे ख्याल में आईः मेरे भीतर भी तो यही सब चल रहा है। तो मैं कितने दिन इसको सम्हाले रखूंगा? और जब ये मित्र मेरे नहीं सम्हाल पाए और किसी दिन बात टूट गई और जो भीतर था बाहर निकल आया, तो किसी दिन यह मेरे साथ भी तो घट सकता है। जब इनके साथ घट सका है तो मेरे साथ क्यों नहीं घट सकता? मैं कोई भगवान से कोई विशेष आज्ञा लेकर नहीं आया हूं कि पागल नहीं हो जाऊंगा। तो मैं घबड़ा गया हूं, मैं भी पागल हो सकता हूं। क्योंकि जो उनके बाहर दिखाई पड़ रहा है, वह मेरे भीतर भी तो मौजूद है। इससे मैं डरा हुआ हूं कि कहीं मैं पागल न हो जाऊं!
विलियम जेम्स ने बाद में अपने एक मित्र को पत्र में लिखा कि यह बहुत अच्छा है कि हमने पागलखाने बना दिए हैं और पागलों को बंद कर दिया है। पागलों के तो चाहे यह हित में हो या न हो, लेकिन उन लोगों के हित में बहुत है जो बाहर हैं। क्योंकि उनको पागल दिखाई नहीं पड़ते और वे निश्चिंत रहे आते हैं कि हम पागल नहीं हैं।
यह क्या हमारे चित्त की स्थिति है? इसको हम कहते हैं विचार? इसको हम कहते हैं थिंकिंग?
काहे का यह विचार है। विक्षिप्तता है! विचार तो वहां होता है जहां चित्त शांत और मौन होता है। वहां दिखाई पड़ती हैं चीजें, वहां होते हैं स्पष्ट जीवन के निर्देश, वहां होते हैं संकेत साफ, मार्ग स्पष्ट। वहां कोई पश्चात्ताप का और लौटने का कारण नहीं होता।
लेकिन हम तो एक उलझे हुए हैं भीतर। एकदम उलझाव है भीतर, कोई सुलझाव नहीं। उसको हम कहते हैं विचार। नहीं, यह कुछ भी विचार नहीं है। चित्त निरंतर चल रहा है¬सोए हैं तब चल रहा है, जागे हैं तब चल रहा है, बैठे हैं तब चल रहा है¬चल ही रहा है, अकारण चल रहा है। यह चलता हुआ चित्त पागल है।
हम यहां इतने लोग बैठे हैं। अगर कुछ लोग बैठे-बैठे अपना पैर भी चलाते रहें, हाथ भी चलाते रहें, तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे, इनका दिमाग कुछ खराब है क्या! बैठे हैं तो पैर चलाने की क्या जरूरत है? चलते होते तब तो पैर चलाने की जरूरत समझ में आती। अब बैठे-बैठे व्यर्थ पैर क्यों चला रहे हैं? हाथ क्यों चला रहे हैं?
लेकिन हम जानते हैं कि हम हाथ नहीं चलाते, पैर नहीं चलाते, चुपचाप बैठे रहते हैं। जब चलना होता है तब पैर चलाते हैं, जब बैठ जाते हैं तो फिर पैर नहीं चलाते। और हम यह भी नहीं कहते कि अगर पैर नहीं चलाएंगे तो फिर चलते वक्त कैसे चलाएंगे? जब चलेंगे तब चलाएंगे, जब बैठेंगे तब रोक लेंगे। लेकिन मस्तिष्क तो पूरे वक्त चल रहा है, वह तो कभी नहीं रुकता। जरूर मस्तिष्क की हालत विकृत हो गई है, मस्तिष्क इसीलिए बीमार हो गया है। यही बीमार मस्तिष्क हमें दुख देता है, पीड़ा देता है, संताप देता है, जीवन को नरक बना देता है।
और जब चित्त को शून्य करना सीख जाएंगे, तो अगर जरूरत होगी सोच की, विचार की तो बराबर कर सकेंगे, और अच्छी तरह से कर सकेंगे। क्योंकि चित्त होगा शांत, और शांत चित्त में ऊर्जा इकट्ठी होती है, इनर्जी इकट्ठी होती है। खर्च नहीं होती शक्ति, इकट्ठी होती है। एक समस्या आती है, समस्या छोटी रहती है, मन के पास बड़ी ताकत रहती है, समस्या को फौरन खोल लेता है।
हमारी हालत उलटी है। एक छोटी सी समस्या आ जाती है, मन के पास ताकत ही नहीं रहती, वह तो फिजूल दौड़-दौड़ कर शक्ति नष्ट करता रहता है। छोटी सी

समस्या आ जाती है, अटक कर वहीं खड़े रह जाते हैं, रोने लगते हैं, छाती पीटने लगते हैं¬क्या करें, क्या न करें? गुरु को खोजने लगते हैं कि किस गुरु के पास जाएं। उससे पूछें, शायद वह सहायता दे दे।
अगर मस्तिष्क के पास शांत शक्ति इकट्ठी होती चली जाए, तो किसी गुरु के पास किसी को जाने की जरूरत नहीं है। यह बहुत अपमानजनक है कि हम छोटी-छोटी समस्याएं लेकर किसी के पास जाएं। यह इस बात की सूचना है कि हमारे पास, हमारे मन के पास कोई ताकत नहीं बची है जो कि अपनी समस्याओं को देख सके और हल कर सके। छोटी-छोटी, क्षुद्र-क्षुद्र बातों को लेकर हम घूमते हैं और किसी से पूछते हैं, यह बहुत अपमानजनक है। यह इस बात की सूचना है कि मन हमारा दिवालिया है, बैंक्रप्ट है। और बैंक्रप्ट है, दिवालिया है और उसी को हम कह रहे हैं कि हम विचार कर रहे हैं। ये तरंगें हमारा स्वभाव हैं, ये लहरें हमारा स्वभाव हैं, यह पागलपन हमारा स्वभाव है।
पागलपन किसी का स्वभाव नहीं है। जैसे आदमी पर बीमारियां आती हैं, लेकिन बीमारियां स्वभाव नहीं हैं; वैसे ही चित्त में रोग आते हैं, विक्षिप्तताएं आती हैं, लेकिन वे स्वभाव नहीं हैं। स्वभाव तो है परिपूर्ण शांति। और कैसे हम जानेंगे कि स्वभाव परिपूर्ण शांति है? जानेंगे इसलिए कि जो आदमी बिल्कुल अशांत है, विचारों से घिरा है, वह भी शांत होना चाहता है। हम जो होना चाहते हैं वही हमारा स्वभाव है, हम कभी भी स्वभाव के विपरीत कुछ नहीं होना चाहते। कोई आदमी अशांत नहीं होना चाहता है। या कि कोई आदमी खोज कर आप ला सकते हैं जो कहे कि हम अशांत होना चाहते हैं? कोई आदमी दुखी नहीं होना चाहता, कोई आदमी पीड़ित नहीं होना चाहता, चिंतित नहीं होना चाहता। इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि उसके केंद्र पर, उसके स्वभाव के जो-जो विपरीत है, वह उसको अस्वीकार करता है। चिंता को, दुख को, बेचैनी को, अशांति को वह कहता है¬हम यह नहीं चाहते। हम होना चाहते हैं शांत, हम होना चाहते हैं आनंदित, हम होना चाहते हैं सुख को उपलब्ध, हम होना चाहते हैं प्रकाश को उपलब्ध, हम होना चाहते हैं स्वतंत्रता को उपलब्ध। क्यों होना चाहते हैं? हमारा स्वभाव इसकी मांग करता है। और जो हम हो गए हैं, वह कुछ गलत हो गए हैं, उसको अस्वीकार करता है, उसको इनकार करता है, उसके ऊपर उठ जाना चाहता है।
शून्य तो स्वभाव है। और शून्य को जो उपलब्ध हो जाता है वह अदभुत विचार
की क्षमता को उपलब्ध हो जाता है, क्योंकि शांत हो जाता है। और शांति में शक्ति इकट्ठी और संगृहीत होती है। और शांति के केंद्र पर ऊर्जा और शक्ति इतने अदभुत रूप से इकट्ठी हो जाती है कि उसका जो भी विस्फोट है, वह जीवन को बहुत आलोक से भरता है।
इस संबंध में कल सुबह और हम थोड़ी बात करेंगे। क्योंकि कल शून्य के संबंध में ही कुछ बात करनी है।

कुछ मित्रों ने अलग-अलग प्रश्नों में यह पूछा है, यह संदेह हुआ है कि आपकी भी सभी बातों में श्रद्धा रखनी चाहिए क्या?

यह संदेह बहुत शुभ है, बहुत स्वागत के योग्य है। लेकिन शायद मेरी बातों को ठीक से नहीं सुना इसलिए यह संदेह उठा है। क्योंकि मैं तो निरंतर कह रहा हूं कि किसी की बात पर श्रद्धा नहीं रखनी चाहिए। तो किसी में मैं भी सम्मिलित हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि और सब की बातों पर श्रद्धा छोड़ दें, विश्वास छोड़ दें और मेरी बातों पर श्रद्धा कर लें। मैं भी तो पराया हूं, मैं भी तो अलग हूं, मैं भी तो दूसरा हूं। मैं जो भी कह रहा हूं वह मेरे लिए होगा सत्य, आपके लिए सत्य नहीं हो जाता है। निश्चित ही उस पर संदेह करना है, विचार करना है। निश्चित ही उसको अंधे की तरह मान नहीं लेना है। कोई भी बात नहीं मान लेनी है किसी की भी। उसमें मैं सम्मिलित हूं, सभी सम्मिलित हैं।
जब भी हम किसी और पर श्रद्धा करते हैं, तो किसी और पर श्रद्धा किस बात
की सूचना होती है? इस बात की कि हमें अपने पर श्रद्धा नहीं है। दूसरे पर श्रद्धा आत्म-अश्रद्धा की घोषणा है। जिस व्यक्ति को अपने पर श्रद्धा नहीं

है, वह किसी पर श्रद्धा करता है। और जिसको अपने पर ही श्रद्धा नहीं है, उसकी दूसरे पर की गई श्रद्धा का कितना मूल्य है? कितना अर्थ है उसमें? जीवन में स्वयं की शक्ति की खोज करनी चाहिए; स्वयं के सत्य की भी। और स्वयं पर पूरी श्रद्धा और बल के साथ श्रम करना चाहिए। उसके अतिरिक्त और कोई संगी-साथी नहीं है, उसके अतिरिक्त कोई सहारा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति है अपना सहारा।
लेकिन हजारों साल की शिक्षाओं ने बड़ी दीनता पैदा कर दी है, बड़ी हीनता पैदा कर दी है। और वे सब शिक्षाएं कहती हैंः किसी और पर श्रद्धा करो। और जब भी कोई आदमी किसी और पर श्रद्धा करने लगता है तो खुद पर उसकी श्रद्धा क्षीण हो जाती है; हो ही जाएगी। और जब खुद पर वह भीतर से श्रद्धाहीन हो जाता है तो उसके सब कदम कमजोर हो जाते हैं, उसकी सामर्थ्य टूट जाती है, वह भयभीत हो जाता है, उसका साहस नष्ट हो जाता है। नये की खोज में नये रास्तों पर जाने की उसकी हिम्मत टूट जाती है। वह अत्यंत दीन-हीन, अत्यंत निःसत्व होकर किसी के चरणों में पड़ा रह जाता है।
होंगे वे चरण मजबूत, होंगे वे चरण शक्तिशाली, लेकिन उनसे क्या लेना- देना है? अपने ही कमजोर कदम साथी हैं, दूसरे के मजबूत कदम नहीं। अपने ही कमजोर कदमों से यात्रा करनी है, किसी और के कदमों से कभी किसी ने यात्रा नहीं की है। अपनी ही आंखों से देखना है, किसी और की आंखों से कौन कब देख सका है?
बहुत पुराने दिनों की कहानी है, एक बूढ़े आदमी की आंखें चली गई थीं। उसके मित्रों ने, उसके परिवार के लोगों ने कहा, आंखों का इलाज करवा लें। लेकिन वह बूढ़ा आदमी बोला, क्या जरूरत है मुझे आंखों की? अस्सी वर्ष की मेरी उम्र हुई। मेरे आठ लड़के हैं, आठ बहुएं हैं, मेरी पत्नी है, घर में चौंतीस आंखें हैं। तो मेरी दो आंखें न हुईं तो क्या फर्क पड़ता है? क्या चौंतीस आंखें काफी नहीं हैं एक घर में?
गणित उसका ठीक था, लेकिन जिंदगी के बाबत शायद उसे पता नहीं था। और अक्सर गणित और जिंदगी का कोई मेल नहीं होता है। जिंदगी बड़ी बेबूझ है। जिंदगी में दो और दो चार हमेशा नहीं होते। जिंदगी बड़ी बेबूझ है, बड़ी रहस्यपूर्ण है। गणित जैसा साफ हिसाब नहीं है। उसने हिसाब लगा लिया कि एक घर में छत्तीस आंखें थीं तो काम चल जाता था, तो क्या चौंतीस आंखों से काम नहीं चलेगा? बात तो उसने ठीक ही सोची थी, गणित बिल्कुल दुरुस्त था। बच्चे भी मान गए, मित्र भी मान गए कि आठ लड़के हैं, आठ बहुएं हैं, एक पत्नी है, तो बहुत तो आंखें हैं घर में। क्या फर्क पड़ता है कि दो आंखें न रहें?
लेकिन पंद्रह दिन भी नहीं बीते थे कि पता चला कि दो आंखें नहीं थीं तो कुछ भी नहीं था। घर में रात आग लग गई। सारे घर के लोग सोए थे। वह बूढ़ा आदमी भी सोया था। जिनके पास आंखें थीं वे आग से बाहर निकल गए। बूढ़ा भीतर रह गया। उसने बहुत सोचा कि शायद चौंतीस आंखों में से कोई आए। लेकिन उन चौंतीस आंखों को ख्याल भी नहीं आया, जब तक वे आग के बाहर न निकल गईं। जब वे बाहर निकल गईं तब उन्हें ख्याल आया। निश्चिंतता में जब पहुंच गए वे सारे लोग तो उन्हें ख्याल आया कि अरे बूढ़ा, घर का बूढ़ा व्यक्ति तो घर के भीतर रह गया! अब क्या हो? लेकिन भीतर जाने का कोई मार्ग न रहा। आंखें बाहर हो गई थीं; जो बिना आंख का था, भीतर रह गया था। और तभी उस बूढ़े आदमी को भी पता चला, जब उसका शरीर जलने लगा और वह कमरे में चीख-पुकार करके भागने लगा और दीवालों से टकराने लगा तब उसने जाना कि घर में जब आग लगी हो तो अपनी ही आंखें काम पड़ सकती हैं, किसी और की नहीं। लेकिन तब बहुत देर हो गई थी और अब कोई उपाय न था, वह घर उसकी चिता बन गया।
जिंदगी में भी बहुत आग है और जिंदगी में भी किसी दूसरे की आंख किसी के काम नहीं आती। बातचीत करनी हो तो अलग है कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, मेरी आंखों से तुम्हारा काम चल जाएगा। बातचीत अलग बात है, जिंदगी, जिंदगी की लपटें और घर में आग लगी हो तो अलग बात है। और जिंदगी के घर में रोज आग लगी है। लेकिन अधिक लोगों को तभी पता चलता है जब वक्त निकल जाता है और घर चिता बनने लगता है, तभी पता चलता है कि अपने पास आंखें नहीं थीं।
कोई कृष्ण की आंखों से चल रहा है, कोई राम की, कोई बुद्ध की, कोई महावीर की, कोई मोहम्मद की। ये आंखें तो मौजूद भी नहीं हैं अब। इन आंखों से कोई भी

चल नहीं सकता है। हां, पूजा-पाठ करना हो तो बात अलग है। लेकिन जीना हो जिंदगी तो बात अलग है, अपनी आंख चाहिए।
तो मुझ पर श्रद्धा करने की जरा भी जरूरत नहीं। मेरी बातों पर विश्वास करने की जरा भी जरूरत नहीं। मेरा निवेदन तो यही है कि भूल कर भी कोई मेरी बातों पर विश्वास न करे। सोचे, विचारे, समझे। सोचने, विचारने, समझने पर, प्रयोग करने पर, तटस्थ भाव से खोज करने पर, विश्लेषण करने पर अगर कोई बात किसी को दिखाई पड़े कि काम की है, तो बात अलग है। लेकिन वह विश्वास नहीं रहा, वह विज्ञान हो गया, वह साइंस हो गई। खोजा, परखा, तोड़ा¬निष्पक्ष भाव से, बिना विश्वास किए, बिना अविश्वास किए, बिना श्रद्धा किए, बिना अश्रद्धा किए¬निष्पक्ष मन से किसी चीज को परखा, जांचा, पहचाना, विवेक की कसौटी पर कसा, प्रयोग किया। और अगर फिर कोई बात ठीक लगी, खुद के अनुभव और विचार से ठीक लगी, तो फिर वह मेरी नहीं रह जाती है, वह आपकी हो गई। इतने परीक्षण और प्रयोग से कोई भी बात आपकी हो गई, फिर वह मेरी नहीं रही, मेरा उससे कोई संबंध नहीं रहा, मेरा उससे कोई नाता नहीं रहा, मेरी उसके लिए कोई जिम्मेवारी नहीं रही, मैं उसके लिए रिस्पांसिबल नहीं रहा, उत्तरदायी नहीं रहा। आप जानें, आपका काम जाने।
लेकिन मुझ पर श्रद्धा करने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी पर श्रद्धा करने की कोई जरूरत नहीं है। विचार की और विवेक की है जरूरत। श्रद्धा के नशे में तो हम हजारों साल से पले हैं और मनुष्य-जाति कहां से कहां भटक गई है! अब तो जरूरत है कि हम विवेक के प्रकाश में चलें, खोजें, परीक्षण करें, जीवन मिला है तो जीएं। क्यों किसी की उधार बातों पर हम विश्वास करें? कौन हूं मैं जो मेरी बातों पर आप विश्वास करें? क्या जरूरत है मेरी बातों पर विश्वास करने की? जो आपसे कहता हो कि मेरी बातों पर विश्वास करो, वह शत्रु है आपका, मित्र नहीं। क्योंकि विश्वास करने की जो आदत डलवा देता है, वह भीतर विवेक जगने की संभावना को बंद कर देता है।
मैं आपका शत्रु नहीं हूं, इसलिए मैं कैसे कहूं कि मुझ पर विश्वास करें? मैं तो कहूंगाः विचार करें, खोजें। मैंने जो कहा है या जो कहूंगा, वह इसलिए नहीं कह रहा हूं कि कोई उस पर विश्वास कर ले, इसलिए नहीं कह रहा हूं कि कोई अनुयायी बन जाए, इसलिए नहीं कह रहा हूं कि कोई शिष्य बन जाए। कुछ भी उसमें प्रयोजन नहीं है। बहुत बचकानी बातें हैं वे सब। कोई किसी का गुरु बने, कोई किसी का अनुयायी, इससे ज्यादा इम्मैच्योर और चाइल्डिश क्या हो सकता है? क्या बचकानी बातें हैं! बच्चों जैसा खेल है! जिंदगी में कोई इन बातों का अर्थ है कि कोई किसी को अनुयायी बना ले और कोई नेता बन जाए? इसका कोई अर्थ है?
छोटे-छोटे बच्चे हैं हम सारे लोग, इसलिए दुनिया में नेता हैं, इसलिए अनुयायी हैं। अगर दुनिया में थोड़ी प्रौढ़ता आएगी, चिंतन आएगा, तो न कोई नेता होगा, न कोई अनुयायी होगा। मित्र होंगे, खोजेंगे, एक-दूसरे के साथी होंगे, सहयोगी होंगे, साझेदार होंगे। जो जानेंगे वे दूसरे को कहेंगे। इसलिए नहीं कि कोई विश्वास कर ले, बल्कि इसलिए कि जो मैंने जाना है, मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं दूसरे को कह दूं। हो सकता है कि किसी भांति मेरी कही हुई बात, उसके विचार में, विश्लेषण में अर्थपूर्ण हो जाए। मेरी कही बात, हो सकता है उसकी खोज में, उसके अनुसंधान में किसी तरह अर्थपूर्ण हो उठे। तब तो ठीक है, अन्यथा कोई उसके मानने का कोई कारण नहीं है और न उस पर विश्वास कर लेने की कोई वजह है।
इसलिए नहीं, कृपा करें, कोई विश्वास न करे। लेकिन एक बात और ध्यान रखें, विश्वास करने से भी बचना चाहिए, अविश्वास करने से भी बचना चाहिए। क्योंकि विश्वास एक तरह की भूल है, अविश्वास दूसरे तरह की भूल है। मैंने यह नहीं कहा है कि कृष्ण पर, महावीर पर, बुद्ध पर¬अविश्वास करें। मैंने कहा है, विश्वास न करें।
लेकिन हम तो हमेशा इस भाषा में सोचने के आदी हो गए हैं कि विश्वास न करें अर्थात अविश्वास करें।
नहीं, अविश्वास भी विश्वास का एक प्रकार है, अविश्वास भी बिलीफ का ही
एक रूप है, नकारात्मक रूप है, निगेटिव रूप है। एक आदमी विश्वास करता है कि ईश्वर है, एक आदमी विश्वास करता है कि ईश्वर नहीं है। यह भी विश्वास है।

इसको हम कहते हैं कि यह अविश्वासी है। एक आदमी कहता है कि राम जो कहते हैं सत्य है, दूसरा आदमी कहता है कि राम जो भी कहते हैं असत्य है। ये दोनों विश्वास कर लिए, ये दोनों अंधे हैं।
जो सत्य की खोज में है वह कहता है, मैं नहीं जानता हूं, इसलिए मैं कैसे करूं विश्वास और कैसे करूं अविश्वास? जानने वाला कर सकता है विश्वास, जानने वाला कर सकता है अविश्वास। मैं तो जानता नहीं हूं तो मैं सुनूंगा, समझूंगा, विचार करूंगा, विश्लेषण करूंगा, खोज करूंगा, समझने की कोशिश करूंगा; न विश्वास करूंगा, न अविश्वास करूंगा। सत्य का खोजी विश्वास और अविश्वास दोनों तटों से बच जाता है और जो नदी है उसमें यात्रा करता है। तट से बच जाता है¬इस किनारे से भी, उस किनारे से भी; और बीच की जो विवेक की धारा है, जो नदी है, जो सागर तक ले जाती है, उसमें यात्रा करता है।
नास्तिक एक किनारे से अपनी नौका बांध देते हैं, अविश्वास के किनारे से। आस्तिक दूसरे किनारे से अपनी नौका बांध देते हैं, विश्वास के किनारे से। विश्वास और अविश्वास के किनारों के बीच में विवेक की धारा है। जो कहीं भी किसी तट पर रुक जाता है वह डबरा बन जाता है, खो जाता है, उसकी यात्रा बंद हो जाती है।
तो नदी बनें, किनारा नहीं। तट से न बंधें, इससे भी नहीं, इसके विरोधी
तट से भी नहीं; बल्कि बीच में, दोनों किनारों के मध्य में खोजें यात्रा को, तो जरूर किसी दिन सागर तक पहुंच जाएंगे। जो किनारे से रुक जाता है वह तो कभी सागर तक नहीं पहुंचता है। सरोवर न बनें, सरिता बनें। विश्वासी और अविश्वासी सरोवर बन जाते हैं, तालाब बन जाते हैं; बंद, सड़ते हैं, फिर उनकी यात्रा नहीं होती, फिर वे कहीं जाते नहीं हैं।
बहुत कम लोग हैं जमीन पर जो नदियों की भांति मुक्त हैं और किनारों से बंधते नहीं और किनारों के बीच में यात्रा करते हैं। वे ही थोड़े से लोग सत्य के सौरभ को, सुगंध को उपलब्ध हो पाते हैं। लेकिन हर एक हो सकता है। अगर समझ हो, अंडरस्टैंडिंग हो तो तटों से मुक्त हो जाना कौन सी कठिन बात है? अपने मन से ही तो बंधते हैं, अपने मन से ही मुक्त हो सकते हैं। तो न तो करें विश्वास, न करें अविश्वास। निष्पक्ष मन से देखें, समझें, सोचें, फिर कुछ उस सोच-समझ से निकलेगा जो जीवन को पथ देता है, प्रकाश देता है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। कुछ और प्रश्न हैं, वे कल दोपहर मैं चर्चा करूंगा। नहीं, कल रात्रि में मैं चर्चा करूंगा। थोड़े-थोड़े दूर हट जाएं। कल थोड़े लोग लेटे थे, आज मैं आशा करूंगा और ज्यादा लोग थोड़ी हिम्मत करेंगे और लेटेंगे। कल की रात तक आशा करेंगे हम कि करीब-करीब सभी लोग लेट जाएंगे।
हां, हट जाएं, रास्ते पर हट जाएं। रास्ते पर हट जाएं, रास्ता बहुत सुंदर है, साफ है, वहां हट जाएं। पीछे जगह है, पीछे हट जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो, कोई किसी का स्पर्श न करे। चाहे बैठें, चाहे लेटें, लेकिन स्पर्श कोई किसी का न करता हो। जल्दी हट जाएं, ताकि प्रकाश बुझा दिए जाएं।

रोम रोम रस पीजिए
आठवां प्रवचन

आदमी की एकमात्र कमजोरी--अहंकार

सत्य की खोज या स्वयं की खोज या परमात्मा की खोज न तो ज्ञान से होती है, न भक्ति से; क्योंकि ज्ञान भी हमारे अहंकार के केंद्र पर इकट्ठा हो जाता है और भक्ति भी। मनुष्य का अहंकार जहां है, वहां कोई संभावना सत्य के द्वार खुलने की नहीं है। और मनुष्य जो कुछ भी करेगा, वह सभी उसके अहंकार का पोषण बन जाता है। मनुष्य जो कुछ भी करेगा उस सबके पीछे, मैं कर रहा हूं, इस भावना को छोड़ना असंभव है। वह चाहे समर्पण कर दे, तो भी मैंने किया है समर्पण, यह बोध पीछे खड़ा रह जाएगा। वह चाहे सेवा करे, वह चाहे प्रेम करे, वह चाहे प्रार्थना करे, वह चाहे शास्त्रों से ज्ञान को अर्जित करे, लेकिन मैं का भाव, ईगो, अहंकार पीछे खड़ा रहेगा। और जो कुछ भी किया जाएगा उस सबसे वह अहंकार और भी बलिष्ठ हो जाता है।
अहंकार के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है, अहंकार के अतिरिक्त और कोई अवरोध नहीं है, अहंकार के अतिरिक्त और कोई बंद द्वार नहीं है। इसलिए मनुष्य कुछ भी करे--चाहे ज्ञान, चाहे भक्ति, चाहे त्याग--जो भी मनुष्य करेगा, उसके द्वारा नहीं पहुंचा जा सकता है। इसलिए मैंने पहली रात आपको कहा थाः जो दौड़ेगा वह खो देगा, जो रुक जाएगा वह पा लेता है; जो कुछ करेगा वह नहीं पा सकेगा, लेकिन जो न करने की स्थिति में ठहर जाएगा वह निश्चित ही उपलब्ध कर लेता है।
तो आज की सुबह एक छोटी सी घटना से मैं चर्चा को शुरू करना चाहता हूं।
एक बिल्कुल ही काल्पनिक घटना है, स्वप्न में उसे देखा था। कोई दो हजार वर्ष पहले यूनान में एक फकीर था डायोजनीज। वह आदमियों के साथ नहीं रहता था, उसने दो-चार कुत्ते पाल रखे थे, उन्हीं के साथ रहता था। एक छोटी सी गुहा में कुत्ते ही उसके संगी-साथी थे। दो हजार वर्ष पहले की बात है, उसकी गुहा में मैं उससे मिलने गया। तो मैंने उससे पूछा कि यहां कोई मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता है! तुम अकेले हो और ये सारे कुत्ते हैं। क्या आदमियों के साथ रहना छोड़ दिया?
तो उस फकीर डायोजनीज ने कहा, कहां आदमी, कहां कुत्ता! कुत्ते से आदमी
की तुलना करना भी अभद्र है! आदमी के साथ मैंने रहने योग्य नहीं पाया इसलिए कुत्तों के साथ रहने लगा हूं। और कुत्ता बहुत बुद्धिमान प्राणी है। और डायोजनीज ने कहा कि एक वक्त आएगा कि कोई भी आदमी किसी आदमी के साथ रहना पसंद नहीं करेगा। उसकी बजाय तो एक आदमी कुत्ता पाल लेगा और उसके साथ ही रहेगा। आदमी कुत्ते से बहुत बदतर है, वह कहने लगा।
मैं बहुत हैरान हुआ और मैंने पूछा, किस कारण से ऐसा है?
लेकिन डायोजनीज तो नहीं हंसा, उसने तो कुछ नहीं कहा, उसके कुत्ते हंसने लगे। यह देख कर मैं बहुत हैरान हुआ, क्योंकि आदमी के सिवाय कोई भी जानवर हंसता नहीं है। हंसना आदमी के ही जीवन की बात है, और कोई पशु-पक्षी हंसता नहीं है। वे कुत्ते हंसने लगे तो मैंने कहा, यह क्या मामला है? ये कुत्ते हंसते भी हैं?
तो उन कुत्तों में से एक बोला और उसने कहा, न केवल हम हंसते हैं, बल्कि
हम बोलते भी हैं। आदमी के साथ रहने से यह बिगाड़ हम में आ गया। ये डायोजनीज के साथ रहते-रहते बिगड़ गए। हंसने भी लगे हैं हम, बोलने भी लगे हैं। कई आदमी जैसी बातें करने लगे हैं। और उस कुत्ते ने मुझसे कहा कि डायोजनीज सोचता है कि कुत्ते बहुत भले हैं, इनके साथ रहें; और हो सकता है एक वक्त आए कि और आदमी भी ऐसा सोचने लगें। लेकिन असली रहस्य न डायोजनीज को पता है और न किसी दूसरे आदमी को। असली रहस्य तो हम कुत्तों को पता है कि बात क्या है। हम कुत्तों ने आदमी की कमजोरी पहचान ली है। हम पूंछ हिलाते हैं और आदमी खुश हो जाता है। सिर्फ कुत्ते ही आदमी की कमजोरी अब तक समझ पाए हैं, और कोई पशु- पक्षी नहीं समझ पाया। इसलिए आदमी हम से खुश रहता है। हम पूंछ हिलाते हैं, वह प्रसन्न हो जाता है। इतना कमजोर है आदमी कि हमारी पूंछ हिलाने से भी प्रसन्न होता है। अहंकार उसकी कमजोरी है।

मेरा सपना टूट गया यह सुन कर। लेकिन फिर बहुत सोचता रहा और पाया कि उन कुत्तों ने जो कहा था, ठीक कहा था। अहंकार आदमी की कमजोरी है। और इसी कमजोरी के केंद्र पर उसका सारा जीवन निर्मित होता है। और इसी कमजोरी के लिए वह जीता है, मरता है। इसी कमजोरी पर सारा जीवन व्यतीत कर देता है। कौन सी बात के लिए? एक ख्याल हैः मैं कुछ हूं! मैं कुछ हूं! और जिस बात से इस ख्याल को पुष्टि मिलती है, जिस बात से इस ख्याल को बल मिलता है, वह उसी बात को करने में जीवन को व्यतीत कर देता है। और क्या पाता है आखिर में? आखिर में मौत आती है और सब बहा ले जाती है। सारा अहंकार, सारे जीवन में जिसे इकट्ठा किया था और मजबूत किया था, वह बिखर जाता है और टूट जाता है।
मनुष्य मृत्यु से इसलिए नहीं डरता है कि पता नहीं मृत्यु में क्या होगा। नहीं, यह असली भय नहीं है, असली फियर यह नहीं है। असली भय यह है कि उसने जिस अहंकार को जीवन भर निर्मित किया है वह बिखर जाएगा, टूट जाएगा। इसलिए मौत से डरता है।
मौत से इसलिए नहीं डरता है कि मौत भयावनी है। क्योंकि मौत को तो किसी
ने देखा नहीं है, उसके भय का कोई भी कारण नहीं है। जिसे हम जानते नहीं हैं उससे भयभीत कैसे होंगे? भयभीत होने के लिए तो जानना जरूरी है, पहचानना जरूरी है। मृत्यु तो है अपरिचित और अज्ञात, उससे भय का क्या कारण है? कौन कह सकता है कि वह जीवन से बेहतर नहीं होगी? कौन कह सकता है कि वह और परम जीवन नहीं होगी? कौन कह सकता है कि वह नये जीवन की शुरुआत नहीं होगी? मृत्यु को तो हम जानते नहीं इसलिए उससे भय का तो कोई भी कारण नहीं। भय किस बात का है?
भय है इस बात का कि जिसे जीवन भर हमने खड़ा किया और श्रम किया, मौत उसे बिखरा देती है और बहा ले जाती है।
लेकिन हम जीते हैं इसी केंद्र के इर्द-गिर्द। साधारण संसार में जीने वाला भी और जिसको हम कहते हैं त्यागी और संन्यासी वह भी, सभी इस अहंकार के केंद्र पर जीते हैं। कोई इस जीवन में बड़े भवन बनाना चाहता है, कोई परलोक में। कोई इस जीवन में सुरक्षा कर लेना चाहता है, कोई आने वाले जीवन में। कोई धन पाना चाहता है, यश पाना चाहता है, कोई परमात्मा को पाना चाहता है। लेकिन सारी दौड़ अहंकार की है, क्योंकि जहां पाने की दौड़ है वहां अहंकार की दौड़ है। कौन पाना चाहता है? क्यों पाना चाहता है? कौन है यह पाने वाला? बहुत कमजोर है मन उस बिंदु पर।
एक फकीर था नसरुद्दीन। वह जब फकीर नहीं हुआ था तो किसी गांव में किसी जंगल के पास एक छोटी सी दुकान करता था, एक होटल चलाता था। उस देश का राजा एक बार जंगल में शिकार करने को निकला, भटक गया और भूल से रात उस गांव में पहुंच गया। छोटा सा दो-चार झोपड़ों का गांव था जहां नसरुद्दीन की दुकान थी। रात वहीं ठहरना पड़ा। सुबह उठ कर उसने दो-चार अंडे उस दुकान से खरीदे और पीछे पूछा कि कितने दाम हैं? तो नसरुद्दीन ने कहा, सौ स्वर्ण अशर्फियां। राजा तो हैरान हो गया! उसने कहा कि बड़ी आश्चर्य की बात है! आर एग्स सो रेयर हियर? क्या मुर्गी के अंडे इतनी मुश्किल से यहां मिलते हैं कि चार अंडों के दाम सौ स्वर्ण अशर्फियां? दो-चार पैसे में मिल जाते हैं राजधानी में तो ये।
नसरुद्दीन ने कहा, एग्स आर नॉट रेयर सर, बट किंग्स आर! अंडे तो मुश्किल
से यहां नहीं मिलते, लेकिन राजा-महाराजा मुश्किल से इधर आते हैं।
उस राजा ने फौरन सौ रुपये निकाल कर दे दिए।
वह राजा गया भी नहीं था कि नसरुद्दीन की पत्नी ने पूछा, बड़ी हैरानी की बात है कि उसने फिर कुछ भी नहीं कहा और सौ रुपये निकाल कर दे दिए! नसरुद्दीन ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। राजा बहुत मुश्किल
से आते हैं। बस फिर कमजोरी के बिंदु को छू लिया।
और नसरुद्दीन ने कहा कि एक बार और ऐसी घटना घटी थी। मैं एक राजदरबार में गया था। मैंने एक पगड़ी पहन रखी थी जो बड़ी सस्ती थी, लेकिन बड़ी रंगीन थी, बड़ी चमकदार थी। अक्सर ऐसा होता है, सस्ती चीजें रंगीन और चमकदार होती हैं। रंगीन और चमकदार होने में उनका सस्तापन छिप जाता है। तो एक सस्ती पगड़ी पहन कर मैं राजदरबार में गया था। चमकदार पगड़ी को देख कर सम्राट ने मुझसे पूछा, कितने की है? मैंने कहा, एक हजार रुपये की। वह राजा चकित हो गया! दस-पांच

रुपया भी उसका मूल्य नहीं था। राजा के बड़े वजीर ने राजा के कान में कहा कि यह आदमी बहुत बेईमान मालूम होता है। यह दो-चार रुपये की पगड़ी है, कहीं इसकी बातों में मत आ जाना। तभी मैंने कहा कि महाराज, मैं जाऊं? मैंने यह पगड़ी खरीदी थी एक हजार रुपये में और मुझे कहा गया था कि इस जमीन पर एक ऐसा महाराजा भी है जो इसे दो हजार रुपये में भी खरीद सकता है। तो मैं जाऊं? यह वह दरबार नहीं है, यह वह महाराजा नहीं है। मैं भूल से आ गया। किसी और दरबार में खोजूं, कोई और महाराजा को ढूंढूं जो इसे दो हजार में खरीद सके। वह आप नहीं मालूम होते, यह दरबार वह नहीं मालूम होता। उस राजा ने कहा, दो हजार रुपये दे दो और पगड़ी खरीद लो।
वह पगड़ी खरीद ली गई और दो हजार रुपये दे दिए गए। जब मैं बाहर निकलता था, उस वजीर ने मुझसे कहा कि तुम बड़े अजीब आदमी हो!
मैंने उस वजीर के कान में कहा कि महानुभाव, आप पगड़ियों के दाम जानते होंगे, मैं आदमियों की कमजोरी जानता हूं।
आदमी बड़ा कमजोर है एक बिंदु पर। अहंकार के बिंदु पर सारी कमजोरी है, सारी वीकनेस है। लेकिन उसको ही हम समझते हैं कि वही है हमारा बल, वही है हमारी स्टें्रग्थ, वही है हमारी शक्ति। कमजोरी को ही अगर कोई शक्ति समझ बैठा हो तो फिर कमजोरी से छुटकारा होना असंभव है और बीमारी को किसी ने स्वास्थ्य समझ लिया हो, तब तो बड़ी कठिनाई है। लेकिन हम सारे लोग कमजोरी को ही बल समझे हुए हैं। और उसको बल मान कर जीवन भर उसी के इर्द-गिर्द घूमते हैं, परिभ्रमण करते हैं। और यह भी नहीं देखते कि उसी परिभ्रमण से सारा दुख, सारी अशांति, सारी बेचैनी, सारी पीड़ा पैदा होती है।
क्या कभी अपने किसी दुख के पीछे झांक कर देखा है? क्या कभी अपनी पीड़ा, अशांति और चिंता और अपमान के पीछे कभी खोजा है? क्या मिलेगा वहां?
खोजने पर मिलेगा अहंकार। खोजने पर मिलेगा मैं। सारी चोट, सारे जीवन
के आघात लगते हैं मेरे मैं पर। और मैं तिलमिलाता हूं, तिलमिलाता हूं और सुरक्षा की व्यवस्था करता हूं, दीवालें बनाता हूं कि कोई चोट न पहुंचा सके। और इस भांति जीने की कोशिश करता हूं निरंतर कि मेरा यह मैं फले और फूले।
लेकिन अहंकार के वृक्ष पर दुख, चिंताओं और पीड़ा के अतिरिक्त कोई फल नहीं लगते। नहीं लग सकते हैं, कभी नहीं लगे हैं, कभी नहीं लगेंगे। वह अहंकार के बीज में ही दुख की संभावनाएं हैं--पीड़ा की, चिंता की, अपमान की, क्रोध की, युद्ध की, हिंसा की, घृणा की--वहीं सारी संभावनाएं इकट्ठी हैं। और बड़ा मजा यह है कि हम बिना यह सोचे कि मैं कौन हूं, निरंतर कहे जाते हैं कि मैं हूं, मैं हूं, मैं कुछ हूं। बिना यह जाने कि मैं कौन हूं?
दुनिया में दो तरह के मार्ग हैं। एक मार्ग है जिस पर लिखा हैः मैं कुछ हूं। और दूसरा मार्ग है जिस पर लिखा हैः मैं कौन हूं? अधार्मिक आदमी वह है जो, मैं कुछ हूं, इस मार्ग पर यात्रा करता है। धार्मिक आदमी वह है, इसके पहले कि वह कहे कि मैं कुछ हूं, वह जान लेना चाहता है--मैं कौन हूं? और बड़े रहस्य की बात यह है कि जब वह खोजने निकलता है कि मैं कौन हूं, तो पाता है कि मैं तो है ही नहीं। और जो इस खोज पर निकलता है कि मैं कुछ हूं, वह खोजता है, खोजता है, जीवन गंवा देता है। वह कुछ तो हो नहीं पाता, यह भी जानने से वंचित रह जाता है कि क्या था।
च्वांगत्से नाम का एक चीनी फकीर एक रात अपने गांव लौटता था। बीच में
एक मरघट पड़ता था और मरघट पर एक खोपड़ी पड़ी थी, उसके पैर से टकरा गई। उसने उस खोपड़ी को उठा लिया, अपने सिर पर रख कर उसे घर आया। उसके मित्रों ने कहा, यह क्या करते हो?
उसने कहा, बड़ी भूल हो गई है, इस खोपड़ी से मेरा पैर लग गया। और वह मरघट कोई छोटे लोगों का मरघट नहीं था, बड़े लोगों का मरघट था।
जिंदगी में तो छोटे और बड़े होते ही हैं, मरघट भी छोटे और बड़े लोगों के अलग-अलग होते हैं। मौत के बाद भी हम फासला रखते हैं कि तुम छोटे आदमी थे और मैं बड़ा आदमी था।
तो मरघट वह बड़े लोगों का था, खोपड़ी किसी बड़े आदमी की है और पैर मेरा लग गया है। यह तो संयोग की बात है कि यह आदमी मर गया, नहीं तो आज मेरे सिर का कोई बचाव नहीं हो सकता था। अगर कहीं यह जिंदा होता और मेरा पैर इसके सिर से

लग जाता, तो फिर मेरा कोई बचाव नहीं हो सकता था। यह तो बिल्कुल संयोग की बात है कि यह मर गया। लेकिन इतनी सी संयोग की बात के लिए मुझे तो भूल नहीं करनी चाहिए, क्षमा तो मुझे मांगनी होगी। इसलिए इसको सिर पर रख कर आया हूं, घर इससे प्रार्थना करूंगा कि मुझे माफ कर दो!
वे लोग हंसने लगे और उन्होंने कहा कि क्या पागलपन की बातें करते हो?
उसने कहा, और इसलिए भी इसे साथ ले आया हूं कि इसे रखे रहूंगा अपने पास, ताकि मुझे स्मरण रहे कि आज नहीं कल मेरा सिर भी किसी मरघट में पड़ा रहेगा और लोगों की लातें लगेंगी। और जब लोगों की लातें लगनी ही हैं और सिर मिट्टी में गिर ही जाना है और लोगों के कदम उस पर से चलेंगे, तो क्या फर्क पड़ता है कि किसी ने जिंदा में भी लात मार दी? क्या फर्क पड़ता है? कितना फर्क पड़ता है? यह मुझे स्मरण रहे, इसलिए इसे साथ ले आया हूं।
जिंदगी भर जिस अहंकार का हम पोषण करते हैं, आखिर में पाते हैं कि वह मिट्टी में पड़ा है और लोगों के पैर उस पर पड़ रहे हैं। जिस अहंकार को हम जीवन भर सम्हालते हैं, पाते हैं कि वह कहां है? धूल होकर, राख होकर उड़ गया, कहीं खोजने से उसका कोई पता नहीं लगता। आग में धुआं हो गया है, मिट्टी हो गया है। कहां है? कितने लोग इस जमीन पर रहे हैं! जिस जगह पर भी हम बैठे हैं वहां भी न मालूम कितने लोग दफनाए गए होंगे। जमीन पर ऐसा कोई हिस्सा नहीं है जहां करोड़ों-करोड़ों लोग न दफना दिए गए हों। जमीन पर कोई ऐसा हिस्सा नहीं है जो मरघट न हो। और कितने उनके अहंकार रहे होंगे! और उस अहंकार के पीछे कितने उन्होंने कष्ट झेले होंगे, और संघर्ष किए होंगे, और हिंसा की होगी, और घृणा की होगी, और सपने दुख के और पीड़ा के देखे होंगे, और रातें खो दी होंगी, नींद खो दी होगी, और जीवन गंवा दिया होगा। वे सब लोग कहां हैं? वे सारे अहंकार कहां हैं? और जिन्होंने जीवन भर अहंकार की पीड़ा झेली हो, क्या उन्हें कोई शांति और आनंद का अनुभव हो पाया होगा? क्या उन्होंने कोई सत्य जान पाया होगा?
लेकिन हम भी उसी रास्ते पर हैं जिस रास्ते पर वे थे। और हम भी वही यात्रा कर रहे हैं। और हर आदमी वही यात्रा करता है, वही भूल-भरी, जो उसके पहले न मालूम कितने लोगों ने की है। लेकिन सचेत होकर खोज नहीं करता कि मैं यह क्या कर रहा हूं?
और कोई ऐसा न सोचे कि जो बड़े भवन बनाते हैं, बड़े महल बनाते हैं, बड़े पदों की खोज करते हैं, वे ही अहंकारी हैं, कोई ऐसा न सोचे। जो सब छोड़ कर नग्न खड़े हो जाते हैं उनके अहंकार का भी कोई अंत नहीं है। और जो सब त्याग करके संन्यासी बन जाते हैं उनके भी अहंकार का कोई अंत नहीं है। अहंकार बड़ी अदभुत बात है! धन से भी अपने को भर लेता है, धन के त्याग से भी अपने को भर लेता है। पद से भी अपने को भर लेता है, पद के त्याग से भी अपने को भर लेता है। महलों में भी अपना भोजन खोज लेता है, झोपड़ों में भी। संसारी में भी और संन्यासी में भी। जहां भी मैं कुछ करता हूं, वहीं अहंकार उसी करने से अपना पोषण खोजने लगता है। फिर हम क्या करें? अहंकार को छोड़ें?
छोड़ना तो एक प्रयत्न होगा और छोड़ने से कभी अहंकार छूटेगा नहीं। हां,
यह हो सकता है कि विनम्रता ऊपर से ओढ़ ली जाए। और तब विनम्र आदमी कहता है कि मुझसे ज्यादा विनम्र आदमी और कोई भी नहीं है। और यह घोषणा अहंकार की घोषणा है। विनम्रता भी अहंकार का भोजन बन सकती है। अहंकार का मतलब हैः मैं हूं! और मैं कुछ हूं जो कोई भी नहीं है। फिर यह कोई भी रूप ले सकता है। एक संन्यासी कह सकता हैः मैं हूं संन्यासी, और कोई नहीं है। और मैं हूं त्यागी, और बाकी सब झूठे हैं। और तब अहंकार वहां खड़ा हो जाएगा।
अहंकार को छोड़ें कैसे? अहंकार छोड़ा नहीं जा सकता। फिर क्या हो? क्या किया जाए? और यही अहंकार है जो चित्त को भरे हुए है। और इसी अहंकार के कारण चित्त खाली नहीं हो पाता, शून्य नहीं हो पाता, शांत नहीं हो पाता, मौन नहीं हो पाता। क्या करें?
पहली बात कुछ करने की नहीं है, पहली बात इस खोजने की है कि यह अहंकार कहां है? क्या है? इसे भीतर खोजने की जरूरत है, यह कहां है और क्या है? सच में यह कुछ है या कि कोई छाया मन में बैठ गई है और हम उसके पीछे दौड़ रहे हैं? यह कुछ है या कि जीवन की किसी गतिमयता के कारण एक पैदा हुआ भ्रम है?

हम एक मशाल को उठा लें और जोर से घुमाने लगें, तो अग्नि का एक वृत्त, एक सर्किल बन जाता है। सर्किल कहीं होता नहीं, वृत्त कहीं होता नहीं। मशाल इतनी तेजी से घूमती है कि बीच के अंतराल और गैप्स दिखाई नहीं पड़ते हैं तो पूरा सर्किल मालूम पड़ता है। मशाल को रोक दें तो हम पाते हैं कि सर्किल कहीं भी नहीं था, केवल मशाल थी।
कहीं यह अहंकार भी जीवन की तीव्र गति, विचार की तीव्र गति के कारण पैदा हुआ कोई वृत्त तो नहीं है, कोई बिंदु तो नहीं है? और अगर कहीं ऐसा कोई बिंदु है जो केवल तीव्र गति के कारण पैदा हो गया है और ठोस मालूम पड़ने लगा है...
क्या आपको पता है, जो चीजें आपको ठोस मालूम पड़ रही हैं, वे कोई भी ठोस नहीं हैं! इलेक्ट्रांस, विद्युत के कण इतनी तेजी से घूम रहे हैं उन ठोस चीजों में कि उनके बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती है इसलिए वे ठोस मालूम पड़ रही हैं। इस जगत में कोई चीज ठोस नहीं है, सारी चीजें तरल हैं। और सारी चीजों के बीच बहुत खाली जगह है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि एक रेल के इंजन को इतना सिकोड़ा जा सकता है कि
वह माचिस की एक डिब्बी में बंद हो जाए, इतनी खाली जगह उस ठोस लोहे के भीतर है। और वैज्ञानिक तो कहते हैं कि सारी दुनिया को इतना सिकोड़ा जा सकता है कि वह एक छोटी सी गेंद बन जाए, इतनी खाली जगह उसके भीतर है। लेकिन अणु दौड़ रहे हैं तीव्र गति से। उनकी तीव्रता, उनकी जो गति की तीव्रता है, उसके कारण बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती है।
एक पंखा जोर से घूमता है। तीन पंखुड़ियां होती हैं, बीच में बहुत खाली जगह होती है। लेकिन फिर वह दिखाई नहीं पड़ती। पंखा तेजी से घूमता है, खाली जगह विलीन हो जाती है।
तेजी से घूमती हुई चीजें ठोसपन का ख्याल पैदा कर देती हैं। कहीं ऐसा
तो नहीं है कि भीतर हम खोजने जाएं और पाएं कि यह जो अहंकार बहुत ठोस मालूम होता है, हम पाएं कि यह है ही नहीं, किसी चीज की तीव्र गति का भ्रम है!
जैसे ही इसकी खोज में लगेंगे, ऐसा ही पाया जाता है। छोड़ना नहीं पड़ता अहंकार, खोज से पाया जाता है कि वह तो है ही नहीं। और तब, तब जो शेष स्थिति रह जाती है मन की, वह न तो विनम्रता है, न अहंकार है। वह कुछ बात ही अलग है जिसका अहंकार से कोई भी संबंध नहीं रहा, क्योंकि पाया गया कि वहां कोई अहंकार नहीं है। घर में हम अंधेरे में बैठे हों तो अंधेरा दिखाई पड़ता है, मालूम होता है कि अंधेरा है। लेकिन एक दीया लेकर अंधेरे को खोजने आ जाएं तो बड़ी मुश्किल हो जाती है, पाया जाता है कि अंधेरा नहीं है।
एक बार अंधेरे ने भगवान की अदालत में शिकायत कर दी थी कि यह सूरज मेरे बहुत बुरी तरह से पीछे पड़ा है! रोज सुबह से मेरे पीछे पड़ जाता है, मेरे प्राण संकट में ला दिए हैं। तो भगवान ने सूरज को बुलाया और पूछा कि अंधकार की शिकायत आई है कि तुम बुरी तरह उसके नाहक पीछे पड़े हो! कौन सी शत्रुता है तुम्हारी उससे?
सूरज ने कहा, अंधकार! आज तक मेरा उससे मिलना नहीं हुआ। वह कहां है? वह शिकायत करने वाला कहां है? मैं उसे देखूं तो मैं कुछ बताऊं कि मेरी कोई शत्रुता है या नहीं।
लेकिन भगवान भी थक गए, हजारों साल हो गए इस शिकायत को हुए, अब तक वे अंधकार को सूरज के सामने नहीं ला सके। सूरज ने कई दफे जाकर उनसे कह दिया कि क्या मामला है? कहां है शिकायत करने वाला? तो अब तो भगवान को भी मान लेना पड़ा है कि बड़ी मुश्किल है, सूरज के सामने अंधकार को नहीं लाया जा सकता। असल में अंधकार है ही नहीं। अगर होता तो बराबर उसे लाया जा सकता था। अगर होता, अगर उसमें कोई एग्झिस्टेंस होता, तो उसे लाया जा सकता था। लेकिन उसका कोई एग्झिस्टेंस ही नहीं है। वह केवल एब्सेंस है। अंधकार प्रकाश की अनुपस्थिति है, अंधकार का अपना कोई होना नहीं है, उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह केवल प्रकाश की गैर-मौजूदगी का नाम है। इसलिए प्रकाश के सामने उसे कभी नहीं लाया जा सकता। क्योंकि जहां प्रकाश मौजूद है अब वहां गैर-मौजूदगी कैसे लाई जा सकती है? अंधकार है एब्सेंस, प्रेजेंस नहीं है किसी चीज की।

अहंकार भी है एब्सेंस, प्रेजेंस नहीं है किसी चीज की। हमारे भीतर जागे हुए होने का अभाव है, हम जागे हुए नहीं है भीतर, इसलिए अहंकार है।
अहंकार हमारे जागे हुए न होने का, हमारी गैर-मौजूदगी का, हमारी अनुपस्थिति का, हमारी एब्सेंस का परिणाम है। अहंकार की अपनी कोई सत्ता नहीं है। अहंकार एग्झिस्टेंशियल नहीं है।
दुनिया में दो तरह की चीजें हैंः एक वे जिनकी सत्ता होती है; और एक वे
जो किसी सत्ता का अभाव होती हैं, उनकी अपनी कोई सत्ता नहीं होती। आत्मा की तो सत्ता है, अहंकार की कोई सत्ता नहीं है। इसलिए जो लोग अहंकार को भरने की कोशिश करते हैं वे तो भूल में हैं ही, जो लोग अहंकार को छोड़ने की कोशिश करते हैं वे और भी गहरी भूल में हैं। जो नहीं है उसे छोड़िएगा कैसे?
तो जिसको हम कहते हैं अहंकारी, वह एक भूल है; जिसको हम कहते हैं विनम्र, वह दूसरी भूल है। छोड़िएगा कैसे? जो नहीं है उसे छोड़ा जा सकता है? जो नहीं है उसे भरा भी नहीं जा सकता, उसे छोड़ा भी नहीं जा सकता।
घर में अंधकार भरा है, हम सारे लोग इकट्ठे होकर अंधकार की पोटलियां बांधें और बाहर फेंकने जाएं, क्या हम अंधकार को बाहर फेंक सकेंगे? हम पोटलियां बाहर ले जाएंगे, अंधकार पीछे के पीछे छूट जाएगा, पोटलियां खाली बाहर पहुंचेंगी। क्या हम बंदूक और तलवार लाएं और अंधकार को डराएं-धमकाएं कि बाहर निकलो, तो अंधकार बाहर निकलेगा? कि हम सब संगठित हो जाएं और इकट्ठी ताकत लगाएं तो हम अंधकार को बाहर निकाल सकेंगे? या कि हम लड़ने लगें अंधकार से तो हम अंधकार को बाहर निकाल सकेंगे?
नहीं; हम पागल हो जाएंगे। क्योंकि हम कितने ही लड़ें, अंधकार वहीं रहेगा। और कितनी ही हम बंदूक-तलवारें चलाएं, कुछ भी न होगा, अंधकार जहां का तहां रहेगा। अंधकार कुछ होता तो तलवार भी काम कर देती, अंधकार कुछ होता तो गठरियों में बांध कर बाहर भी फेंक आते, लेकिन अंधकार तो कुछ है नहीं।
तो अंधकार से तो कोई लड़ता नहीं है, लेकिन अहंकार से लोग लड़ते हैं और यह नहीं जान पाते कि अंधकार और अहंकार बिल्कुल एक जैसे हैं। इनमें जरा भी भेद नहीं है। जरा भी, रंच मात्र भी भेद नहीं है। इसीलिए तो अहंकार से लड़-लड़ कर मर जाते हैं, लेकिन फिर आखिर में पाते हैं कि अहंकार वहीं का वहीं खड़ा है, वह कहीं जाता नहीं; वह वहीं का वहीं खड़ा है, वह कहीं हिलता-डुलता नहीं। तब सोचने लगते हैंः अहंकार बड़ी शक्ति है, हम हार गए और यह तो नहीं हारा। तब सोचने लगते हैंः अहंकार तो बड़ा मजबूत है, इससे जीतना असंभव है।
और मैं आपसे कहता हूं, अहंकार है ही नहीं, मजबूत होने का तो सवाल ही नहीं, शक्ति का तो सवाल ही नहीं है। अगर मजबूत भी होता तो किसी भांति हम हराने में समर्थ हो जाते। कोई कितना ही मजबूत हो, उससे भी मजबूत हुआ जा सकता है। लेकिन जो है ही नहीं उससे कैसे, उससे कैसे जीतिएगा? कैसे उसे हराइएगा? कैसे उसे मिटाइएगा?
अहंकार अंधकार की भांति है। हमारी अनुपस्थिति, भीतर हमारी एब्सेंस है, भीतर हम सोए हुए हैं इसलिए अहंकार है। अगर भीतर हम जागेंगे, तो जागरण ने आज तक अहंकार नहीं पाया है। तब न छोड़ना पड़ता है, न भरना पड़ता है। बस अहंकार पाया ही नहीं जाता है। वह होता ही नहीं, वह है ही नहीं।
इसलिए मैं नहीं कहता हूं, अहंकार छोड़िए। जैसी कि सामान्य शिक्षा है हजारों साल की कि अहंकार छोड़ो, अहंकार छोड़ो, अभिमान छोड़ो। मैं कहता हूं, वह शिक्षा गलत है। क्योंकि जो छोड़ने को कहती है वह मान लेती है कि वह है। और जिसको हमने मान लिया कि है और जो नहीं है वस्तुतः, उसको छोड़ने में जीवन नष्ट होगा और कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं होगा।
एक फकीर एक गांव में आने को था। उसकी बड़ी ख्याति थी, दूर-दूर तक नाम था, उसकी तपश्चर्या की खबरें देश के बाहर तक पहुंच गई थीं। वह निपट नग्न रहता था, बड़ा तपस्वी था, उपवासी था। आता था राजधानी में। उस राज्य का जो राजा था, बचपन का मित्र था उस फकीर का। सोचा उसने स्वागत का आयोजन करूं। बड़ा आयोजन किया, सारे रास्तों पर बहुमूल्य कालीन बिछा दिए, सारे नगर में दीये जलवा दिए, सारे गांव में इत्र छिड़कवा दिया, सुगंध भरवा दी।
फकीर मार्ग में था। लोगों ने उससे कहा कि राजा, जो तुम्हारा बचपन में मित्र था, तुम्हें हतप्रभ करना चाहता है। उसने राज्य को ऐसा सजाया है, राजधानी को, ताकि तुम फीके पड़ जाओ, ना-कुछ दिखाई पड़ने लगो। ताकि वह दिखा

सके कि वह बड़ा सम्राट है, धन के अटूट अंबार उसके पास हैं। तुम क्या हो, एक नंगे फकीर! तो अपनी धन-दौलत, अपनी शक्ति दिखाने के लिए राजधानी सजा रहा है। फकीर ने कहा, कोई फिक्र न करो, देख लेंगे कि क्या दिखलाना चाहता है!
जिस सांझ फकीर का आगमन हुआ, राजा गांव के बाहर बड़ा तोरण-द्वार बना कर मौजूद था। उसकी रानियां, उसके वजीर, सब मौजूद थे। उन्होंने बड़ा शाही स्वागत किया। लेकिन सब देख कर दंग रह गए। गर्मी के उष्ण दिन थे, लेकिन फकीर, नंगा फकीर घुटनों तक कीचड़ से भरा हुआ था! सब हैरान हुए, इतनी कीचड़ तो कहीं होने की कोई संभावना नहीं थी। रेगिस्तानी देश था वह, पानी मुश्किल से मिलता था, कीचड़ बनानी तो बहुत ही कठिन थी। और वर्षा के दिन न थे, रास्ते सूखे पड़े थे और आग उबल रहा था सूरज। कहां इतने घुटने से कीचड़ में भर गया होगा यह फकीर? लेकिन एकदम से पूछना भी उचित नहीं था। फकीर उन ईरानी कालीनों पर कीचड़ भरे पैरों से चला। बहुमूल्य महल की सीढ़ियों पर भी कालीन बिछे थे, उन पर भी चला। महल के भीतर पहुंच कर राजा ने पूछा, कोई संकट आया, कोई तकलीफ हुई है मालूम होता है। पैर इतने कीचड़ से भरे हैं! क्या हुआ? कोई दुर्घटना हुई है?
उस फकीर ने कहा, नहीं, कोई दुर्घटना नहीं हुई। तुम क्या समझते हो अपने
को कि रास्तों पर ईरानी कालीन बिछा कर तुम अपनी शान-शौकत दिखाना चाहते हो? तो हम भी फकीर हैं, हम कीचड़ भरे पैर उन पर चल कर दिखला देंगे!
उस राजा ने उस फकीर को गले लगा लिया और कहा, मेरे मित्र, मैं तो सोचता
था कि तुम बदल गए होओगे। हम दोनों वहीं हैं जहां हमने विदा ली थी। मैं तो सोचता था कि मैं अहंकारी हूं इसलिए साम्राज्य को बढ़ा रहा हूं। यह मेरी कल्पना में भी नहीं था कि तुम भी अहंकारी हो इसलिए नंगे हो गए हो।
दुनिया में दो तरह के अहंकारी हैं। एक जो पद को, शक्ति को और धन को खोजते हैं। और एक जो पद का त्याग करते हैं, धन का त्याग करते हैं, शक्ति का त्याग करते हैं। ये दो अतियां हैं अहंकार की, ये दोनों ही अहंकार हैं। एक तीसरी भी जीवन-दिशा है और एक तीसरा भी अनुभव है, जो न तो अहंकार को भरने का है और न छोड़ने का। जो इस सत्य को जानने का है कि अहंकार छाया थी, अनुपस्थिति थी। अहंकार है ही नहीं, था ही नहीं।
चित्त के भीतर जागरण से प्रतीति होगीः अहंकार अंधकार है। जागरण है शून्य होने का उपाय, अहंकार है भरापन। और जो अहंकार से भरा है, स्मरण रखे, वह परमात्मा से खाली रह जाएगा। क्योंकि आखिर परमात्मा को आमंत्रण देने जाएं तो भीतर जगह भी तो चाहिए कि वह आ सके, स्पेस तो चाहिए थोड़ी-बहुत, कोई स्थान तो चाहिए कि वह भीतर आ सके। वह आ भी जाए द्वार पर तो क्या होगा? अगर भीतर हम भरे हैं तो उसे द्वार से ही वापस लौट जाना होगा। और वह तो निरंतर द्वार पर खड़ा है, लेकिन हम भीतर भरे हैं। और भीतर हम भरे हैं, क्योंकि भीतर हम सोए हैं। भीतर सब मूर्च्छित और सोया हुआ है, भीतर कोई जागरण की किरण नहीं है।
लेकिन कोई अपने सोए होने को स्वीकार नहीं करता। जैसे कोई पागल अपने पागल होने को स्वीकार नहीं करता है, ऐसे कोई सोने वाला भी यह स्वीकार नहीं करता है कि मैं सो रहा हूं। लेकिन स्मरण रखें, जिसे नींद तोड़नी हो अपने अंतस की, उसे यह सबसे पहले जान लेना, स्वीकार कर लेना होगा कि मैं सोया हूं, तो फिर कुछ हो सकता है।
एक फकीर एक गांव में गया था, समझा रहा था लोगों को। गांव के सब लोग इकट्ठे हुए थे। गांव का एक बहुत बड़ा धनिक भी आया था, वह सामने ही बैठा था। लेकिन दिन भर, दिन भर धन की खोज-बीन, थका-मांदा था। फकीर तो बोलता था, धनिक सो गया था। जैसा कि अक्सर होता है, फकीर बोलते रहते हैं, धनिक सोए रहते हैं। वह भी सोया हुआ था। उसका नाम था आसोजी। वह राजस्थान के किसी गांव की घटना है। तो उस फकीर ने देखा कि सो गया है तो उसने बीच में अपनी बात बंद की और कहा, आसोजी, सोते हो?
उसने जल्दी से आंख खोली, उसने कहा कि नहीं महाराज, आंख बंद करके सुनता हूं, सोता नहीं हूं।
फिर थोड़ी देर फकीर ने बात की होगी, आसोजी फिर सो गए। सोया हुआ आदमी कितनी देर जग सकता है? आंख खोल लेने से कोई जागना तो होता नहीं, फिर सो गया। फिर उस फकीर ने बीच में टोका, रुक गया और कहा, आसोजी, सोते हो?

आसोजी को गुस्सा आ गया। सोए हुए आदमी को गुस्सा जल्दी आ जाता है। उसने कहा कि क्या बार-बार यह लगा रखा है कि सोते हो, सोते हो! मैं आंख बंद करके ध्यानपूर्ण रीति से सुन रहा हूं और आप समझते हो सोते हो। और यह सारा गांव सुन लेगा कि आसोजी सोते हैं तो और एक बदनामी होगी। अब दुबारा इसको कहने की जरूरत नहीं है। आप अपनी बातचीत जारी रखिए। इससे क्या प्रयोजन है कि मैं क्या कर रहा हूं?
फिर बातचीत चली। वह फकीर भी जिद्दी रहा होगा। थोड़ी देर बाद आसोजी फिर
सो गए। फिर तीसरी बार उस व्यक्ति ने बीच में रुक कर कुछ कहा, अब की बार बड़ी नई बात कही। उसने कहा, आसोजी, जीते हो?
आसोजी नींद में समझे कि फिर वही पुराना प्रश्न पूछ लिया है। उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, कौन कहता है? उन्होंने सोचा कि शायद फकीर फिर कहता है आसोजी, सोते हो? तो उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, कौन कहता है?
फकीर ने कहा, अब तो बात पकड़ ही गई है। और तुम ठीक ही कहते हो, क्योंकि
जो सोता है वह जीता नहीं है।
जीवन तो जागरण है, जीवन निद्रा नहीं है। लेकिन हम सब सोए हुए हैं। बाहर की तरफ तो हम थोड़े-बहुत जागे हुए मालूम पड़ते हैं, लेकिन भीतर की तरफ हम बिल्कुल सोए हुए हैं। और बाहर की तरफ भी हमारा जागरण अत्यंत धीमा और फीका-फीका है। वह भी बहुत तीव्र नहीं है, वह भी बहुत सतेज नहीं है।
अभी आप यहां बैठे हैं, ऐसा लगता है कि मुझे सुन रहे हैं। लेकिन मुझे थोड़े ही सुनते होंगे। भीतर एक तरह की नींद चल रही होगी, सपने चल रहे होंगे, न मालूम क्या-क्या विचार चल रहे होंगे। उस तंद्रा में मेरी बात क्या सुनाई पड़ती होगी! सुनाई पड़ती होगी तो ऐसे ही--मैं कहूंगा, जीते हो? आप समझेंगे, सोते हो। वैसे ही सुनाई पड़ेगा।
भीतर एक तंद्रा है, एक मूर्च्छा है, एक बेहोशी है। रास्ते पर चलते चले जाते हैं, भीतर बेहोशी चल रही है, चले जा रहे हैं रास्ते पर। जीवन करीब-करीब सोते-सोते व्यतीत होता है। रोज सुबह उठ आते हैं, इससे यह मत सोच लेना कि जग गए। बस एक थोड़ा सा, धुंधला सा होश है बाहर का। किसी तरह टटोलते- टटोलते उस धुंधले होश में जिंदगी गुजार लेते हैं, लेकिन जिंदगी को जान नहीं पाते। जानने के लिए तो बहुत इंटेंसिटी चाहिए जागरण की, बहुत तीव्रता चाहिए, बहुत उत्कटता चाहिए।
अब यहां हम बैठे हैं। अगर यहां जमीन पर हम एक लकड़ी की पट्टी रख दें एक फुट चौड़ी और सौ फीट लंबी और सबसे कहें कि इस पर चलो। सभी लोग चल जाएंगे, छोटे बच्चे, स्त्रियां, बूढ़े, सभी निकल जाएंगे, कोई गिरेगा नहीं। लेकिन उसी को हम दो मकानों की छत पर रख दें, उसी पट्टी को--एक फुट चौड़ी, सौ फीट लंबी वही पट्टी--और लोगों से कहें कि चलो। फिर कोई उस पर चलने को राजी न होगा। कोई जाएगा भी कदम दो कदम तो पीछे लौट आएगा कि इसमें जान का खतरा है। क्या बात है? पट्टी तो वही है, जमीन पर तो चल सके थे, फर्क क्या पड़ गया है? फर्क यह पड़ गया है कि जमीन पर तो मूर्च्छित चल सकते थे, अब मूर्च्छित
चल नहीं सकते, अब बहुत होश से चलना पड़ेगा। होश की कोई आदत नहीं है। जमीन पर तो सोते-सोते चल सकते थे, कोई खतरा नहीं था, इसलिए नींद में भी चल सकते थे। लेकिन दो छतों पर रुक गई है पट्टी अब, पट्टी वही है, चौड़ाई वही है, लंबाई वही है, आप भी वही हैं, फर्क क्या पड़ रहा है चलने में? लेकिन अब एक नया खतरा खड़ा हो गया है। और वह खतरा यह है कि होश से चलना पड़ेगा।
तो जिंदगी में जहां कहीं बहुत डेंजर होता है वहां तो थोड़ा सा होश हममें पैदा होता है, नहीं तो हम आमतौर से सोए-सोए चलते रहते हैं। और हम बड़े होशियार लोग हैं। अगर खतरे आते भी हैं तो हम कोई तरह की व्यवस्था कर लेते हैं, ताकि नींद में ही उनमें से भी गुजर जाएं।
कोई खतरा आता है तो एक धक्का लगता है, थोड़ा सा होश मालूम पड़ता है। लेकिन फिर हम सो जाते हैं। घर में कोई आदमी मर जाता है, जिसको हम प्रेम करते थे वह मर गया, एक धक्का लगता है, एक सेकेंड को कोई चीज हमारे भीतर जगने लगती है। लेकिन तत्क्षण हम कहने लगते हैं, अरे आत्मा तो अमर है, क्या फिकर करनी है, आत्मा तो अमर है। वह जो मरने का धक्का था--आत्मा अमर है, आत्मा अमर है कह-सुन कर, समझ कर, कोई घबड़ाने की बात नहीं, कर्मों का फल है, ऐसे पच्चीस एक्सप्लेनेशन खोज कर फिर हम सो जाते हैं। एक मौका मिला था कि एक धक्का

लगता मृत्यु का और हमारे भीतर कोई चोट लगती और हम जग जाते। लेकिन हमने कुछ व्याख्याएं कर लीं, कोई शास्त्र पढ़ लिए, किसी पंडित से जाकर समझ लिया, दो- चार दिन में थोड़ा रोए-गाए; फिर सब ठीक हो गया, फिर हम चलने लगे, फिर नींद कायम हो गई।
जिंदगी में आते हैं कुछ मौके जब कि हमें एकदम से धक्का लगता है और जागने का मौका आ जाता है, शॉक लगता है और जागने का मौका आ जाता है। लेकिन नहीं, हम बहुत होशियार लोग हैं। अपनी नींद की बड़ी सुरक्षा करते हैं, नींद को फिर जमा लेते हैं, फिर इंतजाम कर लेते हैं। फिर गाड़ी सोई-सोई चलने लगती है।
यह हमारा सोया हुआ पन, यह हमारी भीतर की निद्रा, यही निद्रा ने हमारे भीतर हम क्या हैं, इसे जानने से वंचित कर दिया है। कौन हूं मैं इसे देखें।
...

वंचित किया है निद्रा ने हमें स्वयं से। और स्वयं से वंचित होने की स्थिति में हमने एक काल्पनिक व्यक्तित्व अपना खड़ा कर लिया है, एक अहंकार खड़ा कर लिया है कि मैं यह हूं, मैं यह हूं, मैं यह हूं। मेरे पास धन है तो मैं यह हूं, मेरे पास पद है तो मैं यह हूं। मैं राष्ट्रपति हो गया तो मैं यह हूं, मैं यह हो गया तो मैं यह हूं। हमने फिर अपना अहंकार खड़ा कर लिया है सब्स्टीट्यूट की तरह। आत्मा का तो कोई पता नहीं कि कौन हूं मैं, तो फिर हमने वस्त्र ओढ़ लिए हैं और उनके हिसाब से हमने तय कर रखा है कि मैं यह हूं। इसलिए तो हमें चोट लगती है, अगर कोई हमारा जरा ही वस्त्र खींचता है तो हमें बहुत चोट लगती है। क्योंकि वस्त्र खींचने पर भीतर पता ही नहीं चलेगा कि कौन हूं मैं। उसी से तो हमने अपने को सम्हाल रखा है।
एक आदमी को कोई पद से उतारे तो कैसी पीड़ा होती है जैसे प्राण जा रहे हों। क्यों? क्योंकि पद पर था तो उसे लगता था मैं कुछ हूं। और पद से उतर जाएगा तो ना-कुछ हो जाएगा, नोबडी हो जाएगा, पता नहीं चलेगा कि कौन है, कौन नहीं है। पद की, धन की इतनी खोज इसीलिए तो है। इसीलिए है इतनी खोज ताकि मुझे लग सके कि मैं कुछ हूं, समबडी हूं, कुछ हूं। जितनी ऊंचाई पर आदमी चढ़ता जाता है पदों के शिखरों पर, उसे लगता है मैं कुछ हूं।
लेकिन बड़ा मजा है, यह कुछ हूं का भाव मैं पैदा कर रहा हूं और उस चीज से बचने के लिए एक पूरक खोज रहा हूं, बिना इस बात को जाने कि मैं कौन हूं और क्या हूं!
मैं कौन हूं? धर्म की सारी खोज का आधार यही जिज्ञासा है। और इसे जानने
के लिए न तो शास्त्रों की जरूरत है न भक्ति की, बल्कि भीतर जागने की और पहुंचने की जरूरत है। जीवन में जो भी घटित हो रहा है उसे बहुत होशपूर्वक, बहुत अवेयरनेस में देखें और परखें। जैसे-जैसे जीवन की प्रत्येक क्रिया के प्रति आप जागे हुए हो जाएंगे... अभी तो किसी क्रिया के प्रति जागे हुए नहीं हैं।
बुद्ध के सामने एक व्यक्ति आकर बैठा था और पैर का अंगूठा हिलाए जा रहा था। तो बुद्ध ने कहा, मेरे मित्र, क्या तुम बता सकोगे यह अंगूठा क्यों हिलता है? उस आदमी ने... जैसे ही बुद्ध ने यह कहा कि अंगूठा क्यों हिलता है, फौरन वहीं अंगूठा रुक गया। बुद्ध ने कहा कि बताओ यह अंगूठा क्यों हिलता है?
उसने कहा कि मुझे कुछ पता नहीं कि क्यों हिलता है, पता नहीं कि क्यों हिलता है।
तो बुद्ध ने कहा, तुम्हारा अंगूठा और तुम्हें पता न हो कि क्यों हिलता है, क्या यह शोभन है? क्या यह शोभा-योग्य है? तुम्हारा अंगूठा और तुम्हें पता न हो कि क्यों हिलता है! तो अंगूठे के ही बाबत नहीं, फिर तुम्हें अपनी और चीजों के बाबत भी शायद ही पता हो कि वे क्यों होती हैं!
तुम्हारा चित्त क्यों क्रोध करता है, क्यों घृणा से भरता है, क्यों प्रेम करता है, यह भी तुम्हें पता नहीं होगा! क्योंकि जो एक तल पर सोया है वह दूसरे तल पर भी सोया रहता है। और जो एक तल पर जागता है वह दूसरे तल पर भी जाग जाता है।
तो जागने का प्रत्येक तल पर जो प्रयास है उसको ही मैं साधना कहता हूं। शरीर के तल पर जागना है कि क्या हो रहा है, जगत के तल पर जागना है कि वहां

क्या हो रहा है, भीतर मन के तल पर जागना है कि वहां क्या हो रहा है। और जो व्यक्ति इन तीनों तलों पर जागने के श्रम में संलग्न होता है, धीरे-धीरे उसके भीतर एक अभिनव होश, एक ज्योति जगनी शुरू हो जाती है, जो हर चीज को देखती है। और जैसे-जैसे यह देखने की क्षमता उसके भीतर विकसित होती है, वैसे-वैसे ही उसके भीतर ट्रांसफार्मेशन और परिवर्तन शुरू हो जाता है। क्योंकि जैसे-जैसे वह जागता है, वैसे-वैसे सबसे पहले उसका अहंकार विलीन होने लगता है। उसे दिखाई पड़ता है कि मैं? मैं जैसा तो कुछ भी नहीं है!
अभी तो हम कहते हैंः मेरा जन्म हुआ। वैसे आदमी को दिखाई पड़ता हैः मेरा क्या जन्म हुआ! जन्म हुआ, इतना काफी है कहना। जीवन ने एक रूप लिया, इतना कहना काफी है। मेरा जन्म हुआ, यह कहना तो बिल्कुल नासमझी है। क्योंकि जन्म के पहले न तो मुझसे पूछा गया, न मुझे कोई खबर दी गई, न मेरी कोई राय ली गई। मेरा जन्म हुआ, यह कैसे कहूं? लेकिन हम कहते हैंः मैं श्वास लेता हूं। वैसा आदमी जानता हैः श्वास आती है और जाती है, मैं कहां लेता हूं! और अगर मैं श्वास लेता हूं, तब तो फिर मृत्यु आ ही नहीं सकेगी। क्योंकि मौत आकर खड़ी हो जाएगी, मैं श्वास लिए ही चला जाऊंगा, तो फिर क्या होगा, मौत को वापस लौटना पड़ेगा।
लेकिन नहीं, हम जानते हैं कि जो श्वास बाहर गई, अगर वह भीतर नहीं लौटेगी तो फिर मैं नहीं ले सकूंगा। तो जब मैं नहीं ले सकूंगा मृत्यु के क्षण में श्वास, तो जीवन में मैंने श्वास ली थी, यह गलती थी या नहीं?
आप श्वास ले रहे हैं? तो रोक लें श्वास को भीतर ही! थोड़ी देर में पाएंगे कि श्वास बाहर जाना चाहती है और आपको वहीं छोड़ कर श्वास बाहर चली जाएगी। श्वास आ रही है और जा रही है। आप ले रहे हैं? तो जो व्यक्ति भीतर जागता है थोड़ा उसे दिखाई पड़ता हैः श्वास आती है और जाती है, मैं कहां हूं? कहते हैंः मुझे भूख लगी, मुझे प्यास लगी। वैसा व्यक्ति जानता हैः प्यास लगती है, भूख लगती है, मैं कहां हूं? जीवन में जैसे-जैसे खोजता है, वह पाता है कि घटनाएं घट रही हैं और मैं घटनाओं को अपने मैं से जोड़ता चला जा रहा हूं व्यर्थ ही। मौत आ जाएगी, जन्म होगा, श्वास चलेगी। बच्चे थे हम, जवान हो गए। हम कहते हैं, मैं जवान हो गया। बड़े मजे की बात है, जैसे जवानी को आप लाए हों। जवानी आई है। जवानी आई है, बुढ़ापा आता है, जन्म होता है, मृत्यु होती है। लेकिन हम सारी चीजों को मैं से जोड़ते हैं कि मैं! और एक झूठे मैं को खड़ा करने लगते हैं जो कि कहीं भी नहीं है।
एक छोटी सी कहानी मुझे बड़ी प्रीतिकर है, कि महल के निकट कुछ बच्चे खेलते थे। उन्होंने खेल ही खेल में पत्थर की ढेरी से एक पत्थर उठाया और राजमहल की खिड़की की तरफ फेंक दिया। पत्थर जब ऊपर उठने लगा तो उसने नीचे पड़े हुए पत्थरों से कहा, मित्रो, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं।
नीचे पड़े पत्थर चुपचाप ईर्ष्या में सुनते रहे। करते भी क्या? निश्चित
ही जा रहा था वह पत्थर ऊपर। उन्होंने भी बहुत जाना चाहा था, लेकिन उनके पास पंख नहीं थे और वे कभी नहीं उड़ सके थे। लेकिन आज उनकी ढेरी का एक पत्थर बिना पंखों के ऊपर जा रहा था, चमत्कार था, मिरेकल था! और स्वाभाविक था कि उस पत्थर ने यह कहा कि मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं।
फेंका गया था वह पत्थर, लेकिन उसने कहा कि मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। वह गया ऊपर और महल की खिड़की से टकराया और कांच चकनाचूर हो गया। तो उसने कहा, मैंने कितनी बार नहीं कहा है कि मेरे रास्ते में कोई न आए, नहीं तो चकनाचूर हो जाएगा!
कांच चकनाचूर हो गया था जरूर, लेकिन उसने कहा कि कोई मेरे रास्ते में
न आए! कितनी दफा नहीं कहा है कि मेरे रास्ते में जो भी आएगा, चकनाचूर कर दूंगा! अब देखो चकनाचूर होकर पड़े हो!
कांच टुकड़े हो-हो कर रो रहा था। पत्थर भीतर गया और कालीन पर गिर पड़ा। गिरते ही उसने कहा, थक गया बहुत, एक शत्रु का नाश भी किया, लंबी यात्रा भी की, थोड़ा विश्राम कर लूं। और साथ ही कहा कि कैसा अच्छा है यह भवन का मालिक। लगता है मेरे आने के पहले ही मेरे आने की खबर पहुंच गई है, कालीन बिछा दिए हैं, स्वागत का पूरा इंतजाम कर रखा है। कैसे अच्छे लोग हैं, कैसे अतिथि प्रेमी! पहले से ही सब व्यवस्था, सुव्यवस्था कर रखी है। शायद पता चल गया कि मैं आने को हूं। आखिर मैं कोई छोटा-मोटा पत्थर तो नहीं हूं, आखिर उड़ने वाला

पत्थर हूं, यात्रा करने वाला पत्थर हूं। मैं कोई सामान्य, ऑर्डिनरी पत्थर थोड़े ही हूं, मैं विशिष्ट हूं। साधारण पत्थर जमीन पर पड़े रहते हैं, जो महापुरुष होते हैं पत्थरों में वे आकाश की यात्रा करते हैं। तो मेरे स्वागत में इंतजाम किया है तो ठीक ही है।
और तभी महल के नौकर ने सुनी होगी आवाज कांच के टूट जाने और पत्थर के आगमन की, वह भागा हुआ आया होगा। उसने पत्थर को हाथ में उठाया। पत्थर ने कहा, कैसे प्यारे लोग हैं! धन्यवाद-धन्यवाद उसके हृदय में उठा। घर के मालिक कैसे अदभुत हैं! अपने विशेष प्रतिनिधि को भेजा है ताकि वह मेरा स्वागत करे, ताकि अपने हाथों में मुझे उठाए और प्रेम करे।
और उस नौकर ने उस पत्थर को वापस खिड़की से नीचे फेंक दिया। तो उस पत्थर
ने लौटते वक्त कहा, अब चलूं! घर की और मित्रों की बहुत याद आती है, होम सिकनेस मालूम होती है। वह वापस पत्थरों की ढेरी में गिरता था। नीचे दूसरे पत्थर टकटकी लगाए उसे देख रहे थे। गिरते ही उसने कहा कि मित्रो, तुम्हारी बहुत याद आती थी। माना कि हम जमीन पर खुले में पड़े रहते हैं और मुझे वहां महलों का स्वागत मिला। लेकिन मैंने ठोकर मार दी उस महल पर, लात मार दी, कर दिया त्याग उस महल का। अपना घर अपना ही घर है, पराया घर पराया ही घर है। यह बात ही और है, तुम सब के साथ जीना और रहना। महल का मालिक तो हाथ में उठा कर प्यार करने लगा था, लेकिन मैं उसके मोह में पड़ा नहीं। मैंने तो कहा, मैं घर जाऊंगा। बड़ी मुश्किल पड़ी, बड़ी मुश्किल से आने दिया उन लोगों ने। वह तो हाथ में पकड़े ही हुए था। लेकिन मैं चला आया हूं, तुम्हारी बड़ी याद आती थी।
वे सारे पत्थर उसकी बात गौर से सुनने लगे और उन्होंने कहा, ऐसा कभी नहीं हुआ है हमारे वंशों में, इतिहास में यह घटना मुश्किल से कभी-कभी घटती है कि हम में से कोई आकाश की यात्रा करता है। तुम हो बड़े सौभाग्यशाली, ईश्वर की विशेष कृपा तुम पर मालूम पड़ती है। तुम अपनी आत्मकथा जरूर लिख देना, आटोबायोग्राफी जरूर लिख देना। आने वाले बच्चों के काम पड़ेगी। वे पढ़ेंगे और गौरवान्वित होंगे कि कैसे-कैसे महापुरुष अतीत में पैदा हो चुके, कैसे-कैसे ज्ञानी, कैसे-कैसे यात्रा करने वाले।
वह पत्थर आत्मकथा लिख रहा है। बहुत पत्थरों ने पहले लिखी है, वह भी अपनी लिख रहा है। बहुत पत्थरों की आत्मकथा से उनके बच्चे बहुत आनंदित हो रहे हैं, बहुत आह्लादित हो रहे हैं और अतीत का गौरवगान कर रहे हैं, उस पत्थर के बच्चे भी करेंगे।
हंसी आती है इस पत्थर पर, लेकिन अपने पर हंसी नहीं आती! हम क्या कर रहे हैं? इस पत्थर से कोई भिन्न हमारी जीवन-कथा है? लेकिन उस पत्थर ने सारी घटनाओं को जोड़ लिया मैं के केंद्र पर। खड़ा कर लिया एक झूठा केंद्र, जोड़ लीं सारी घटनाएं। हम भी खड़ा कर रहे हैं एक झूठा केंद्र और जोड़ रहे हैं सारी घटनाएं।
मेरा निवेदन है, खोजें अपने भीतर कि यह मैं का केंद्र कहीं है? और जिसने भी खोजा है उसने कभी नहीं पाया कि भीतर ऐसा कोई केंद्र है। भीतर ऐसा कोई केंद्र नहीं है। और जब इस केंद्र को नहीं पाया जाता है, तब जो पाया जाता है वही है--वही कहें आत्मा, कहें परमात्मा, कोई और नाम दें--जब यह मैं का केंद्र नहीं पाया जाता है और यह बिखर जाता है और यह छाया की भांति विलीन हो जाता है और अंधकार की भांति खो जाता है, तब जो शेष रह जाता है वही है सत्य। अपने भीतर पहले दिखाई पड़ता है वह सत्य, तो उसे हम आत्मा का नाम देते हैं। लेकिन जैसे-जैसे उस सत्य की प्रतीति और गहरी होती है, वही सत्य सबके भीतर दिखाई पड़ने लगता है और हम उसे परमात्मा कहते हैं।
जो मेरे भीतर है वही सबके भीतर भी है। लेकिन जब मुझे मेरे भीतर ही नहीं दिखाई पड़ता तो सबके भीतर कैसे दिखाई पड़ेगा? ज्ञानी शास्त्रों से सीख लेता है कि परमात्मा है, वह परमात्मा झूठा है। भक्त कल्पना करता है कि परमात्मा है, वह परमात्मा झूठा है। लेकिन जो पाता है कि उसका अहंकार नहीं है और अहंकार के विलीन हो जाने पर जो दिखाई पड़ता है, वही है सत्य, वही है परमात्मा। न वह ज्ञान से मिलता, न वह भक्ति से। लेकिन वह मिलता है स्वयं के अहंकार के न मिलने पर। स्वयं का अहंकार जब नहीं मिलता तब वह मिलता है। जो स्वयं के अहंकार से भरे हैं वे उससे वंचित रह जाते हैं।

लेकिन मैं नहीं कहता हूं कि छोड़ना अहंकार को। वह भूल भरी शिक्षा है।
उस शिक्षा ने हजारों लोगों को भटकाया है। तो मैं तो कहता हूं, छोड़ना मत, खोजना! अहंकार से भागना मत, जागना! जागते ही वह नहीं पाया जाता है। और तब जीवन में एक क्रांति घटित हो जाती है। वही है एकमात्र क्रांति जो मनुष्य के जीवन में घटित हो सकती है। और तब मनुष्य कुछ से कुछ हो जाता है। कोई और ही हो जाता है। तब वह मनुष्य नहीं रह जाता है, तब वह विश्व सत्ता के साथ एक हो जाता है। तब न कोई दुख है, न पीड़ा। तब न कोई संताप है, न कोई घृणा। तब न कोई क्रोध है। तब है आनंद, तब है एक संगीत, तब है एक प्रेम, तब है एक प्रकाश। और उस सब में, उस सब में है मोक्ष, उस सब में है मुक्ति।
अहंकार विलीन हो जाए तो जो मिलता है वह सत्य है और सत्य मुक्त कर देता है। सारे बंधन, सारे जीवन के बंधन गिर जाते हैं वैसे ही जैसे सूखे पत्ते वृक्षों से गिर जाते हैं। और क्या पाया जाता है, उसे शब्दों में कहना कठिन है। उसे आज तक नहीं कहा गया है, उसे कभी नहीं कहा जा सकेगा। शब्द बहुत छोटे हैं और जो वहां पाया जाता है वह बहुत बड़ा है। शब्द बहुत क्षुद्र हैं और जो वहां पाया जाता है वह बहुत विराट है। शब्द मनुष्य के गढ़े हुए हैं और वहां जो पाया जाता है वह स्वयं परमात्मा है। इस शून्य की दिशा में यात्रा करनी है।
अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़ा एक-दूसरे से दूर हो जाएं। शरीर को जितना शिथिल छोड़ देंगे उतना अच्छा होगा। मन के भीतर किसी तरह का भी विरोध न रखेंगे। बाहर आवाजें हैं, ध्वनियां हैं, हवाएं वृक्षों को हिला रही हैं, पक्षी बोलेंगे, कुछ और होगा, किसी आवाज के प्रति भीतर विरोध न रखेंगे, कोई रेसिस्टेंस न रखेंगे। एक खाली शून्य की तरह बैठ जाएंगे। हवाएं आवाज लाएंगी, आपके भीतर गूंजेगी और निकल जाएगी। पक्षी बोलेंगे, उनकी आवाज आपके भीतर आएगी और पार हो जाएगी। जैसे कोई खाली कमरा हो। आवाज आती है, खाली कमरे में गूंजती है और निकल जाती है, फिर सन्नाटा हो जाता है। फिर आवाज आती है, फिर खाली कमरे में गूंजती है और निकल जाती है, फिर सन्नाटा हो जाता है। और हर आवाज के बाद सन्नाटा और गहरा होता जाता है, और गहरा होता जाता है।
एक खाली शून्य की भांति बैठ जाएंगे, जैसे हैं ही नहीं, और आवाजें गूंजेंगी और निकल जाएंगी। शांति से उन आवाजों को सुनते रहेंगे, मौन उन आवाजों के प्रति जागे रहेंगे। लेकिन कोई विरोध नहीं, कोई रुकाव नहीं। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे सुनते-सुनते एक गहरी शांति उतरनी शुरू हो जाएगी। उस शांति में ऐसा भी पता नहीं चलेगा कि हवाएं अलग हैं और मैं अलग हूं, वृक्ष अलग हैं और मैं अलग हूं, पक्षी अलग हैं और मैं अलग हूं। ऐसा भी नहीं मालूम पड़ेगा कि मैं पृथक हूं। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे लगेगा कि मैं सबसे जुड़ गया हूं और इकट्ठा हो गया हूं। वह जो जुड़ जाना है, वह जो सबके साथ इकट्ठा हो जाना है, वही है ध्यान।
वह जो शांति है, जहां कि मेरी सारी दीवालें गिर गई हैं जो जगत से मुझे तोड़ रही हैं, अलग कर रही हैं, वहीं, वहीं है मिलन।
सब भांति शरीर को ढीला और शिथिल छोड़ दें; कोई कड़ापन, कोई अकड़ाव, कोई काम नहीं कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं। कोई स्ट्रेन न हो, कोई टेंशन न हो शरीर पर, कोई तनाव न हो, उसे ढीला छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बंद कर लें, बहुत धीरे, आंख पर भी कोई जोर न पड़े, धीरे से पलक बंद कर लें।

रोम रोम रस पीजिए
नौवां प्रवचन

मन के मंदिर में ध्यान का दीया

आज अंतिम चर्चा है। बहुत से प्रश्न मेरे पास इकट्ठे रह गए हैं। बहुत
से आज व्यक्तिगत मिलन में पूछे गए हैं। उन सभी प्रश्नों के उत्तर देना संभव नहीं होगा और जरूरी भी नहीं है।
जरूरी इसलिए नहीं है कि मैंने इन तीन दिनों में जो थोड़ी सी बातें आपसे
की हैं, जिसको वे बातें समझ में पड़ी होंगी, उसे मेरा जीवन को देखने का कोण, जीवन को देखने की दृष्टि समझ में आ गई होगी। जो प्रश्न नहीं मैं उत्तर दे पाऊंगा समय के अभाव के कारण, अगर मेरी दृष्टि ख्याल में आ गई है, तो उन प्रश्नों के उत्तर खुद भी समझे जा सकते हैं। इसलिए जरूरी नहीं है। और इसलिए भी सभी प्रश्नों के उत्तर देना जरूरी नहीं है कि प्रश्न है आपका, मेरे उत्तर क्या करेंगे? मेरे उत्तर चिंतन की एक दिशा की ओर इंगित कर सकते हैं। लेकिन मेरे उत्तर आपके प्रश्नों के उत्तर नहीं बन सकते। अपना उत्तर तो आपको खोजना पड़ेगा। इसलिए जरूरी नहीं है। किस दिशा में चिंतन करें? चिंतन की प्रक्रिया क्या हो?
जो देखते रहते हैं दूसरों की तरफ, दूसरों के उत्तर के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं, वे अपने खुद के उत्तर को कभी नहीं खोज पाते। प्रश्न है आपका वह तोड़ेगा... और सत्य की खोज में चाहिए ऐसा मन, जिसके पास प्रश्न तो हो, लेकिन उत्तर न हो। प्रश्न बड़ी अदभुत बात है। लेकिन हम प्रश्न के साथ कभी जीते ही नहीं। हम तो जल्दी से उत्तर खोजने लगते हैं। प्रश्न उठता है भीतर, उत्तर बाहर खोज कर तृप्ति कर लेते हैं। लेकिन अगर कोई व्यक्ति बाहर उत्तर न खोजे और अपने प्राणों में उठे हुए प्रश्नों के साथ रहने को राजी हो जाए और उन प्रश्नों में ही खोजे, तो वह हैरान हो जाएगाः जहां से प्रश्न उठते हैं, उसी के नीचे उत्तर भी मौजूद है। जो प्राण प्रश्नों को उठाता है, वह उत्तर भी अपने में छिपाए हुए है। अन्यथा उसने प्रश्न भी कभी न उठाए होते। लेकिन हम बाहर खोजने लगते हैं, इसलिए भीतर का उत्तर कभी ऊपर नहीं आ पाता। अगर हम प्रश्न के साथ जीना सीख जाएं तो अपने उत्तर भी उपलब्ध किए जा सकते हैं। प्रश्न के साथ कैसे जीया जाए?

जैसे अनेक प्रश्न हैं--कि क्या मेरे भीतर आत्मा है? क्या मेरे भीतर परमात्मा है? मेरे भीतर कौन है? उसकी मृत्यु होगी या नहीं होगी? ऐसे बहुत से प्रश्न पूछे हैं। मैं शरीर ही हूं? या कि शरीर के अतिरिक्त भी कुछ मेरे भीतर है? जो मेरे भीतर है उसके कितने जन्म हो चुके हैं? कितने होंगे? पुनर्जन्म होगा या नहीं होगा? ये सारी बातें पूछी हैं।

क्या आप सोचते हैं, कभी इन प्रश्नों के साथ आप थोड़ी देर जीए हैं? मन में ये प्रश्न हों, पूरी प्रगाढ़ता में पूछे जाएं, और हम किसी बाहर के उत्तर को न खोजें, तो क्या होगा? कभी पूछा है--मैं कौन हूं? कभी पूछा है पूरे प्यास, पूरे प्राणों की अभीप्सा से भर कर कि मैं कौन हूं? तो पूछें! सब भांति शांत और मौन हो जाएं और पूछें कि मैं कौन हूं? और कोई भी उत्तर दिखाई पड़े, कोई भी उत्तर बाहर से आता हुआ मालूम पड़े, तो उसे विदा कर दें कि मैं अब बाहर के उत्तर को लेने को राजी नहीं हूं। अब तो मैं अपने भीतर ही उत्तर खोजूंगा। तो फिर पूछते चले जाएं कि मैं कौन हूं? मन हो जाए शांत और शून्य और पूछते चले जाएं कि मैं कौन हूं?
तो हैरान हो जाएंगे, हैरान हो जाएंगे। जैसे कोई जमीन को खोदना शुरू करे तो पहले तो कंकड़-पत्थर हाथ लगते हैं, मिट्टी हाथ लगती है। कोई एकदम से जल के स्रोत नहीं आ जाते। लेकिन खोदता ही चला जाए, खोदता ही चला जाए, तो धीरे-धीरे मिट्टी और कंकड़-पत्थर तो अलग हो जाते हैं और जल-स्रोत, जो कि निरंतर भीतर मौजूद थे, वे फूट पड़ते हैं। ऐसे ही कोई अपने भीतर पूछता ही चला जाए कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, और जितने कंकड़-पत्थर भी बीच में आएं-- दूसरों के उत्तर कंकड़-पत्थर की तरह हैं, किताबों और शास्त्रों से लिए गए

उत्तर कंकड़-पत्थर की तरह हैं--उनको हटाता चला जाए, हटाता चला जाए, तो एक क्षण आएगा कि भीतर से जल-स्रोत फूट पड़ेंगे, भीतर ही उत्तर की धारा, ज्ञान की धारा उपलब्ध हो जाएगी।
लेकिन हम सारे लोगों ने अपने जीवन की खोज को एक कुएं की भांति नहीं खोदा है। हमने तो जीवन को हौज की तरह बनाया हुआ है। हौज और कुएं में भी पानी होता है। हौज में भी पानी होता है। लेकिन दोनों के पानी में बड़ा फर्क होता है। दोनों के पानी की प्रक्रिया भी बड़ी उलटी है। कुआं खोदना पड़ता है तो मिट्टी निकाल कर, पत्थर निकाल कर बाहर फेंक देने पड़ते हैं, तब पानी आता है। पानी कुएं के भीतर से आता है। हौज बनानी पड़ती है तो उलटा काम करना पड़ता है। मिट्टी-पत्थर जोड़ कर दीवाल बनानी पड़ती है पहले, और फिर पानी बाहर से लाकर भर देना पड़ता है। एक में मिट्टी-पत्थर निकाल देने पड़ते हैं कुएं में और हौज में मिट्टी-पत्थर जोड़ कर दीवाल बनानी पड़ती है। कुएं में पानी अपने आप आता है और हौज में पानी लाकर भरना पड़ता है। हौज का पानी बासा होता है। हौज के पानी का कोई प्राण नहीं होता, उसके कोई स्रोत नहीं होते। कुएं के पानी के अनंत स्रोत होते हैं। वह पृथ्वी के गर्भ में छिपे सागरों से जुड़ा होता है। और हौज? हौज कटी होती है सारी दुनिया से अलग, सारे जल-स्रोतों से अलग, दीवालों से बंद; और जो पानी भरा होता है वह बाहर का। वह पानी फिर सड़ने लगता है, क्योंकि वह पानी जीवित नहीं होता, मृत हो जाता है। उसमें जीवन की धारा नहीं होती। फिर वह पानी सड़ता है, सड़ता है, गंदगी फैलाता है। लेकिन कुएं का पानी होता है जीवित, जीवंत, सागरों से उसके संबंध होते हैं।
जो लोग बाहर से ज्ञान को अपने मस्तिष्क में भर लेते हैं वे हौज की भांति हो जाते हैं। पंडित का मस्तिष्क हौज की भांति होता है। इसलिए पंडित का मस्तिष्क धीरे-धीरे सड़ जाता है, सड़ान देने लगता है। और यही तो कारण है कि दुनिया में जो पंडित हैं वे मनुष्य-जाति को लड़ाने में, मनुष्य-जाति को कटवाने में, भेद करवाने में, दीवाल खड़ी करवाने में सहयोगी हो गए। उनके मस्तिष्क में ताजगी नहीं है वह जो सागरों से जुड़े होने पर होती है। उनके जीवन की धारा भीतर से संयुक्त नहीं, बाहर की किताबों से संगृहीत है। लेकिन वे लोग जो अपने भीतर कुआं खोदते हैं, और सारे कचरे को, मिट्टी- पत्थर को, जो सदियों ने हमारे ऊपर इकट्ठा कर दिया है, उसे अलग कर देते हैं, तो वे एक ऐसी आत्म-धारा को, ऐसी ज्ञान-धारा को पहुंच जाते हैं जो अनंत है और जो दूर-दूर तक ज्ञान के सागर से जुड़ी है जिसका नाम परमात्मा है।
तो दो तरह का ज्ञान है। एक जो बाहर से भर लिया जाता है हौज की भांति, और
एक जो भीतर खोजा जाता है कुएं की भांति। तो मेरे उत्तर क्या करिएगा? किसी के भी उत्तर किस काम के हैं? वे तो जाकर और इकट्ठे हो जाएंगे भीतर तो खुद के स्रोत को अवरुद्ध कर देंगे।
तो अंत में इस शिविर से जाते वक्त एक तो पहली, पहली प्रार्थना यही है
कि मैंने जो भी कहा हो उसे कृपा करके यहीं छोड़ जाइएगा, उसे साथ मत ले जाइएगा। उसे बिल्कुल छोड़ जाइए, उसे साथ ले जाने की जरा भी जरूरत नहीं है। वह आपके मन पर बोझ बन जाए, ऐसा मैं न चाहूंगा। वह आपके मन में भार की तरह बैठ जाए, मेरे उत्तर आपके उत्तर बन जाएं, यह मैं न चाहूंगा।
पूछा जा सकता है कि फिर मैंने क्यों उत्तर दिए? फिर मैंने क्यों ये बातें कहीं?
ये बातें इसलिए नहीं कही हैं कि ये आपके मन पर बोझ बन जाएं, बल्कि इसलिए कही हैं कि आपके मन को हलका और निर्भार कर सकें। आपके भीतर जो बोझ है उसे छीन सकूं, इसलिए कहा है। इसलिए नहीं कि इस बोझ में और थोड़ा सहयोग हो जाए मेरा। और थोड़ा वह बोझ ज्यादा हो जाए।
तो इसलिए बहुत जरूरी भी नहीं है कि मैं आपके सब प्रश्नों के उत्तर दूं। क्योंकि जो उत्तर मैंने दिए हैं वे भी मैं प्रार्थना करता हूं कि उनको भी यहीं छोड़ जाना। उनको साथ ले जाने की जरूरत नहीं है।
लेकिन अगर उनको छोड़ने का साहस किया, और और भी जो मन में बैठी हुई बहुत-बहुत धूल है बहुत सदियों की, हजारों वर्षों की, अगर उसको भी छोड़ने का साहस किया, तो मन एक निर्मल दर्पण की भांति हो जाएगा। मन एक निर्दोष दर्पण की भांति हो जाएगा। और उस दर्पण में देखा जाता है सत्य। उस दर्पण में होती है

स्वयं की प्रतीति। उस दर्पण में झलक आता है सब कुछ, जो जीवन का सार है, सारभूत है। यह तो सबसे पहली बात कही।

फिर दोपहर एक मित्र ने कहा कि आप तो कहते हैं कि हम कुछ भी न करें। फिर
हम क्या करें? ज्ञान इकट्ठा न करें, भक्ति-पूजा न करें, मंत्र-माला न फेरें। फिर हम क्या करें?

निश्चित ही, जब ये सब बातें हम करते रहे हैं तो हमें एकदम से वैक्यूम मालूम होता है, खालीपन मालूम होता है, अगर हम ये सब बातें छोड़ दें। यद्यपि इन बातों का कोई भी मूल्य नहीं है, लेकिन हम इनको करने के इतने आदी हो गए हैं कि हमें ऐसा लगता है कि अगर ये छूट गईं तो हम तो बिल्कुल खाली हो जाएंगे, कुछ करने को न बचेगा।
लेकिन मैं आपसे कहूंगा, इसके पहले कि आपसे कुछ सार्थक हो सके, आपका खाली हो जाना बहुत जरूरी है। क्योंकि जो आदमी व्यर्थ की चीजों से भरा है, वह जो भी करेगा उससे दुनिया में उपद्रव बढ़ता है, कम नहीं होता। जिसका खुद का मस्तिष्क अशांत, पीड़ित और परेशान है, और फिर भी कुछ किए जा रहा है, तो उसके करने का कोई मंगलदायी परिणाम नहीं हो सकता। वह जो भी करेगा उससे दुष्परिणाम आएंगे। इसलिए इसके पहले कि कुछ सम्यक रूप से आपके भीतर से हो सके, आपका खाली हो जाना बहुत-बहुत अपरिहार्य है, बहुत जरूरी है। अत्यंत आवश्यक है कि खाली हो जाएं।

जैसे कोई किसी बगीचे में, नया बगीचा बनाता हो किसी भूमि पर, तो सबसे पहले घास-पात को उखाड़ कर फेंक देता है, कांस को उखाड़ कर फेंक देता है, पुराने वृक्षों की गड़ी हुई जड़ों को निकाल कर फेंक देता है। जमीन को कर लेता है साफ, जमीन को कर लेता है खाली। क्यों? ताकि नये बीज बोए जा सकें, ताकि नई फसल काटी जा सके, ताकि नये फूलों तक जमीन को पहुंचाया जा सके।
तो इसके पहले कि नये बीज बोए जाएं, पुराने घास-पात से मन का भी मुक्त
हो जाना बहुत जरूरी है, खाली हो जाना बहुत जरूरी है। क्योंकि उसी खालीपन में नये बीज अंकुरित हो सकेंगे और फूलों तक पहुंच सकेंगे।
एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ, वेजनर। एक युवक एक दूसरे संगीतज्ञ के पास कोई पांच वर्षों तक संगीत सीख कर वेजनर के पास गया। उस युवक ने अपने गुरु के पास, करीब-करीब जो भी गुरु जानता था, सब सीख लिया था। और उस गुरु के शिष्यों में सबसे श्रेष्ठ था वह युवक, सबसे कुशल था, सबसे प्रतिभाशाली था। फिर उसने सोचा कि इसके पहले कि मैं जीवन की यात्रा पर निकलूं। वेजनर का नाम भी बहुत प्रसिद्ध हुआ जा रहा था। तो वह वेजनर के पास गया कि शायद दो- चार महीने वेजनर के पास रह कर मैं उसका संगीत भी सीख लूं। सोचा था दो-चार महीने में ही यह बात हो जाएगी। और मुझ जैसा सीखा हुआ व्यक्ति पाकर वेजनर होगा खुश। उसने वेजनर से जाकर पूछा कि कितने दिनों में मैं सीख सकूंगा? वेजनर ने क्या कहा? कितनी मेरी फीस लगेगी?
वेजनर ने क्या कहा?
वेजनर ने कहा कि कम से कम दस वर्ष लगेंगे तुम्हें सीखने में। और फीस पूछते हो, तो जितनी सामान्य विद्यार्थियों से मैं लेता हूं उससे दुगनी तुमसे लूंगा।
वह बहुत युवक हैरान हुआ, उसने कहा, दस वर्ष? पांच वर्ष तो मैं सीख कर आ रहा हूं!
तो वेजनर ने कहा, पांच वर्ष तो उसी को भुलाने में लग जाएंगे जो तुम सीख
कर आए हो। क्योंकि तुम जिसे संगीत समझते हो वह संगीत ही नहीं है। क्योंकि तुम जिसे संगीत समझते हो वह केवल ध्वनियों का जमाव है। वह केवल बहुत सी ध्वनियों के बीच एक हार्मनी का खोज लेना है। तुम जिसे संगीत समझते हो वह ध्वनियों के ऊपर नहीं जाता। और मैं जिसे संगीत समझता हूं वह संगीत बहुत और है, वहां ध्वनियां तो समाप्त हो जाती हैं और शून्य का प्रारंभ होता है। तो तुम्हारा संगीत जहां समाप्त होता है वहां हमारा प्रारंभ होता है, वेजनर ने कहा। तो तुम, नहीं, पहले तुम्हें पांच वर्ष तो भूलने में लग जाएंगे। और

भुलाने में इतनी मेहनत करनी पड़ती है जितनी सिखाने में नहीं करनी पड़ती। इसलिए दुगनी फीस लूंगा तुमसे।
और यही स्थिति जीवन के संगीत के संबंध में भी है। इधर तीन दिन मैंने कौन सी मेहनत की है आपके साथ? कुछ सिखाने की नहीं, कुछ भुलाने की। कुछ हम सीखे हुए बैठे हैं। अगर वह सीखा हुआ ही ठीक होता तो हमारा जीवन कुछ और हो गया होता। लेकिन हजारों वर्षों से हम उसे सीखे बैठे हैं, और जीवन मनुष्य का नीचे से नीचे गिरता जा रहा है, और उसके प्राणों की सरिता सूखती जा रही है, और उसकी सारी सुगंध दुर्गंध में परिणत होती जा रही है। फिर भी हम उस सीखे हुए को पकड़े बैठे हैं।
जरूरत है कि कोई उस सबको तोड़ दे और मिटा दे और मनुष्य के मन की भूमि साफ कर दे, ताकि फिर से नये बीज उसमें बोए जा सकें और नये फूलों की प्रतीक्षा की जा सके। लेकिन अभी तो बड़ा है काम वही कि सफाई हो जाए। बड़ा है काम यही कि जो इकट्ठा है मन पर, उसे जला दिया जाए। एक अग्नि से गुजरे बिना नये मनुष्य का जन्म नहीं हो सकेगा। उस नये मनुष्य के जन्म की दिशा में बड़ा विध्वंस करना जरूरी है, ताकि नया सृजन हो सके। जो कोई भी बनाने को निकलता है उसे मिटाना पड़ता है। मिटाने में कोई खुशी नहीं होती, न मिटाने में कोई रस है। मिटाना एक मजबूरी है। मिटाना बहुत जरूरी है। नहीं तो फिर नये को जन्म नहीं मिल पाता और नये का विकास नहीं हो पाता।
तो यह जो सब मन पर इकट्ठा है, इस सब को हटा देना बहुत जरूरी है। लेकिन मैं कहता हूं इसलिए हटा देना जरूरी नहीं है। मैंने तो अपनी बात कह दी है, उसे आप विचार करेंगे। मेरी बात मान कर हटाने में मत लग जाना। क्योंकि जो मेरी बात मान कर हटाने में लगेगा, वह हो सकता है कि उसको हटा दे, लेकिन मैंने जो कहा है उसकी जगह जरूर उसे रख लेगा। इसलिए उसका मन, हो सकता है बोझ बदल जाए, लेकिन बोझ से मुक्त नहीं होगा।
मेरी बात मान कर नहीं हटाना। मैं कौन हूं? मेरी बात का क्या मूल्य है? कोई भी नहीं। मेरी बात को विचार करना। खुद की दृष्टि में यह दिखाई पड़ जाए कि हां, चित्त का निर्भार होना जरूरी है। बोझिल हो गया है चित्त, शब्दों से भर गया है, सिद्धांतों से भर गया है। और ऐसे सिद्धांतों से जिनसे जीवन का अब कोई संबंध, कोई नाता नहीं रहा; और जीवन उनसे गतिमान नहीं होता, बल्कि रुकता है, अटकता है। सब सीखे हुए उत्तर, जीवन में समस्याओं को नष्ट नहीं करते, खड़ा करते हैं। जीवन में खुद ही बहुत समस्याएं हैं और ये सीखे हुए उत्तर और नई समस्याएं खड़ी कर देते हैं। क्योंकि कोई भी सीखा हुआ उत्तर जीवन की किसी समस्या के साथ तालमेल नहीं उपलब्ध कर पाता। उत्तर है बहुत पुराना, जीवन रोज बदल जाता है, रोज बदल जाता है। जीवन रोज नया हो जाता है, समस्याएं नई हो जाती हैं। उत्तर--उत्तर हैं पुराने। बल्कि हम ऐसे पागल लोग हैं कि जितना पुराना उत्तर होता है, समझते हैं कि वह उतना ही ठीक है। पुराना होना ठीक होने का भी सबूत है अनेक लोगों के मनों में। इसलिए सभी धर्म के लोग अपने-अपने ग्रंथ को पुराना सिद्ध करने की न मालूम किस-किस प्रकार की चेष्टाएं किया करते हैं। जैसे पुराना होना सत्य होने के लिए कोई जरूरी बात है।
जब कि सचाई यह है कि जीवन तो है रोज नया। तो ऐसा मस्तिष्क चाहिए जो रोज नया हो। तो ही जीवन की समस्याओं का हल हो सकेगा। मस्तिष्क हो पुराना और जीवन नया, तो उलझन तो खड़ी हो ही जाएगी।
जापान के एक गांव में, क्योटो में, दो मंदिर थे। एक दक्षिण का मंदिर था, एक उत्तर का। दोनों एक-दूसरे के विरोधी थे, जैसे कि सभी मंदिर एक-दूसरे के विरोधी होते हैं। एक उत्तर का मंदिर कहलाता, एक दक्षिण का मंदिर कहलाता। उन मंदिर के पुरोहितों में वर्षों से कोई बातचीत भी न थी, जैसी कि किन्हीं भी मंदिरों के पुरोहितों में कभी नहीं रही है। वे कभी आपस में मिलते भी न थे, बोलते भी न थे। ईर्ष्या बहुत थी। एक अपने मंदिर को ऊंचा करता था, तो दूसरा और नये कलश चढ़ा कर और ऊंचा कर देता था। वह पूरा गांव परेशान हो गया था उस मंदिर के झगड़ों में, क्योंकि मंदिर तो बड़े होते थे और गांव के लोगों के मकान छोटे होते चले जाते थे। क्योंकि कौन उन मंदिरों को बड़ा करेगा? जब मंदिर बड़े होंगे तो मकान छोटे होते चले जाएंगे। गांव के लोग तो गरीब होते जाते थे और मंदिर के पुजारी धनी होते चले जाते थे। गांव के

गरीबों पर तो रोटी नहीं थी खाने को, मंदिर के पुजारियों ने मंदिर में जो भगवान बनाए थे वे सोने के बना लिए थे। और दोनों की प्रतियोगिता थी, आधा गांव एक तरफ, आधा गांव दूसरी तरफ। गांव मरा जाता था, मंदिर बड़े होते चले जाते थे। झगड़ा बड़ा पुराना था। उस झगड़े में रस भी था, आनंद भी था और रहस्य भी था। अगर दोनों मंदिर न लड़ते तो गांव का शोषण असंभव होता। इसलिए दोनों मंदिरों के लड़ने के कारण गांव का शोषण भी आसान था।
इस सारी दुनिया में इतने मंदिर और मस्जिद खड़े हैं, अगर ये आपस में न लड़ें तो ये आदमी का शोषण ही न कर सकेंगे। इनकी लड़ाई के रस में, इनके लड़ाई के दौर में, इनके लड़ाई के पागलपन में ही तो सारा शोषण हो पाता है। जब दूसरा मंदिर बड़ा बना लेता है तो इधर का पुजारी कहता हैः हमारा मंदिर भी बड़ा होना चाहिए। हम हीन हुए जा रहे हैं, छोटे हुए जा रहे हैं। देखो, यह मुसलमान की मस्जिद बड़ी हो गई, यह हिंदू का मंदिर छोटा हो गया, यह जैन का मंदिर बड़ा हो गया। इससे पागलपन पैदा होता है, लोगों के अहंकारों को नशा चढ़ता है। वे अपने मंदिर को बड़ा करने में लग जाते हैं। मंदिर लड़ते हैं ताकि पुरोहित जी सकें। अगर मंदिर न लड़ें तो पुरोहित जी नहीं सकता। इसलिए दुनिया में जब तक मंदिर हैं तब तक लड़ाई रहेगी, लड़ाई खत्म नहीं हो सकती। क्योंकि लड़ाई अगर खत्म हो गई तो मंदिर अपने आप गिर जाएंगे। उनके प्राण भी नहीं टिकने वाले हैं फिर।
वह गांव के मंदिर भी दोनों लड़ते थे। लड़ाई पुरानी थी, इतना ज्यादा उनका विरोध था। दोनों मंदिरों के दो बड़े पुजारियों के पास एक-एक छोटा लड़का था काम-काज के लिए। वह उन लड़कों को भी कह रखा था कि कभी एक-दूसरे के मंदिर में झांक कर मत देखना। कभी एक-दूसरे के मंदिर के लड़के से मिलना भी मत।
लेकिन लड़के तो लड़के हैं। और बूढ़े उनको कितना ही बिगाड़ें, आखिर बिगाड़ने में भी वक्त लग जाता है, एकदम से बिगाड़ना भी आसान नहीं होता। बच्चे तो बच्चे हैं, वे कभी-कभी मिल भी लेते थे रास्तों पर। एक दिन वे दोनों रास्ते पर मिले। उत्तर के मंदिर के लड़के ने दक्षिण के मंदिर के लड़के से पूछा, मित्र, कहां जा रहे हो?
वह दक्षिण के मंदिर का जो लड़का था, निरंतर तत्वज्ञान की बातें सुनते- सुनते वह भी तत्वज्ञान की बातें करने लगा था। आखिर बच्चे बूढ़ों ही से तो तत्वज्ञान सीख लेते हैं। निरंतर मंदिर में ऊंची-ऊंची बातें चलती थीं। वह भी नीची बातें करना उसने बंद कर दिया था।
उत्तर के लड़के ने पूछा, मित्र, कहां जा रहे हो? उसने कहा, जहां हवाएं
ले जाएं! आदमी का क्या बस है?
उसने बड़ी ऊंची बात कह दी। उसने तो भाग्य की बात कह दी कि जहां हवाएं ले जाएं! आदमी का क्या बस है?
उत्तर का लड़का ठगा रह गया। कुछ उत्तर उसे सूझा नहीं। वह वापस आया और उसने अपने मंदिर के पुजारी को कहा। उसके पुजारी ने कहा कि यह तो बड़ी बुरी बात हुई। हमारे मंदिर का कोई व्यक्ति आज तक उस मंदिर से हारा नहीं है। तुम हार कर आ गए हो! कल वापस वहीं खड़े होना और पूछना कि कहां जा रहे हो? और जब वह लड़का कहे कि जहां हवाएं ले जाएं, तो तुम कहना कि अगर हवाएं बंद हों तो फिर कहां जाओगे? तब वह भी रह जाएगा, उसकी भी सूझ में नहीं आएगा कि क्या उत्तर दे। बिना हराए वापस मत लौटना, यह बेइज्जती की बात है। हमारा मंदिर, हमारे मंदिर का नौकर कभी हार जाए किसी दूसरे के मंदिर से!
वह लड़का कल गया। उसी जगह खड़ा हो गया प्रतीक्षा में, उत्तर तैयार रखा उसने। दूसरे मंदिर का लड़का निकला। उसने पूछा, मित्र, कहां जाते हो? सोचा कि वह कहेगा जहां हवाएं ले जाएं, तो मैं भी अपना बंधा हुआ उत्तर दूंगा। लेकिन वह लड़का तो बदल गया। उसने कहा, जहां पैर ले जाएं।
अब बड़ी मुश्किल हो गई, बंधा हुआ उत्तर बेकार हो गया, वह फिर हार कर वापस आ गया। उसने अपने गुरु को कहा कि वह लड़का तो बड़ा बेईमान है। कल कुछ कहता था, आज कुछ कहने लगा। वह लड़का तो बड़ा बदल जाने वाला मालूम होता है। उसको तो अपने वचन पर ठहरने की भी, मालूम होता है, कोई आदत नहीं है।
पुजारी खुश हुआ। उसने कहा कि उस मंदिर के लोगों को कभी से यह आदत नहीं है। वे हमेशा से बेईमान रहे हैं। बदल गया होगा। लेकिन अब तुम कल फिर जाना, क्योंकि तुम फिर हार कर लौट आए हो। जब तक उसको निरुत्तर न करो तब तक समझना

कि तुम हार गए। तो कल फिर तुम पूछना, वह कहेगा जहां पैर ले जाएं, तो तुम कहना, ऐसा भी हो सकता है कि पैर पंगु हो जाएं, फिर कहां जाओगे?
लड़का फिर गया दूसरे दिन प्रसन्न, फिर खड़ा हो गया कि आज देखें। वह लड़का निकला और उसने पूछा, कहां जाते हो? उस लड़के ने कहा, साग-सब्जी लेने बाजार जाता हूं।
असल में सीखे हुए उत्तर जिंदगी में काम नहीं आ सकते। क्योंकि जिंदगी रोज बदल जाती है। जिंदगी बड़ी बेईमान है। शास्त्र बड़े ईमानदार हैं, वे कभी नहीं बदलते। जिंदगी बड़ी बेईमान है, वह रोज बदल जाती है। लेकिन शास्त्र मुर्दा हैं इसलिए नहीं बदलते हैं। जिंदगी जिंदा है, जीवंत है, इसलिए बदलेगी ही। यह कोई बेईमानी नहीं है। यह जिंदा होने का लक्षण है--बदलाहट। तो जिंदगी तो रोज बदल जाती है और उत्तर होते हैं कल के, परसों के, हजार वर्ष पुराने, वे कभी नहीं बदलते। हम उन्हीं उत्तरों को लिए खड़े रहते हैं। और तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। जिंदगी कुछ ऐसे प्रश्न खड़े कर देती है कि उत्तर बेकार हो जाते हैं। और हम अपने पुराने उत्तर ही दोहराए चले जाते हैं। तब हम जिंदगी से पिछड़ जाते हैं। हम सारे लोग जिंदगी से पिछड़ गए हैं। असल में, जिसके पास भी सीखा हुआ उत्तर है वह हमेशा पिछड़ जाएगा। जिंदगी बड़ी रहस्यपूर्ण है, वह एक दिन भी वापस नहीं आती वही जैसी कल आई थी। कल जो सूरज उगा था, आज वही नहीं उगा; कल जो सूरज उगेगा वह इसके पहले कभी नहीं उगा था। आज सुबह जिन पक्षियों ने गीत गाए थे इस बगिया में, कल वे ही पक्षी यहां गीत गाने को नहीं होंगे। और अगर वे ही पक्षी भी होंगे तो गीत बदल जाएंगे, हवाएं बदल जाएंगी, सुनने वाले बदल जाएंगे, दरख्त बदल जाएंगे। प्रतिक्षण सब कुछ बदला जा रहा है।
इस बदलाहट के बड़े चक्कर में हमारे उत्तर बंधे-बंधाए हैं। इन उत्तरों
की जड़ता के कारण हम खुद जड़ हो गए हैं और जीवन से हमारा सारा संबंध टूट गया है। ऐसा चित्त चाहिए जो जीवन की भांति ही गतिशील, गत्यात्मक, डायनेमिक हो; डेड न हो, मरा हुआ न हो, जीवंत हो। ऐसा चित्त चाहिए जो दर्पण की भांति, जीवन जो भी समस्या खड़ी करे, उसे देखने में ताजा हो, यंग हो, जवान हो।
ऐसा चित्त नहीं है हमारे पास। इसलिए जीवन में इतना दुख, इतनी पीड़ा, इतनी उलझन है। कोई मसला हल नहीं हो सका पांच हजार साल में, आपको पता है? आदमी पांच हजार साल के इतिहास में एक भी समस्या हल नहीं कर सका है। एक भी समस्या हल नहीं कर सका है! और जो उसने हल करने के लिए किया है उससे दस नई समस्याएं खड़ी हो गईं।
पांच हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध हुए हैं। क्या पागलपन है? पांच हजार साल में पंद्रह हजार युद्ध किस बात के लक्षण हैं? जब भी समस्या उलझ जाती है तो लड़ने के सिवाय हमारे पास कोई चारा नहीं रह जाता। और लड़ना कोई हल है? कोई समाधान है? और एक युद्ध से दूसरा युद्ध निकलता है जो पहले से भी ज्यादा खतरनाक सिद्ध होता है। दूसरे से तीसरा निकलता है जो और भी खतरनाक सिद्ध होता है। पांच हजार साल में युद्ध ही युद्ध किए हैं, समस्या तो एक नहीं सुलझी।
और किस चीज में हमारी समस्या सुलझ गई है? कितने शास्त्र लिखे गए हैं!
अब तो जमीन पर प्रति सप्ताह पांच हजार किताबें छपती हैं। पांच हजार नई किताबें प्रति सप्ताह! थोड़े ही दिनों में एक हजार किताबें प्रतिदिन छपने लगेंगी। लेकिन क्या हल हो गया है आदमी के जीवन में? कितने समाधान हैं, लेकिन हल कहां है? कितनी बातें प्रस्तावित की गई हैं, लेकिन आदमी तो वहीं के वहीं हैं। जहां दस हजार साल पहले थे, हम वहीं खड़े हैं। कपड़े बदल गए हैं माना, रास्ते बदल गए, मकान बदल गए, लेकिन आदमी? आदमी क्यों नहीं बदला? यह आदमी को क्या हो गया है? यह क्यों नहीं बदलता? सारी जिंदगी बदलती चली जाती है। आकाश, तारे बदलते चले जाते हैं, जमीन बदलती चली जाती है। यह आदमी क्यों जड़ है?
आदमी की जड़ता का कारण है--सीखे हुए उत्तर, सीखा हुआ ज्ञान। वह चित्त की ताजगी छीन लेता है, चित्त को बासा कर देता है। और बासा चित्त, बारोड माइंड, उधार चित्त फिर कुछ भी हल करने में समर्थ नहीं रह जाता।
ऐसा चित्त चाहिए जो जीवन के साथ अतीत को बीच में न ले, बीच में उधार बातों को न ले। जीवन को सीधा देखे, जीवन को सीधा समझे। और उस समझ से, उस

जिंदगी के सीधे दर्शन से जो भीतर से उत्तर आते हों उन पर चलने का सामर्थ्य रखे। ऐसा मनुष्य चाहिए, ऐसा मन चाहिए।
तो मेरे उत्तरों से क्या होगा? मेरे उत्तर तो आप तक पहुंचते-पहुंचते बासे हो जाएंगे। मैं कहूंगा, कहते-कहते, आप सुनेंगे, सुनने-सुनते पुराने पड़ जाएंगे। जिंदगी तब तक बदल गई होगी। तो मेरे उत्तर किस काम के पड़ेंगे? उत्तर का सवाल नहीं है, किसी और के उत्तर का सवाल नहीं है। सवाल तो ऐसे मन के निर्माण का है, ऐसे मन के सृजन का है।
तो इधर तीन दिनों में जो कोशिश है वह यह नहीं है कि आपका मैं ज्ञान थोड़ा सा बढ़ा दूं। नहीं, ज्ञान को बढ़ाने वाले हजारों साल से ज्ञान बढ़ा रहे हैं। मैं तो आपके ज्ञान को छीन लेना चाहता हूं। तो शायद अगर आप ज्ञान छोड़ कर खड़े हो जाएं तो ताजे हो जाएं, युवा हो जाएं; चित्त निर्भार हो जाए, देख सके, जान सके, पहचान सके; आंख खुल जाएं और जिंदगी जो समस्याएं लाए उनके उत्तर हमारे भीतर से उठ सकें। खुला मन हो, तो तीर की भांति चीजें दिखाई पड़नी शुरू हो जाती हैं।
लेकिन हमें तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। रोज आदमी मरते चले जाते हैं और हमें यह नहीं दिखाई पड़ता कि हमको मरना पड़ेगा। हद्द अंधापन है! या हद्द बेहोशी है! अजीब बात है! रोज लोग धन को इकट्ठा करते हैं और धन को इकट्ठा करने में करीब-करीब जीवन गंवा देते हैं; न उनके जीवन में हमें शांति दिखलाई पड़ती है न आनंद। लेकिन हम भी जब दौड़ते हैं तो हम भी धन कमाने में लग जाते हैं। अजीब बात है! रोज हम लोगों को पदों पर चढ़ते देखते हैं--छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी, बड़ी कुर्सी। उनके जीवन में न कोई शांति दिखाई पड़ती है, न कोई आनंद, न कोई संगीत। लेकिन हमारा चित्त भी उसी दौड़ में लग जाता है। क्या मामला है? क्या हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता? क्या हमारे चित्त में कोई भी जीवन का ठीक-ठीक दर्शन नहीं बनता?
बहुत सैकड़ों वर्ष पहले की बात है, एक युवक अपने गुरु के गुरुकुल से शिक्षा पाकर वापस लौटा। बहुत दुखी था। एक रात देश की राजधानी में जाकर अपने मित्र के घर में ठहरा तो बहुत दुखी था, रात करवटें बदलता था। उस मित्र ने पूछा, क्या चिंता है?
उसने कहा, चिंतित हूं इसलिए कि गुरु के घर पर पांच वर्षों तक रहा। मेरा भोजन भी उन्हीं ने दिया, मेरे वस्त्र भी, शिक्षा भी, सब कुछ उन्होंने दिया। मैं बहुत दरिद्र हूं, अनाथ हूं, आते वक्त सभी विद्यार्थियों ने विदा लेते समय गुरु को कुछ भेंट दी है, मैं कुछ भी भेंट नहीं दे पाया। काश, मेरे पास पांच स्वर्ण-मुद्राएं भी होतीं तो मैं भेंट दे देता।
उसके साथी ने कहा, घबड़ाओ मत! कल सुबह उठ कर जल्दी चले जाना। इस देश का
जो राजा है उसका नियम है, जो भी सुबह-सुबह जाकर उससे कोई मांग ले तो वह दे देता है।
वह युवक सो गया। जल्दी से उठा, कोई चार ही बजे होंगे, राजा के महल पर जाकर पहुंच गया। राजा पांच बजे के करीब अपनी बगिया में घूमने निकला तो उस युवक ने जाकर उसे पकड़ लिया और कहा कि मैंने सुना है कि जो भी पहला याचक होता है, जो भी मांगता है, आप उसे दे देते हैं।
उस राजा ने कहा, निश्चित ही। लेकिन आज तक कोई आया ही नहीं। यह मेरा निर्णय रहा है कि जो भी आएगा, दूंगा। लेकिन लोग इतने सुखी हैं कि कोई कभी आया नहीं। तुम पहले याचक हो, आज के ही नहीं, मेरे जीवन के। तो तुम जो भी मांगोगे, मैं दूंगा।
युवक ने सुना, जो भी मांगोगे, मैं दूंगा। तो उसने सोचा अपने मन में कि मैं पागल हूं कि पांच स्वर्ण-मुद्राएं मांगूं। पांच सौ क्यों न मांगूं? पांच हजार क्यों न मांगूं? या पांच लाख क्यों न मांग लूं? चक्कर बड़ा हो गया। गणित फैल गया। पांच का ख्याल मिट गया और गुरु को देने की बात भी विलीन हो गई, सवाल ही न रहा वह। अब तो सवाल यह था कि कितना मैं मांगूं?
राजा ने कहा कि तुम कुछ चिंतित हो, निर्णय तुमने शायद किया नहीं कि क्या मांगना है। तो तुम निर्णय कर लो, मैं घूम आऊं बगिया। जो तुम मांगोगे, मैं दूंगा। इसलिए फिक्र मत करो, मांगो।
गणित और बड़ा होने लगा। पांच करोड़ मांगूं कि पांच अरब कि पांच खरब? क्या करूं, क्या न करूं? जितना गणित उसे आता था, संख्या वहां तक पहुंच गई।

और तब उसका हृदय धड़कने लगा कि मैंने गणित और क्यों न सीखा! आज पता चला कि गणित का क्या उपयोग है। तब तो मैं सोचता थाः क्या फिजूल का गणित सीखना, क्या फायदा है? संख्या अटक गई, उसके आगे संख्या मालूम नहीं थी। आज पता चला कि गणित का क्या उपयोग है। आज पछताने लगा कि पता नहीं, मैं तो इतना मांग लूंगा, पीछे न मालूम राजा के पास कितना शेष रह जाएगा। भूल गया गुरु को, भूल गया पांच मुद्राओं को।
कोई भी भूल जाता। हम भी भूल जाते उसकी जगह होते तो, कोई भी भूल जाता। सहज मानवीय है यह। बात ही ओझल हो गई, सवाल ही दूसरा खड़ा हो गया। जब तक राजा लौट आया तब उसने धड़कते हृदय से सोचा कि गलती हो जाएगी अगर मैं संख्या में मांगूंगा। तो क्यों न मैं राजा से कहूं कि जो कुछ तुम्हारे पास है सभी दे दो और तुम द्वार से बाहर निकल जाओ। जैसा मैं भीतर आया, तुम बाहर हो जाओ। ये कपड़े काफी हैं जो तुम पहने हो, और ज्यादा मैं न दे सकूंगा। जो है सब छोड़ दो। इसमें भूल की गुंजाइश नहीं रहेगी, संख्या का कोई सवाल न रहेगा। जितना है, मिल जाएगा, पछतावे का कोई कारण नहीं रहेगा।
राजा आया, और उसने राजा से कहा कि आप द्वार के बाहर हो जाएं। ये कपड़े
जो आप पहने हैं, पर्याप्त हैं। और जो कुछ आपके पास है, सब छोड़ दें। सभी मैं मांगता हूं, पूरा ही मैं मांगता हूं।
सोचा था राजा घबड़ा जाएगा। लेकिन बात उलटी हो गई, घबड़ाना पड़ा उस युवक
को ही। राजा ने आकाश की तरफ हाथ जोड़े और कहा, हे परमात्मा, वह आदमी आ गया जिसकी मैं प्रतीक्षा करता था। कितने दिन तूने राह दिखाई, लेकिन आखिर वह आदमी आ गया। उस युवक को लगा लिया गले और कहा, तू भीतर जा और मैं बाहर जाता हूं। और ये कपड़े जो पहने हूं, ये भी छोड़े देता हूं। इनको पहने भी बहुत दिन हो गए, इनसे भी बहुत ऊब गया। अब तो बिना कपड़े ही रहने का मन है।
युवक घबड़ा गया। उसने कहा कि ठहर जाएं! थोड़ा ठहरें, मुझे थोड़ा और सोच लेने दें। मामला क्या है? आप इतने उत्सुक भागने को क्यों हैं? इन चीजों को छोड़ जाने की इतनी आतुरता क्यों है?
उस राजा ने कहा, यह मत पूछ, यह मत सोच। जिंदगी पड़ी है, सोचना धीरे-धीरे। आखिर हमने भी तो जिंदगी भर में यही सोच कर पाया। तो इतनी जल्दी तुझे हम कैसे बताएं और तू कैसे समझेगा? तू भीतर जा, हम बाहर जाते हैं। जिंदगी पड़ी है, अभी तू जवान है, सोचना! हमारी उम्र तक आते-आते शायद तू भी सोच लेगा। लेकिन उस युवक ने कहा कि नहीं, इतना अंधा मैं नहीं हूं। आप रुक जाएं और
एक चक्कर और लगा आएं, तब तक मुझे सोचने का मौका दें। इतनी कृपा करें!
राजा ने कहा कि देख, जो बहुत सोच-विचार करते हैं वे दिक्कत में पड़ जाते हैं। तू भीतर जा, सम्हाल सब, सोच-विचार को जीवन पड़ा है, जल्दी क्या है? लेकिन वह युवक... जितना राजा ने कहा कि जल्दी क्या है, उतनी ही जल्दी तीव्र होती गई... वह युवक बोला, माफ करें, मैं अपने शब्द वापस लेता हूं। आप एक चक्कर लगा आएं, मुझे सोचने दें।
राजा चक्कर लगाने गया, लौट कर युवक को वहां नहीं पाया। वह पांच स्वर्ण-मुद्राएं भी छोड़ गया। वह भाग गया था। घर पहुंचा तो उसके मित्र ने पूछा, मांग ली पांच मुद्राएं?
उसने कहा कि नहीं। गणित बहुत आगे पहुंच गया था, पांच का कहां सवाल था,
सब मांग लिया था। लेकिन उस राजा ने मुझे दिक्कत में डाल दिया। उसने मेरी आंखें खोल दीं। अब पांच के मांगने का भी कोई सवाल नहीं है। अब तो मैं समझता हूं जो गणित सीखा, बेकार सीखा, मांगने का सवाल ही नहीं रह गया। क्योंकि दिखाई पड़ा कि जो छोड़ कर जा रहा है इतनी खुशी से, उसे सिर्फ अंधा ही स्वीकार कर सकता है।
लेकिन जीवन में हमें तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हम तो करीब-करीब वही दोहराते हैं जो हर आदमी ने जिंदगी में दोहराया है और एक अंधे की भांति एक चक्कर लगाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। क्या कारण है इसके दिखाई न पड़ने का? इसके दिखाई न पड़ने का यही कारण है कि हम कभी अपने मन से जीवन को कुछ देखते ही नहीं हैं। हम सब कुछ, जो हमारी पुरानी पीढ़ी हमें सिखा देती है, उसी के माध्यम से देखते हैं। पुरानी पीढ़ी अपनी सब बीमारियां भी हमें सिखा देती है, अपने सब रोग भी सिखा देती है। अपनी सब भूलें भी सिखा देती है। अपने सब बंधे-बंधाए उत्तर भी सिखा देती है। जो उसने भी पुरानी पीढ़ी से

सीखे थे। और ऐसे एक उधार मस्तिष्क पीढ़ी से पीढ़ी के पास चला जाता है। हम कभी अपनी ताजगी से जीवन को देखते ही नहीं हैं, हम अपने पिता की आंखों से देखते हैं, पिता अपने पिता की आंखों से, वे और अपने पिता की आंखों से। आंखें बहुत पुरानी हो गई हैं जिनसे हम देखते हैं। अपनी आंखों से कोई देखता ही नहीं है।
अगर जिंदगी की प्रत्येक समस्या को समर्थ हो सकें हम अपनी आंख से देखने में, तो समस्या विलीन हो जाएगी, क्योंकि जो समाधान आएगा वह हमारा होगा। वह समाधान जिंदगी की समस्या से टक्कर ले सकता है, उसे हल कर सकता है, जिंदगी दूसरी हो सकती है। इसलिए सबसे बड़ा विरोध है मेरा उधार मस्तिष्क से। बारोड माइंड सबसे खतरनाक बात है, महामारी है, सबसे बड़ी बीमारी है। और उस बीमारी में हजारों साल से हम पीड़ित हैं। इसलिए किसी के उत्तरों का कोई सवाल नहीं। किसी के समाधानों का कोई महत्व नहीं। शास्त्रों का, बंधे- बंधाए सिद्धांतों का कोई अर्थ नहीं। अर्थ है जीवंत मन का, फ्रेश माइंड का, ताजे मन का। कैसे होगा ताजा मन, उसी दिशा में तीन दिन थोड़ी सी बातें कीं।

एक मित्र ने दोपहर में पूछा कि जब तक हम अपनी बुराइयों का दमन न करेंगे, सप्रेशन न करेंगे, तब तक तो हम पशु के ऊपर उठ ही नहीं सकते। हम तो पशु हो जाएंगे। अगर हम आपकी बातें मान लें और दमन न करें अपने मन का, अपने क्रोध को न दबाएं, अपने सेक्स को न दबाएं, तो हम तो पशु हो जाएंगे।

लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूं, जैसा आदमी आज है उससे तो पशु बेहतर हैं। बड़ी चोट लगती है इस बात को जान कर, मुझे भी चोट लगती है। लेकिन आदमी से पशु बहुत बेहतर हैं। हजार-हजार अर्थों में बहुत बेहतर हैं। आदमी के साथ क्या हो गया है, बड़ी हैरानी की बात है! पशु न तो इतने चिंतित मालूम पड़ते हैं, न इतने दुखी। क्या आपने कभी किसी पशु और पक्षी को आत्महत्या करते सुना है, स्युसाइड करते? नहीं सुना होगा। मैं समझता हूं ऐसी घटना अभी तक नहीं घटी है। जिस दिन घटेगी, सारी दुनिया के अखबार पहले पेज पर बड़े-बड़े अक्षरों में छापेंगे कि एक कुत्ते ने आत्महत्या कर ली। अभी तक तो की नहीं है। यह घटना अभी तक घटी नहीं है। आदमी भर आत्महत्या करता है। मतलब क्या हुआ?
आदमी भर का जीवन इस हालत में पहुंच गया है कि खुद आदमी उसको समाप्त करना चाहता है। इतना बदतर जीवन हो गया है क्या कि हम खुद उसे समाप्त करें? इतना अर्थहीन हो गया? इतना दुख और पीड़ा से भर गया?
लेकिन यह हो गया है। और हम निरंतर यही कहे जाते हैं कि हमको पशु से ऊपर उठना है।
मैं तो कहूंगा, अभी तो हम पशु के बराबर भी हो जाएं तो बहुत है। पशु के ऊपर उठना तो जरा दूर की बात है। यह क्यों हो गई है इतनी स्थिति अजीब? यह अजीब इसलिए हो गई है कि हमने अपनी प्रकृति को स्वीकार नहीं किया। अगर हम अपनी प्रकृति को स्वीकार करें, तो उसी स्वीकृति से प्रकृति संस्कृति बन सकती है। लेकिन हमने कर दिया प्रकृति को अस्वीकार। उससे संस्कृति पैदा नहीं हुई, उससे विकृति पैदा हुई। प्रकृति के ही अनुसंधान में संस्कृति विकसित होती है। प्रकृति के विरोध में जो विकसित होता है वह विकृति है, वह संस्कृति नहीं है। हम संस्कृत नहीं हो पाए, हम करीब-करीब विकृत हैं। पशुओं में सेक्स है, काम है; मनुष्य में सेक्स ही नहीं है, सेक्सुअलिटी भी है, कामुकता भी है, जो और एक नया विकार है। पशुओं में सिर्फ काम है, मनुष्य में कामुकता है। पशु के जीवन में सेक्स आता है, चला जाता है--जैसे भोजन है, पानी है, और सब कुछ है, वैसे ही एक घड़ी है, विलीन हो जाती है। मनुष्य चौबीस घंटे सोचता है, सोचता है, सोचता है।
अगर मनुष्य चौबीस घंटे सेक्स को नहीं सोच रहा है तो उसकी फिल्मों में, उसकी कहानियों में, उसकी किताबों में यह सारा का सारा सेक्स क्यों है? खजुराहो और कोणार्क के मंदिरों में ये सारी की सारी मिथुन प्रतिमाएं क्यों हैं? यह क्यों सारा जीवन पूरा का पूरा सेक्स से भरा हुआ दिखाई पड़ता है? पशु तो चिंतित नहीं मालूम होते इस भांति। न पशु इस भांति पीड़ित मालूम

होते हैं। सेक्स तो उनके जीवन में जरूर है, प्रकृति है, है। लेकिन ऐसी विकृति नहीं है जैसी मनुष्य के जीवन में है। यह क्या हो गया है?
यह दमन से हुआ है, यह सप्रेशन से हुआ है। हम प्रकृति को ट्रांसफार्म नहीं कर पाए, हम प्रकृति को विकसित नहीं कर पाए, परिवर्तित नहीं कर पाए, प्रकृति को दबाया हमने। जो प्रकृति को दबाएगा वह प्रकृति के तल से भी नीचे गिर जाएगा। क्योंकि दमन से कोई वेग समाप्त नहीं होते, केवल अचेतन मन में और गहरे प्रविष्ट हो जाते हैं। और फिर पीड़ित करने लगते हैं भीतर जाकर। और फिर उनका वेग, उनके अंडरकरेंट्स... मुझे किसी ने कहा कि यहां जमीन के नीचे बहुत पानी के स्रोत हैं, अंडरकरेंट्स हैं। यहां ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन किसी ने कहा कि कुएं में मील, आधा मील भी भीतर जा सकते हैं। जमीन नीचे बहुत सी धाराओं से भरी है पानी की। ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
ऐसे ही, मनुष्य जिन-जिन चीजों को दबा देता है, उसके अचेतन में जमीन के नीचे अंडरकरेंट्स फैल जाते हैं। ऊपर से कुछ नहीं दिखाई पड़ता, ऊपर से वह आदमी राम-राम, राम-राम जपते हुए मालूम पड़ता है, गीता पढ़ते मालूम पड़ता है, रामायण पढ़ते मालूम पड़ता है। भीतर अंडरकरेंट्स क्या हैं? अंडरकरेंट्स बड़े दूसरे हैं। यह ऊपर कुछ और है, भीतर कुछ और है। इसके भीतर सब दब गया है, इकट्ठा हो गया। वह निकलना चाहता है, यह उसको दबाता है। मंत्र पढ़-पढ़ कर दबाता है। सब दबा-दबा कर उसको सम्हाल कर रखता है।
लेकिन जिसको हमने दबा कर रखा है, वह आज नहीं कल फूटेगा। वह आज नहीं कल तोड़ देगा जमीन को और बाहर निकल आएगा। और जिसे हमने दबा कर रखा है, उसे रोज-रोज दबा कर रखना पड़ेगा, क्योंकि जरा ही कमजोरी आई कि वह बाहर निकल आएगा। तो कमजोरी का कोई भी क्षण उसको बाहर ला सकता है। और अगर जीवन भर बाहर न भी आए तो भी फर्क नहीं पड़ता, ऐसे मनुष्य का जीवन अंतर्द्वंद्व हो जाएगा, कांफ्लिक्ट हो जाएगा। उसका जीवन अपने से ही लड़ने में व्यतीत हो जाएगा, वह जीवन के किसी सौंदर्य को नहीं जान पाएगा। दमन करने वाला व्यक्तित्व एकदम कुरूप, एकदम अग्ली हो जाता है। सारा सौंदर्य, सारी शांति, सारा संगीत नष्ट हो जाता है।
एक छोटी कहानी मुझे याद आती है।
कोरिया में दो भिक्षु एक नदी को पार करते थे। पहाड़ी नदी है, बूढ़ा भिक्षु आगे है, युवा भिक्षु पीछे था। बूढ़ा जैसे ही नदी में उतरने को था, देखा कि किनारे पर खड़ी है एक युवती और नदी पार होना चाहती है। उस बूढ़े के मन में हुआ--सत्तर वर्ष उसकी उम्र होगी--हाथ का सहारा दे दूं और नदी पार करवा दूं। लेकिन हाथ के सहारे का ख्याल ही, युवती का हाथ हाथ में आने का ख्याल ही उसके भीतर वर्षों से दबाई गई वासना का उभार बन गया। छुआ नहीं था अभी युवती को उसने, सिर्फ सोचा था दयावश कि हाथ का सहारा देकर नदी पार करा दूं। भीतर सोई हुई वासना... हैरान हो गया वह तो, तीस वर्ष से जिसे दबाया था वह अब तक समाप्त न हुई थी! और उसने तो माला फेर-फेर कर, रात जाग-जाग कर, उपवास कर-कर के सोचा था कि सब शांत हो गया, सब शांत हो गया।
अंडरकरेंट्स मौजूद थे। मौका आ गया, वापस खड़े हो गए। भीतर से उठ आई सारी वासना। ऊपर से देह बूढ़ी हो गई थी, भीतर मन जवान था। उठ आई वासना और उसने कहा कि बहुत सुखद रस उसे आ गया हाथ के स्पर्श का। वह बहुत घबड़ा गया, कंप गया, रोआं-रोआं खड़ा हो गया। ठंडी थी सांझ, लेकिन उसके माथे पर पसीने की बूंदें आ गईं। उसने कहा कि उफ! पाप अभी छिपा बैठा है! मैं तो सोचता था बाहर हो गया। वह घबड़ा कर नदी पार करने लगा। उसने फिर उस युवती से न कहा कि मैं पार करा दूं। मन में सोचा, मैंने कैसी भूल की कि मैंने यह सोचा! स्त्री के स्पर्श की बात सोची!
एक तरफ तो यह ख्याल चलने लगा, जैसे-जैसे नदी में थोड़ा आगे जाने लगा एक दूसरा ख्याल भी मन में आने लगा कि क्या हर्ज था इसमें अगर हाथ पकड़ कर मैं पार ही करा देता? दोनों बातें मन के भीतर खड़ी हो गईं। एक तरफ वह धार्मिक मन था साधक का, वह दबाने लगा कि यह क्या गलती है! भीतर से वासना कहने लगी, इसमें क्या हर्ज था? हाथ पकड़ कर अगर नदी पार भी करा देते तो क्या हर्ज था? लेकिन एक रस भी भीतर प्रतीत होने लगा। वह बड़े द्वंद्व में पड़ गया।

वह नदी पार हुआ। तब उसे ख्याल आया कि मेरा युवा साथी भी पीछे आने को है, कहीं वह भी इसी उपद्रव में न पड़ जाए जिसमें मैं पड़ गया। उसने लौट कर देखा, देख कर दंग रह गया, वह युवक उस लड़की को कंधे पर बिठा कर नदी पार कर रहा था। कई तरह की आग उसके मन में लग गई। एक तो यह कि इसे ठीक करूंगा! इसे शिक्षा देनी होगी! यह तो भटका जा रहा है। मैं तो बूढ़ा हूं, यह जवान है। अगर मेरी वासना नहीं गई तो इसकी वासना कैसे जाएगी? एक तरफ उपदेश का मन हुआ, दूसरी तरफ ईर्ष्या भी पकड़ी कि मैं चूक गया और यह युवक उसे कंधे पर लिए हुए है। दूसरी तरफ ईर्ष्या भी मन में आई। जितनी ईर्ष्या आई उतना ही उपदेश देने का और भी तीखा रस मन में उठने लगा।
अक्सर बूढ़े जवानों को जो उपदेश देते हैं, उसमें ईर्ष्या सम्मिलित होती है। ईर्ष्या उस जीवन की जो उनका खो गया है और जवानों के पास है, उस जीवन के प्रति एक ईर्ष्या। उपदेश और तीखे हो जाते हैं। उपदेश और कंडेमनेशन के और निंदा के हो जाते हैं। नरक भेजने की इच्छा और गहरी हो जाती है कि भेज दो नरक इन सबको।
उसका भी मन हुआः आज जाकर गुरु को कहूंगा। और आज तो इसे ठीक करना ही होगा, आश्रम से निकलवा देना होगा। हद्द हो गई, संन्यासी और स्त्री को छुए! कंधे पर बिठा कर आए!
युवक आ गया था, बूढ़ा उससे बोला नहीं। कोई दो मील, तीन मील के फासले पर उनका आश्रम था। जब वे वहां पहुंच गए और सीढ़ियां चढ़ने लगे तो उस बूढ़े ने कहा, मित्र, बर्दाश्त के बाहर था जो तुमने किया है! और मजबूरी में मुझे जाकर आश्रम के प्रधान को कहना ही पड़ेगा कि पाप हुआ है एक भिक्षु के द्वारा। कोई सजा की व्यवस्था करनी जरूरी है। अन्यथा नियम टूट जाएगा, अनुशासन टूट जाएगा, सारा आश्रम भ्रष्ट हो जाएगा। तुमने क्यों उस लड़की को कंधे पर उठाया?
उस युवक ने कहा, भंते, मैं तो उसे उठाया था कंधे पर और नदी के किनारे छोड़ भी आया, उस बात को घटे काफी देर हो चुकी है, लेकिन आप उसे अब भी कंधों पर उठाए हुए हैं। आप अब भी उसे कंधे पर उठाए हुए हैं!
जो दमन कर लेता है चीजों का, जीवन भर कंधे पर उठानी पड़ती हैं वे चीजें जिनका दमन कर लेता है। सप्रेशन या दमन मार्ग नहीं है जीवन के विकास का। जीवन में कुछ भी दमन करने जैसा नहीं है। फिर क्या? तो क्या हम हो जाएं पशु? जैसा मेरे मित्र ने पूछा है कि फिर तो हम हो जाएं उच्छृंखल?
नहीं, वह मैं नहीं कह रहा हूं। जीवन में जो भी वृत्तियां हैं, वेग हैं,
जो भी इच्छाएं हैं, वासनाएं हैं, कामनाएं हैं, उनके प्रति जागना है, उनको देखना है, पहचानना है, समझना है। उनकी अंडरस्टैंडिंग, उनके बाबत हमारी जितनी गहरी समझ होगी, वे समझ के अनुपात में ही परिवर्तित होती चली जाती हैं। किसी भी वृत्ति को देखना शुरू करें, वह वृत्ति परिवर्तित होने लगेगी। और बड़े रहस्यों का रहस्य यह है कि जिस वृत्ति से आप घबड़ाते हैं और जिस वृत्ति को आप लाना चाहते हैं, उस वृत्ति का ठीक से जागने पर उसी दिशा में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। देखें, प्रयोग करें, ध्यान करें अपनी वृत्तियों पर। जिस वृत्ति को भी परिवर्तित करना हो उस वृत्ति से लड़ें नहीं, पहली बात। उसके शत्रु न बनें, उसके मित्र बनें, उसके प्रति जागें और देखें।
जीवन एक सहज स्वीकार है। जीवन को पूरे मन से स्वीकार करें, जीवन की निंदा न करें। जीवन को अंगीकार करें पूरे हृदय से, पूरे द्वार खोल कर। और फिर जीवन में जो कुछ भी है, उसे समझें, समझने की कोशिश करें, पहचानने की कोशिश करें। उस वृत्ति के सारे रूप को देखें। और हैरान हो जाएंगे! जैसे ही उसे देखेंगे, जानेंगे, पहचानेंगे, उसमें परिवर्तन शुरू हो जाता है। उसमें एक अभूतपूर्व परिवर्तन शुरू हो जाता है। हमने देखा नहीं है, पहचाना नहीं है, इसलिए हम दमन करते हैं। और दमन, दमन सुसंस्कृत नहीं करता मनुष्य को, बल्कि और विकृत करता है।
तो दमन के मैं पक्ष में नहीं हूं; वृत्तियों के ज्ञान के पक्ष में हूं। जीवन के मैं विरोध में नहीं हूं; जीवन के समग्र स्वीकार के पक्ष में हूं। अब तक जो धर्म जमीन पर प्रचलित रहे हैं और जो बातें और शिक्षाएं लोगों को कही गई हैं, वे सब लाइफ निगेटिव हैं, उन सबसे जीवन का निषेध होता

है। जीवन का निषेध जो धर्म करते हैं वे धर्म कभी मनुष्य को सुखी न कर सकेंगे और आनंदित न कर सकेंगे। चाहिए जीवन का स्वीकार, लाइफ अफर्मेशन; चाहिए समग्र जीवन का पूर्ण स्वीकार। जब जीवन पूर्ण स्वीकृत होता है और हम उस जीवन के प्रति जागते हैं, ज्ञान से भरते हैं, तो परिवर्तन शुरू हो जाता है। एक दीया जलाएं और अपने भीतर ले जाएं। ध्यान के दीये को जलाएं और अपने भीतर ले जाएं और खोजें वहां।
बुद्ध ने एक बात कही है, उसे कह कर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
बुद्ध ने कहा है, जिस घर में अंधेरा होता है उसमें चोर आते हैं। जिस घर में पहरेदार नहीं होता है उसमें चोर आते हैं। लेकिन जिस घर में दीया जलता होता है उसमें चोर आने में डरते हैं। और जिस घर के द्वार पर पहरेदार बैठा होता है उसमें तो चोर कभी नहीं आते।
बुद्ध ने कहा, ऐसा ही मनुष्य का चित्त भी है। जिस चित्त में बोध का दीया जलता है, उस चित्त में वे वृत्तियां नहीं आतीं जो घातक हैं। और जिस चित्त पर सजगता का, जागरूकता का, अवेयरनेस का पहरेदार बैठा होता है, उस चित्त में तो कोई भी बुराई, कोई भी बुराई प्रवेश करने में असमर्थ हो जाती है।
मन को बनाएं ऐसा मंदिर कि जहां ध्यान का दीया जलता हो, जहां जागरूकता
का पहरेदार बैठा हो। ध्यान का दीया और जागरूकता का पहरा हो चित्त पर, तो यही सामान्य सा दिखता जीवन अमृत जीवन में परिवर्तित हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर तो परमात्मा छिपा है, लेकिन हम जागेंगे तो ही उसे पा सकेंगे।
इन तीन दिनों में जो भी मैंने आपसे कहा है, एक शब्द में उसे कह दूंः वह
है जागरूकता, जागरूकता, समग्र रूप से जीवन के प्रति जागरूकता। जो जागता है वह जीवन को उपलब्ध हो जाता है।
मेरी बातों को तीन दिन तक बहुत शांति से सुना है, बहुत सी ऐसी बातों को
भी जिनसे मन में अशांति पैदा हुई होगी। मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है, बहुत सी ऐसी बातों को भी जिनको प्रेम से सुनने में बड़ी अड़चन हुई होगी। मेरी बातों को इतने-इतने धैर्य से सुना है, कई ऐसी बातों को जिनमें धैर्य टूटने लगा होगा। उस सबके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में एक ही बात की प्रार्थना करता हूं और वह यह कि मैंने जो भी कहा है उसे स्वीकार न करना, उसे अस्वीकार न करना। उसे सोचना, समझना, विचारना। सोचने, विचारने, समझने से शायद उसमें से कुछ दिखाई पड़ जाए। और जो दिखाई पड़ जाए कुछ, वह आपका हो जाएगा, वह मेरा नहीं रह जाता है।
परमात्मा करे उस प्रकाश में, उस ज्ञान में, उस अमृत-आलोक में सबका जागना हो सके जो सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। और जिसे हम अपने ही हाथों खोए बैठे हैं। कोई और जिम्मेवार नहीं है। परमात्मा करे सबका जो स्वरूप-सिद्ध अधिकार है वह उसे उपलब्ध हो सके।
पुनः-पुनः बहुत-बहुत धन्यवाद। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।